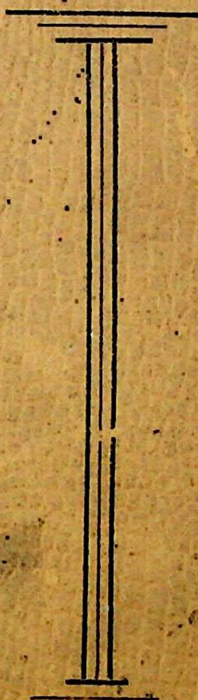
[स]त्य हरिश्चन्द्र नाटक

[सं]स्कृत टीका और व्याख्यादि सहित]



टीकाकार :—

प्रो० रामायण शरण, एम. ए., बी. एल.

तथा

श्री कृष्णकुमार सिन्हा



वं संग्रहव



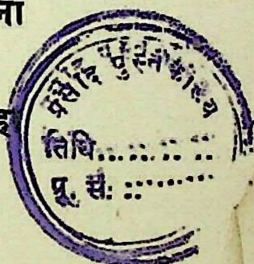
भारतेन्दु कृत

सत्य हरिश्चन्द्र नाटक

[इसमें नाटक क्या है ? नाट्य साहित्य का विकास, पारिभाषिक शब्दों की परिभाषा, नाटककार तथा नाट्य-ग्रन्थ पर विस्तृत भूमिका, पूर्ण व्याख्या, टिप्पणी, व्याकरण, समालोचनात्मक प्रश्नोत्तर आदि सभी कुछ हैं ।]

टीकाकार :—

प्रो० रामायण शरण, एम., ए., बी., एल.
सेन्ट जेवियर्स, पटना
और
श्री कृष्णकुमार सिन्हा



राजराजेश्वरी पुस्तकालय
प्रकाशक और पुस्तक-विक्रेता, गया ।

संशोधित संस्करण]   [मूल्य

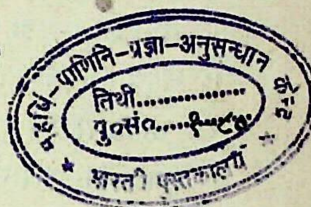
विद्यार्थियों से दो बातें :—

हिन्दी के दो विद्वानों द्वारा यह पुस्तक तैयार कराई गई है। इनकी प्रणीत पुस्तकें बी०ए० एम०ए० के विद्यार्थी पढ़ा करते हैं। इस संस्करण में बहुत-सी नई बातों का समावेश हुआ है। अब तक जो भी दूसरी टीकाएँ निकली हैं, वे अधूरी हैं। उससे विद्यार्थियों को लाभ नहीं होता है। अतएव इसी बात को मद्देनजर रखते हुए प्रस्तुत टीका की रचना हुई। विषय-सूची को देखने से इसकी विशेषताएँ मालूम हो जायगी।

इसके अलावे, श्री कृष्णकुमार सिन्हा की अन्य पुस्तकों को अवश्य पढ़ें। वे सब पुस्तकें अपने ढंग की अकेली—हैं। बस।

—प्रकाशक

विषय-सूची



नाटक खण्ड

टीका भाग

सत्य-हरिश्चन्द्र



मंगलाचरण

दोहा

सत्यासक्त दयाल द्विज, प्रिय अघहर सुखकन्द ।
जनहित कमलातजन जय, शिव नृप कवि हरिचन्द*॥१॥

(नान्दी के पीछे सूत्रधार× आता है)

सू०—अहा! आज की सन्ध्या भी धन्य है कि इतने गुणज्ञ और रसिक लोग एकत्र हैं और सबकी इच्छा है कि हिन्दी भाषा का कोई नवीन नाटक देखें। धन्य है विद्या का प्रकाश कि जहाँ के लोग नाटक किस चिड़िया का नाम है इतना भी नहीं जानते थे भला वहाँ अब लोगों की इच्छा इधर प्रवृत्त तो हुई। परन्तु

---

* यह श्लेष शिवजी, राजा हरिश्चन्द्र, श्रीकृष्ण, चन्द्रमा और कवि पाँच का वर्णन करता है।

× सूत्रधार हरे वा नीले रंग की साटन का कामदार जाँघिया पहिने उसके आगे पटूके की तरह कमरबन्द के दोनों किनारे नीचे ऊपर लटकते हुए, गले में चुस्त सामने बुताम की मिरजई, ऊपर माला वगैरह और सब गहने, सिर पर पिटारा, पैर में घुँघरू, हाथ में छड़ी, पाँव में पैजामा, काछनी, सिर पर मुकुट।

हा! सोच की बात है कि जो बड़े-बड़े लोग हैं और जिनके किये कुछ हो सकता है वे ऐसी अन्ध-परम्परा में फसे हैं और ऐसे बेपरवाह और अभिमानी हैं कि सच्चे गुणियों की कहीं पूछ ही नहीं है। केवल उन्हीं की चाह और उन्हींकी बात है जिन्हें झूठी खैरखाही दिखानी या लम्बा-चौड़ा गाल बजाना आता है। (कुछ सोच कर) क्या हुआ, ढंग पर चला जायगा तो यों भी बहुत कुछ हो रहेगा। काल बड़ा बली है, धीरे धीरे सब आप ही कर देगा। पर भला आज इन लोगों को लीला कौन सी दिखाऊँ। (सोच कर) अच्छा, उनसे भी पूछ लें? ऐसे कौतुकों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की बुद्धि विशेष लड़ती है। (नेपथ्य की ओर देखकर) मोहना! अपनी भाभी को जरा इधर तो भेजना।

(नेपथ्य में से, मैं तो आपही आती थी, कहती हुई नटी * आती है)

न०—मैं तो आप ही आती थी। वह एक मनिहारिन आ गई थी, उसीके बखेड़े में लग गई, नहीं तो अब तक कभी की आ चुकी होती। कहिए, आज जो लीला करनी हो वह पहले ही से जानी रहे तो मैं और सभी से कह के सावधान कर दूँ।

---

* महाराष्ट्री भेष. कमर पर पेटी कसे वा मर्दाना कपड़ा पहिने पर जेवर सब जनाने।

सू०—आज का नाटक को तो हमने तुम्हारी प्रसन्नता पर छोड़ दिया है।

न०—हम लोगों को तो सत्यहरिश्चन्द्र आजकल अच्छी तरह याद है और उसका खेल भी सब छोटे-बड़े को मँज रहा है।

सू०—ठीक है, यही हो। भला इससे अच्छा और कौन नाटक होगा। एक तो इन लोगों ने उसे अभी देखा नहीं है, दूसरे आख्यान भी करुणा पूर्ण राजा हरिश्चन्द्र का है, तीसरे उसका कवि भी हम लोगों का एकमात्र जीवन है।

न०—(लम्बी साँस लेकर) हा! प्यारे, हरिश्चन्द्र का संसार ने कुछ भी गुण-रूप न समझा। क्या हुआ "कहैंगे सबै ही नर नीर भरि-भरि पाछे प्यारे हरिश्चन्द्र की कहानी रहि जायगी"।

सू०—इसमें क्या सन्देह है काशी के पण्डितों ने कहा—

सब सज्जन के मान को, कारन इक हरिचन्द—
जिमि सुभाव दिन रैन के, कारन नित *हरिचन्द †॥२॥

और फिर उनके मित्र पण्डित शीतलाप्रसाद जी ने इस नाटक के नायक से उनकी समता भी की है इससे उनके बनाए नाटकों में भी सत्यहरिश्चन्द्र ही आज

---

* हरि-सूर्य।

† "विद्वज्जनप्रतिष्ठाकारणमेको हरिश्चन्द्रः।
यद्वत् स्वभावतस्त्वादिनरात्र्योर्वा हरिश्चन्द्रः।

खेलने को जी चाहता है।

न०--कैसी समता, मैं भी सुनूँ ।

सू०--जो गुन नृप हरिचन्द्र में, जग हित सुनियत कान ।
सो सब कवि हरिचन्द में, लखहु प्रतच्छ सुजान † ॥ ३ ॥

(नेपथ्य में)

अरे !

यहाँ सत्य भय एक के, काँपत सब सुर लोक ।
यह दूजो हरिचन्द को, करन इन्द्र उर सोक ॥ ४ ॥

सू०--(सुनकर और नेपथ्य की ओर देख कर) वह देखो ! हम लोगों को बात करते देर न हुई कि मोहना इन्द्र बन कर आ पहुँचा, तो अब चलो हम लोग भी तैयार हों ।

(दोनों जाते हैं)

इति प्रस्तावना ।

---

† " श्रुयन्ते ये हरिश्चन्द्रे जगदाह्लादिनो गुणाः ।
दृश्यन्ते ते हरिश्चन्द्रे चन्द्रवत् प्रियदर्शने ॥"

प्रथम अंक

(जवनिका उठती है)

(स्थान—इन्द्रसभा, बीच में गद्दी तकिया धरा हुआ, घर सजा हुआ)

(इन्द्र* आता है)

इ०-("यहाँ सत्य भय एक के" यह दोहा फिर से पढ़ता हुआ इधर उधर घूमता है)

(द्वारपाल † आता है)

द्वा०—महाराज ! नारदजी आते हैं।

इ०—आने दो, अच्छे अवसर पर आये ।

द्वा०—जो आज्ञा (जाता है)।

इ०—(आप ही आप) नारदजी सारी पृथ्वी पर इधर-उधर फिरा करते हैं, इनसे सब बातों का पक्का पता लगेगा। हमने माना कि राजा हरिश्चन्द्र को स्वर्ग लेने की इच्छा न हो, तथापि उसके धर्म की एक वेर परीक्षा तो लेना चाहिये ।

(नारदजी‡आते हैं)

---

* जामा, कीरीट, कुण्डल और गहने पहने हुए हाथ में वज्र (कहीं फूलों की छोटी माला) लिये हुए।

† छज्जेदार पगड़ी, चपकन, घेरदार पायजामा पहने, कमरबन्द कसे और हाथ में आसा लिये हुए।

‡ धोती की लांग कसे, गाती बांधे, सिर से पांव तक चन्दन का खौर दिये, पैर में घुँघरू, सिर के बाल छूटे और हाथ में बीन लिये हुए। आने और जाने के समय "रामकृष्ण गोविन्द" की ध्वनि नेपथ्य में से हो।

इ०—(हाथ जोड़कर दण्डवत करता है) आइए, आइए, धन्य भाग्य, आज किधर भूल पड़े ?

ना०—हमें और भी कोई काम है ? केवल यहाँ से वहाँ और वहाँ से यहाँ, यही हमें है कि और भी कुछ ?

इ०—साधु स्वभाव ही से परोपकारी होते हैं, विशेष करके आप ऐसे जो हमारे से दीन गृहस्थों को घर बैठे दर्शन देते हैं। क्योंकि जो लोग गृहस्थ और कामकाजी हैं वे स्वभाव ही से गृहस्थी के बन्धनों से ऐसे जकड़ जाते हैं, कि साधु-संगम तो उनको सपने में भी दुर्लभ हो जाता है; न वे अपने प्रबन्धों से छुट्टी पावेंगे, न कहीं जायेंगे।

ना०—आपको इतना शिष्टाचार नहीं सोहता, आप देवराज हैं और आप के संग की तो बड़े-बड़े ऋषि-मुनि इच्छा करते हैं, फिर आपको सतसङ्ग कौन दुर्लभ है ? केवल जैसा राजा लोगों में एक सहज मुँह देखा व्यवहार होता है वैसी बातें आप इस समय कर रहे हैं।

इ०—हमको बड़ा सोच है कि आपने हमारी बातों को शिष्टाचार समझा। क्षमा कीजिये, आप से हम बनावट नहीं करते। भला विराजिए तो सही; ये बातें तो होती ही रहेंगी।

ना०—विराजिए (दोनों बैठते हैं)।

इ०—कहिए, इस समय कहाँ से आना हुआ ?

ना०—अयोध्या से। अहा ! राजा हरिश्चन्द्र धन्य है। मैं तो

उसके निष्कपट और अकृत्रिम स्वभाव से बहुत ही संतुष्ट हुआ। यद्यपि इसी सूर्य्यकुल में अनेक बड़े-बड़े धार्मिक हुए पर हरिश्चन्द्र तो हरिश्चन्द्र ही है।

इ०—(आपही आप) यह भी तो उसीका गुण गाते हैं।

ना०—महाराज ! सत्य की तो मानो हरिश्चन्द्र मूर्त्ति है। निस्सन्देह ऐसे मनुष्यों के उत्पन्न होने से भारत-भूमि का सिर केवल इनके स्मरण से उस समय भी ऊँचा रहेगा जब यह पराधीन होकर हीनावस्था को प्राप्त होगी।

इ०—(आप ही आप) अहा ! हृदय भी ईश्वर ने क्या ही वस्तु बनाई है ! यद्यपि इसका स्वभाव सहज ही गुण-ग्राही हो, तथापि दूसरों की उत्कट कीर्ति से इसमें ईर्ष्या होती है, उसमें भी जो जितने बड़े हैं उनकी ईर्ष्या उतनी ही बड़ी है। हमारे ऐसे बड़े पदाधिकारियों को शत्रु उतना सन्ताप नहीं देते जितना दूसरों की सम्पत्ति और कीर्त्ति।

ना०—आप क्या सोच रहे है ?

इ०—कुछ नहीं। योंही, मैं यह सोचता था कि हरिश्चन्द्र की कीर्त्ति आजकल छोटे-बड़े सब के मुँह से सुनाई पड़ती है, इससे निश्चय होता है कि नहीं, हरिश्चन्द्र निस्सन्देह बड़ा मनुष्य है।

ना०—क्यों नहीं, बड़ाई उसीका नाम है जिसे छोटे-बड़े सब मानें और फिर नाम भी तो उसीका रह जायगा जो

ऐसा दृढ़ होकर धर्म्म साधन करेगा (आप ही आप) और उसकी बड़ाई का यह भी तो एक बड़ा प्रमाण है कि आप ऐसे लोग उससे बुरा मानते हैं, क्योंकि जिस से बड़े बड़े लोग डाह करें, पर उसका कुछ बिगाड़ न सकें, वह निस्सन्देह बहुत बड़ा मनुष्य है।

इ०—भला! उसके गृह-चरित्र कैसे हैं?

ना०—दूसरों के लिए उदाहरण बनाने के योग्य। भला पहले जिसने अपने निज के और अपने घर के चरित्र ही नहीं शुद्ध किये हैं, उसकी और बातों पर क्यों विश्वास हो सकता है। शरीर में चरित्र ही मुख्य वस्तु है। वचन में उपदेशक और क्रियादिक से कैसा भी धर्मनिष्ठ क्यों न हो, पर यदि उसके चरित्र शुद्ध नहीं है तो लोगों में वह टकसाल न समझा जायगा और उसकी बातें प्रमाण न होंगी। महात्मा और दुरात्मा में इतना ही भेद है कि उनके मन, वचन और कर्म एक रहते हैं, इनके भिन्न-भिन्न। निस्सन्देह हरिश्चन्द्र महाशय हैं। उसके आशय बहुत उदार हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं।

इ०—भला! आप उदार वा महाशय किसको कहते हैं?

ना०—जिसका भीतर-बाहर एक सा हो और विद्यानुरागिता, उपकारप्रियता आदि गुण जिसमें सहज हों, अधिकार में क्षमा, विपत्ति में धैर्य्य, सम्पत्ति में अनभिमान और युद्ध में जिसकी स्थिरता है, वह ईश्वर की सृष्टि का रत्न है और उसीकी माता पुत्रवती है। हरिश्चन्द्र में ये

सब बातें सहज हैं। दान करके उसको प्रसन्नता होती है और कितना भी दे पर सन्तोष नहीं होता, यही समझता है कि अभी कुछ नहीं दिया।

इ०--(आप ही आप) हृदय ! पत्थर के होकर तुम यह सब कान खोल के सुनो।

ना०--और इन गुणों पर ईश्वर की निश्चला भक्ति उसमें ऐसी है जो सबका भूषण है, क्योंकि उसके बिना किसी की शोभा नहीं। फिर इन सब बातों पर विशेषता यह है कि राज्य का प्रबन्ध ऐसा उत्तम और दृढ़ है कि लोगों को सन्देह होता है कि इन्हें राजकाज देखने की छुट्टी कब मिलती है। सच है, छोटे जी के लोग थोड़े ही कामों में ऐसे घबड़ा जाते हैं मानों सारे संसार का बोझ इनहीं पर है, पर जो बड़े लोग हैं उनके सब काम महारम्भ होते हैं तब भी उनके मुख पर कहीं से व्याकुलता नहीं झलकती, क्योंकि एक तो उनके उदार चित्त में धैर्य और अवकाश बहुत है, दूसरे उसके समय व्यर्थ नहीं जाते और ऐसे यथायोग्य बँटे रहते हैं जिस से उनपर कभी भीड़ पड़ती ही नहीं।

इ०--भला महाराज ! यह ऐसे दानी हैं तो उनकी लक्ष्मी कैसे स्थिर है ?

ना०--वही तो हम कहते हैं। निस्सन्देह वह राजा कुल का कलङ्क है, जिसने बिना पात्र विचारे दान देते-देते सब लक्ष्मी का क्षय कर दिया; आप कुछ उपार्जन किया

ही नहीं, जो वह नाश हो गया और जहाँ प्रबन्ध है वहाँ धन की क्या कमती है। मनुष्य कितना धन देगा और याचक कितना लेंगे।

इ०—पर यदि कोई अपने वित्त के बाहर माँगे या ऐसी वस्तु माँगे जिससे दाता की सर्वस्व-हानि होती हो, तो वह दे कि नहीं ?

ना०—क्यों नहीं। अपना सर्वस्व वह क्षण भर में दे सकता है, पात्र चाहिए। जिसको धन पाकर सत्पात्र में उसके त्याग की शक्ति नहीं है वह उदार कहां हुआ।

इ०—(आप ही) भला देखेंगे न।

ना०—राजन! दानियों के आगे प्राण और धन तो कोई वस्तु ही नहीं है। वे तो अपने सहज स्वभाव ही से सत्य और विचार तथा दृढ़ता में ऐसे बँधे हैं कि सत्पात्र मिलने या बात पड़ने पर उनको स्वर्ग भी तिल सा दिखाई देता है। और उसमें भी हरिश्चन्द्र—जिसका सत्य पर ऐसा स्नेह है जैसा भूमि, कोष, रानी और तलवार पर भी नहीं है। जो सत्यानुरागी ही नहीं है, भला उससे न्याय कब होगा? और जिसमें न्याय नहीं है वह राजा ही काहे का है? कैसी भी विपत्ति और उभय संकट पड़े और कैसी ही हानि वा लाभ हो, पर न्याय न छोड़े; वही धीर और वही राजा। और उस न्याय का मूल सत्य है।

ह०—तो भला वह, जिसे मैं देने कहूँगा देगा, वा जो करने

को कहेगा वह करेगा ?

ना०—क्या आप उसका परिहास करते हैं ? किसी बड़े के विषय में शंका ही उसकी निन्दा है। क्या आप ने उसका यह सहज सा अभिमान वचन नहीं सुना है ?

चन्द टरै सूरज टरै, टरै जगत व्यौहार।
पै दृढ़ श्रीहरिचन्द को, टरै न सत्य विचार॥

इ०—(आप ही आप) तो फिर इसी सत्य के पीछे नाश भी होंगे, हमको भी अच्छा उपाय मिला। (प्रकट) हाँ ! पर आप यह भी जानते हैं कि क्या वह यह सब धर्म स्वर्ग लेने को करता है ?

ना०—वाह ! भला जो ऐसे हैं उनके आगे स्वर्ग क्या वस्तु है ? क्या बड़े लोग धर्म स्वर्ग पाने को करते हैं ? जो अपने निर्मल चरित्र से सन्तुष्ट हैं उनके आगे स्वर्ग कौन वस्तु है ? फिर भला जिनके शुद्ध हृदय और सहज व्यवहार हैं वे क्या यश वा स्वर्ग की लालच से धर्म करते हैं ? वे तो आपके स्वर्ग को सहज में दूसरे को दे सकते हैं और जिन लोगों को भगवान् के चरणारविन्द में भक्ति है वे क्या किसी कामना से धर्माचरण करते हैं ? यह भी तो क्षुद्रता है कि इस लोक में एक देकर परलोक में दो की आशा रखना।

इ०—(आप ही आप) हमने माना कि उसको स्वर्ग लेने की इच्छा न हो, तथापि अपने कर्मों से वह स्वर्ग का अधिकारी तो हो जायगा।

ना०—और जिनको अपने किये शुभ अनुष्ठानों से आप संतोष मिलता है उनके उस असीम आनन्द के आगे आपके स्वर्ग का अमृतपान और अप्सरा तो महातुच्छ हैं। क्या अच्छे लोग कभी किसी शुभ कृत्य का बदला चाहते हैं ?

इ०—तथापि एक बेर उनके सत्य की परीक्षा होती तो अच्छा होता।

ना०—राजन्! आपको यह सब सोचना बहुत अयोग्य है। ईश्वर ने आपको बड़ा किया है, तो आपको दूसरों की उन्नति और उत्तमता पर सन्तोष करना चाहिये। ईर्ष्या करना तो क्षुद्राशयों का काम है। महाशय वही है जो दूसरों की बड़ाई से अपनी बड़ाई समझे।

इ०—(आप ही आप) इनसे काम न होगा (बात बहलाकर, प्रगट) नहीं, नहीं; मेरी इच्छा थी कि मैं भी उनके गुणों को अपनी आँखों से देखता, भला मैं ऐसी परीक्षा थोड़े लेना चाहता हूँ जिससे उन्हें कुछ कष्ट हो ?

ना०—(आप ही आप) अहा! बड़ा पद मिलने से कोई बड़ा नहीं होता। बड़ा वही है जिसका चित्त बड़ा है। अधिकार तो बड़ा है, पर चित्त में सदा क्षुद्र और नीच बातें सूझा करती हैं, वह आदर के योग्य नहीं; परन्तु जो कैसा भी दरिद्र है पर जिसका चित्त उदार और बड़ा है वही आदरणीय है।

(द्वारपाल आता है)

द्वा०--महाराज ! विश्वामित्र जी आये हैं।

इ०—(आप ही आप) हाँ, इनसे यह काम होगा । अच्छे अवसर पर आये। जैसा काम हो वैसा ही स्वभाव के लोग भी चाहिये। (प्रकट) हाँ, हाँ लिया लाओ।

द्वा०—जो आज्ञा। (जाता है)

(विश्वामित्रजी*आते हैं)

इ०—(प्रणामादी शिष्टाचार करके) आइये भगवन्! विराजिए।

वि०—(नारदजी को प्रणाम करके और इन्द्र को आशीर्वाद देकर बैठते हैं)

ना०—तो अब हम जाते हैं, क्योंकि पिता के पास हमें किसी आवश्यक काम से जाना है ।

वि०—यह क्या ? हमारे आते ही आप चले, भला ऐसी रुष्टता किस काम की ?

ना०—हरे ! हरे ! आप ऐसी बात सोचते है । राम-राम, भला आपके आने से हम क्यों जायँगे ? मैं तो जाने ही को था, इतने में आप आ गये।

इ०--(हंस कर) आपकी जो इच्छा !

ना०—(आप ही आप) हमारी इच्छा क्या—अब तो आप ही की इच्छा है कि हम जायँ, क्योंकि अब आप तो विश्व के अमित्रजी से राजा हरिश्चन्द्र को दुख देने

---

* मृगचर्म, दाढ़ी, जटा, हाथों में पवित्री और कमण्डलु, खड़ाऊँ पर चढ़े।

की सलाह कीजियेगा, तो हम उसके बाधक क्या हों ? पर इतना निश्चय रहे कि सज्जन को दुर्जन लोग जितना कष्ट देते हैं, उतनी ही उनकी सत्य-कीर्ति तपाये सोने की भाँति और भी चमकती है, क्योंकि विपत्ति बिना सत्य की परीक्षा नहीं होती । (प्रकट) यद्यपि "जो इच्छा" आपने सहज भाव से कहा है तथापि परस्पर में ऐसे उदासीन वचन नहीं कहते क्योंकि इन वाक्यों से रूखापन झलकता है । मैं कुछ इसका ध्यान नहीं करता, केवल मित्रभाव से कहता हूँ । लो, जाता हूँ और यही आशीर्वाद देकर जाता हूँ कि तुम किसी को कष्टदायक मत होओ, क्योंकि अधिकार पाकर कष्ट देना यह बड़ों को शोभा नहीं, सुख देना शोभा है ।

इं०—(कुछ लज्जित होकर प्रणाम करता है) ।

(नारद जी जाते हैं)

वि०—यह क्यों ? आज नारद भगवान ऐसी जली-कटी क्यों बोलते थे ? क्या तुमने कुछ कहा था ?

इं०—नहीं तो, राजा हरिश्चन्द्र का प्रसंग निकला था सो उन्होंने उसकी बड़ी स्तुति की और हमारा उच्चपद का आदरणीय स्वभाव उस परकीर्त्ति को सहन न कर सका । इसमें कुछ बात ही बात ऐसा सन्देह होता है कि वे रुष्ट हो गये ।

वि०—तो हरिश्चन्द्र में कौन से गुण हैं ?

(सहज ही भृकुटी चढ़ जाती है)

इ०—(ऋषि का भ्रूभंग देख कर चित्त में सन्तोष करके उनका क्रोध बढ़ाता हुआ) महाराज! सिपारसी लोग चाहे जिसको बढ़ा दें, चाहे घटा दें। भला सत्यधर्म-पालन क्या हँसी-खेल है? यह आप ऐसे महात्माओं ही का काम है, जिन्हों ने घर-बार छोड़ दिया है। भला राज करके और घर में रहके मनुष्य क्या धर्म का हठ करेगा! और फिर कोई परीक्षा लेता तो मालूम पड़ता। इन्हीं बातों से तो नारद जी बिना बात ही अप्रसन्न हुए।

वि०—मैं अभी देखता हूँ न। जो हरिश्चन्द्र को तेजोभ्रष्ट न किया तो मेरा नाम विश्वामित्र नहीं। भला मेरे सामने वह क्या सत्यवादी बनेगा और क्या दानीपने का अभिमान करेगा?

(क्रोध पूर्वक उठ कर चला चाहते हैं कि परदा गिरता है)

इति प्रथम अङ्क।

--※०※--

दूसरा अंक

(स्थान—राजा हरिश्चन्द्र का राज-भवन)

(रानी शैव्या* बैठी है और एक सहेली बगल में खड़ी है †)

रा०—अरी! आज मैंने ऐसे बुरे-बुरे सपने देखे हैं कि जबसे सो के उठी हूँ कलेजा काँप रहा है। भगवान् कुशल करें।

स०—महाराज के पुण्य-प्रताप से सब कुशल ही होगा, आप कुछ चिन्ता न करें। भला क्या सपना देखा है, मैं भी सुनूँ!

रा०—महाराज को तो मैंने सारे अङ्ग में भस्म लगाये देखा है और अपने को बाल खोले और (आँखों में आँसू भर कर) रोहिताश्व को देखा है कि साँप काट गया है।

स०—राम! राम! भगवान् सब कुशल करेगा। भगवान् करे रोहिताश्व जुग-जुग जिये और जब तक गंगा यमुना में पानी है आपका सोहाग अचल रहे। भला आपने इसकी शांति का भी कुछ उपाय किया है?

रा०—हाँ, गुरुजी से तो सब समाचार कहला भेजा है, देखो, वह क्या करते हैं।

स०—हे भगवान्! हमारे महाराज महारानी, कुंवर सब कुशल से रहें मैं आँचल पसार के वरदान माँगती हूँ।

(ब्राह्मण ‡ आता है)

---

* लहँगा, साड़ी, सब जनाना गहना, बन्दी वेना इत्यादि।

† साड़ी, सादा सिंगार।

‡ धोती, उपरना, सिर पर चुन्नी वा बाल, डाढ़ी, हाथ में पवित्री, तिलक और खड़ाऊँ।

ब्रा०—(आशीर्वाद देता है)

स्वस्त्यस्तु ते कुशलमस्तु चिरायुरस्तु ।
गोवाजिहस्तिधनधान्यसमृद्धिरस्तु ॥
ऐश्वर्यमस्तु कुशलोऽस्तु रिपुक्षयोऽस्तु ।
सन्तानवृद्धिसहिता हरिभक्तिरस्तु ॥

रा०—(हाथ जोड़ कर प्रणाम करती है)

ब्रा०—महारानी ! गुरुजी ने यह अभिमंत्रित जल भेजा है। इसे महारानी पहले तो नेत्रों से लगा लें और फिर थोड़ासा पान भी कर लें और यह रक्षाबन्धन भेजा है, इसे कुमार रोहिताश्व की दाहिनी भुजा पर बाँध दें फिर इस जल से मार्जन करूँगा।

रा०—(नेत्र में जल लगाकर और कुछ मुँह फेरकर आचमन करके) मालती ! यह रक्षाबन्धन तू सँभाल के अपने पास रख, जब रोहिताश्व मिले उसके दाहिने हाथ पर बाँध दीजियो ।

स०—जो आज्ञा (रक्षाबन्धन अपने पास रखती है)

ब्रा०—तो अब आप सावधान हो जायँ मैं मार्जन कर लूँ ।

रा०—(सावधान होकर) जो आज्ञा।

ब्रा०—(दूर्वा से मार्जन करता है)

देवास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।
गन्धर्वा किन्नरा नागा रक्षां कुर्वन्तु ते सदा ॥
पितरो गुह्यका यक्षा देव्यो भूताश्च मातरः ।
सर्वे त्वामभिषिञ्चन्तु रक्षां कुर्वन्तु ते सदा ॥

भद्रमस्तु शिवञ्चास्तु महालक्ष्मीः प्रसीदतु ।
पतिपुत्रयुता साध्वी जीव त्वं शरदांशतम् ॥
(मार्जन का जल पृथ्वी पर फेंक कर)
यत्पापं रोगमशुभं तद्दूरे प्रतिहतमस्तु ।

(फिर रानी पर मार्जन करके)

यन्मंगलं शुभं सौभाग्यं धनधान्यमारोग्यम्बहु-
पुत्रत्वं तत्सर्वमीशप्रसादात् ब्राह्मणवचनात्त्वय्यस्तु ॥

(मार्जन करके फूल अक्षत रानी के हाथ में देता है ।)

रा०—(हाथ जोड़ कर ब्राह्मण को दक्षिणा देती है) महाराज, गुरुजी से मेरी ओर से विनती करके दण्डवत् कह दीजियेगा ।

ब्रा०—जो आज्ञा । (आशीर्वाद देकर जाता है)

रा०—आज महाराज अब तक सभा में नहीं आये ?

स०—अब आते होंगे, पूजा में कुछ देर लगी होगी ।

(नेपथ्य में वैतालिक गाते हैं)

(राग भैरव)

प्रगटहु रवि-कुल-रवि निसि बीती प्रजा-कमल-गन फूले ।
मन्द परे रिपुगन तारा सम जन-भय-तम उनमूले ॥
नसे चोर लम्पट खल लखि जग तुव प्रताप प्रगटायो ।
मागध बन्दी सूत चिरैयन मिलि कल रोर मचायो ॥
तुव जस सीतल पौन परसि चटकी गुलाब की कलियाँ ।
अतिसुखपाइ असीस देत सोइ करि अँगुरिन चट अलियाँ ॥
भये धरम में तत्पर द्विज जन प्रजा काज निज लागे ।

रिपु-जुवती-मुख-कुमुद मन्द, जनु चक्रबाक अनुरागे ॥
अरघ-सरिस उपहार लिये नृप ठाढ़े तिन कहँ तोखौ।
न्याय कृपा सो ऊँच-नीच सम समुझि परसि कर पोखौ ॥

(नेपथ्य में से बाजे की धुनि सुन पड़ती है)

रा०—महाराज ठाकुर जी के मन्दिर से चले, देखो बाजों का शब्द सुनाई देता है और बन्दी लोग भी गाते आते हैं।

स०—आप कहती हैं चले ? वह देखिए आ पहुँचे, कि चले ?

रा०—(घबड़ा कर आदर के हेतु उठती है)

(* परिकर-सहित महाराज हरिश्चन्द्र † आते हैं)

(रानी प्रणाम करती है और सब लोग यथास्थान बैठते हैं ।)

ह०—(रानी से प्रीतिपूर्वक) प्रिये ! आज तुम्हारा मुखचन्द्र मलिन क्यों हो रहा है ?

रा०—पिछली रात मैंने कुछ दुःस्वप्न ऐसे देखे हैं जिनसे चित्त व्याकुल हो रहा है।

ह०—प्रिये ! यद्यपि स्त्रियों का स्वभाव सहज ही भीरु होता है, पर तुम तो वीर-कन्या, वीर-पत्नी और वीर-माता हो, तुम्हारा स्वभाव ऐसा क्यों ?

---

* राजा के परिकर में प्रथम मन्त्री जीमा, पैजामा, कमरबन्द, पगड़ी, सिरपेच सजे। दो मुसाहेब साधारण सभ्यों के वेष के, एक निशानवाला सेवक के वेष में। निशान पर सूर्य्य के नीचे 'सत्ये नास्ति भयं क्वचित्' लिखा हुआ। चार शस्त्रधारी सफेद अङ्गरक्षक, दो सेवक।

† सफेद वा केसरी जामा, पैजामा, कमरबन्द मर्दाना सब गहना सिर पर किरीट वा पगड़ी, सिरपेच तुर्रा, हाथ में तलवार, दुशाला या कोई चमकता रुमाल ओढ़े।

रा०—नाथ ! मोह से धीरज जाता रहता है।

ह०—तो गुरुजी से कुछ शान्ति करने को नहीं कहलाया !

रा०—महाराज ! शान्ति तो गुरुजी ने कर दी है।

ह०—तब क्या चिन्ता है ? शास्त्र और ईश्वर पर विश्वास रक्खो, सब कल्याण होगा। सदा सर्वदा सहज मङ्गल-साधन करते भी जो आपत्ति आ पड़े तो उसे निरी ईश्वर की इच्छा ही समझ के सन्तोष करना चाहिये।

रा०—महाराज ! स्वप्न के शुभाशुभ का विचार कुछ महाराज ने ग्रन्थों में देखा है ?

ह०—(रानी की बात अनसुनी करके) स्वप्न तो कुछ हमने भी देखा है। (चिन्तापूर्वक स्मरण करके) हाँ, यह देखा है कि एक क्रोधी ब्राह्मण विद्यासाधन करने को सब दिव्य महाविद्याओं को खींचता है और जब मैं स्त्री जानकर उसको बचाने गया हूँ तब वह मुझ ही से रुष्ट हो गया है और फिर जब बड़े विनय से मैंने उसे मनाया है तो उनने मुझ से मेरा सारा राज्य माँगा है, मैंने उसे प्रसन्न करने को अपना सब राज्य दे दिया।

(इतना कह कर अत्यन्त व्याकुलता का नाट्य करता है)

रा०—नाथ ! आप एक साथ ऐसे व्याकुल क्यों हो गये ?

ह०—मै यह सोचता हूँ कि अब मैं उस ब्राह्मण को कहाँ पाऊँगा और बिना उसकी थाती उसे सौंपे भोजन कैसे करूँगा।

रा०—नाथ ! क्या स्वप्न के व्यवहार को भी आप सत्य मानियेगा ?

ह०—प्रिये! हरिश्चन्द्र की अर्द्धाङ्गिनी होकर तुम्हें ऐसा कहना उचित नहीं है। हा! भला तुम ऐसी बात मुँह से निकालती हो! स्वप्न किसने देखा है? मैंने न? फिर क्या? स्वप्न-संसार अपने काल में असत्य है इसका कौन प्रमाण है? और जो अब असत्य कहो, तो मरने के पीछे तो यह संसार भी असत्य है, फिर उसमें परलोक के हेतु लोग धर्माचरण क्यों करते हैं? दिया सो दिया, क्या स्वप्न में क्या प्रत्यक्ष?

रा०—(हाथ जोड़कर) नाथ! क्षमा कीजिये, स्त्री की बुद्धि ही कितनी।

ह०—(चिन्ता करके) पर मैं अब करूँ क्या! अच्छा प्रधान! नगर में डौंड़ी पिटवा दो कि राज्य के सब लोग आज से इसे अज्ञात-नाम-गोत्र ब्राह्मण का समझें। उसके अभाव में हरिश्चन्द्र उसके सेवक की भाँति उसकी थाती समझ के राजकार्य करेगा और दो मुहर राजकाज के हेतु बनवा लो, एक पर "अज्ञात-नाम-गोत्र ब्राह्मण महाराजा का सेवक हरिश्चन्द्र" और दूसरे पर "राजाधिराज अज्ञात-नाम-गोत्र ब्राह्मण महाराज" खुदा रहे और आज से राजकाज के सब पत्रों पर भी यही नाम रहे। देश के राजाओं और बड़े-बड़े कार्याधीशों को भी आज्ञापत्र भेज दो कि महाराज हरिश्चन्द्र ने स्वप्न में अज्ञात-नाम-गोत्र ब्राह्मण को पृथ्वी दी है, इससे आज से उसका राज्य हरिश्चन्द्र मन्त्री की भाँति सँभालेगा।

(द्वारपाल आता है)

द्वा०—महाराजाधिराज ! एक बड़ा क्रोधी ब्राह्मण दरवाजे पर खड़ा हैं और व्यर्थ हम लोगों को गाली देता है।

ह०—(घबड़ाकर) अभी आदरपूर्वक ले आओ।

द्वा०—जो आज्ञा (जाता है)

ह०—यदि ईश्वरेच्छा से यह वही ब्राह्मण हो तो बड़ी अच्छी बात है। (द्वारपाल के साथ विश्वामित्र ❀ आते हैं)

ह०—(आदरपूर्वक आगे से लेकर और प्रणाम करके) महाराज ! पधारिये, यह आसन है।

वि०—बैठ चुके, बोल अभी तैंने मुझे पहचाना कि नहीं ?

ह०—(घबड़ाकर) महाराज ! पूर्वपरिचित तो आप ज्ञात होते हैं।

वि०– (क्रोध से) सच है रे क्षत्रियाधम ! तू काहे को पहचानेगा सच है रे सूर्यकुल-कलंक ! तू क्यों पहचानेगा, धिक्कार है तेरे मिथ्या-धर्माभिमान को; ऐसे ही लोग पृथ्वी को अपने बोझ से दबाते हैं। अरे दुष्ट ! तैं भूल गया; कल पृथ्वी किसको दान दी थी ? जानता नहीं कि मैं कौन हू ?

"जातिस्वयंग्रहणदुर्ललितैकविप्रं
दृप्यद्वशिष्ठसुतकाननधूमकेतुम्।

❀ जटा और दाढ़ी बढ़ाये, खड़ाऊँ पहने, गले में मृगछाला बाँधे; धोती पर बाँधे की मोटी कपनी, एक हाथ में कुश कमण्डलु।

सर्गान्तरोहरणभीतजगत्कृतान्तं
चाण्डालयाजिनमवैषि न कौशिकं माम् ॥ "

ह०—(पैरों पर गिर के बड़े विनय से) महाराज ! भला आपको त्रैलोक्य में ऐसा कौन है जो न जानेगा ?

"अन्नत्रयादिषु तथा विहितात्मवृत्ति
राजप्रतिग्रहपराङ्मुखमानसं त्वम् !
आडीबकप्रधनकम्पितजीवलोकं
कस्तेजसां च तपसां च निधिं न वेत्ति ॥ "

वि०—(क्रोध से) सच है रे, पाप, पाखंड, मिथ्यादानवीर ! तू क्यों न मुझे " राज-प्रतिग्रह-पराङ्मुख " कहेगा, क्योंकि तैंने तो कल सारी पृथ्वी मुझे दान दी है, ठहर, ठहर, देख, इस झूठ का कैसा फल भोगता है। हा ! इसे देख कर क्रोध से मेरी दाहिनी भुजा शाप देने को उठती है। वैसे ही जातिस्मरण के संस्कार से बाईं भुजा फिर से कृपाण ग्रहण किया चाहती है। (अत्यन्त क्रोध से लम्बी साँस लेकर और बाँह उठाकर) अरे ब्रह्मा ! सँभाल अपनी सृष्टि को, नहीं तो परम तेजपुञ्ज दीर्घतपोवर्द्धित मेरे इस असह्य क्रोध से आज सारा संसार नाश हो जायगा, अथवा संसार के नाश ही से क्या ? ब्रह्मा का तो गर्व उसी दिन मैंने चूर्ण किया जिस दिन दूसरी सृष्टि बनाई। आज इस राजकुलाङ्गार का अभिमान चूर्ण करूँगा जो मिथ्या अहङ्कार के बल से जगत में दानी प्रसिद्ध हो रहा है।

ह०—(पैरों पर गिर के) महाराज ! क्षमा कीजिये, मैंने इस बुद्धि से नहीं कहा था। सारी पृथ्वी आपकी, मैं आपका, भला आप ऐसी क्षुद्र बात मुँह से निकलते हैं ! (ईषत् क्रोध से) और आप बारम्बार मुझे झूठा न कहिये। सुनिये, मेरी यह प्रतिज्ञा है—

'चन्द्र टरै सूरज टरै, टरै जगत-व्योहार।
पै दृढ़ श्रीहरिचन्द को, टरै न सत्य विचार ॥'

वि०—(क्रोध और अनादरपूर्वक हँसकर) हहहह ! सच है, सच है, सच है, रे मूढ़ ! क्यों नहीं; आखिर सूर्यबंशी है तो दे हमारी पृथ्वी।

ह०—लीजिये, इसमें विलम्ब क्या है, मैंने तो आपके आगमन के पूर्व ही से अपना अधिकार छोड़ दिया है (पृथ्वी की ओर देखकर)।

जेहि पाली इक्ष्वाकु सो, अब लौं रवि-कुल-राज।
ताहि देत हरिचन्द नृप, विश्वामित्रहिं आज ॥
वसुधे ! तुम बहु सुख कियो, मम पुरुषन की होय।
धरमबद्ध हरिचन्द को छमहु, सु परवस जोय ॥

वि०—(आप ही आप) अच्छा ! अभी अभिमान दिखाले, तो मेरा नाम विश्वामित्र, जो तुमको सत्य-भ्रष्ट करके छोड़ा और लक्ष्मी से तो हो ही चुका है। (प्रकट) स्वस्ति; अब इस महादान की दक्षिणा कहाँ है ?

ह०—महाराज ! जो आज्ञा हो वह दक्षिणा अभी आती है।

वि०—भला सहस्र स्वर्णमुद्रा से कम इतने बड़े दान की दक्षिणा क्या होगी ?

ह०—जो आज्ञा। (मंत्री से) मंत्री ! हजार स्वर्णमुद्रा अभी लाओ !

वि०—(क्रोध से) 'मंत्री हजार स्वर्णमुद्रा अभी लाओ" मंत्री कहाँ से लावेगा ? कहा अब खजाना तेरा है ? झूठा कहीं का, देना नहीं था तो मुह से कहा क्यों ! चल, मैं नहीं लेता ऐसे मनुष्य की दक्षिणा।

ह०—(हाथ जोड़कर विनय से) महाराज ठीक है। खजाना अब सब आपका है। भूला क्षमा किजिए ! क्या हुआ खजाना नहीं तो मेरा शरीर तो है !

वि०—एक महीने में जो मुझे दक्षिणा न मिलेगी तो मैं तुझ पर कठिन ब्रह्मदण्ड गिराऊँगा। देख, केवल एक मास की अवधि है।

ह०—महाराज ! मैं ब्रह्मदण्ड से उतना नहीं डरता जितना सत्यदण्ड से, इससे—

बेचि देह दारा सुअन, होइ दास हूँ मन्द।
राख है निज बच सत्य करि, अभिमानी हरिचन्द।

(आकाश से फूल की वृष्टि और बाजे के साथ जयध्वनि होती है।)

(जवनिका गिरती है।)

इति दूसरा अङ्क।

तीसरे अंक में अंकावतार

(स्थान वाराणसी का बाहरी प्रान्त, तालाब)

(पाप * आता है)

पा०—(इधर-उधर दौड़ता और हाँफता हुआ) मरे रे मरे! जले रे जले !! कहाँ जायँ, सारी पृथ्वी तो हरिश्चन्द्र के पुण्य से ऐसी पवित्र हो रही है कि कहीं हम ठहर ही नहीं सकते। सुना है राजा हरिश्चन्द्र काशी गये हैं, क्योंकि दक्षिणा के वास्ते विश्वामित्र ने कहा कि सारी पृथ्वी तो हमको तुमने दान दे दी है, इससे पृथ्वी में जितना धन है सब हमारा हो चुका और तुम पृथ्वी में कहीं भी अपने को बेच कर हमसे उऋण नहीं हो सकते। यह बात जब हरिश्चन्द्र ने सुनी तो बहुत ही घबराये और सोच-विचार कर कहा कि बहुत अच्छा महाराज ! हम काशी में अपना शरीर बेचेंगे क्योंकि शास्त्रों में लिखा है कि काशी पृथ्वी के बाहर शिव के त्रिशूल पर है। यह सुनकर हम भी दौड़े कि चलो हम काशी चलें क्योंकि जहाँ हरिश्चन्द्र का राज्य न होगा वहाँ हमारे प्राण बचेंगे, सो यहाँ और भी उत्पात हो रहा है। जहाँ देखो वहाँ स्नान, पूजा, जप, पाठ, दान, धर्म, होम इत्यादि में लोग ऐसे लगे रहते हैं कि हमारी मानों जड़ ही खोद डालेंगे। रात-दिन शंख-घन्टा

---

* काजल सा रंग, लाल नेत्र, महा कुरूप, हाथ में नङ्गी तलवार लिये, नीला काछा काछे।

की घनघोर ध्वनि के साथ वेद की धुनि मानों ललकार-ललकार के हमारे शत्रु धर्म की जय मनाती है और हमारे ताप से कैसा भी मनुष्य क्यों न तपा हो भगवती भागीरथी के जल-कण ले वायु से उसका हृदय एक साथ शीतल हो जाता है। इसके उपरान्त शिशिशि…ध्वनि अलग मारे डालती हैं। हाय। कहाँ जायँ, क्या करें ? हमारी तो संसार से मानों जड़ ही काटी जाती है, भला और जगह तो कुछ हमारी चलती भी है, पर यहाँ तो मानो हमारा राज ही नहीं। कैसा भी बड़ा पापी क्यों न हो; यहाँ आया कि गति भई !

(नेपथ्य में)

सच है "येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः"

पा०–अरे रे ! यह कौन महा-भयङ्कर भेष अङ्गमें भभूत पोते, एड़ी तक जटा लटकाये लाल-लाल आँखें निकाले साक्षात काल की भाँति त्रिशूल घुमाता चला आता है। प्राण ! तुम्हें जो अपनी रक्षा करनी हो तो भागो पाताल में। अब इस समय भूमण्डल में तुम्हारा ठिकाना लगना कठिन ही है।

(भागता हुआ जाता है)

(भैरव* आते हैं)

---

* महादेव जी का सिंगार, तीन नेत्र, नीला रङ्ग, एक-हाथ में त्रिशूल दूसरे में प्याला।

भै०--सच है "येषां कापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः" देखो इतना बड़ा पुण्यशील राजा हरिश्चन्द्र भी अपनी आत्मा और पुत्र बेचने को यहीं आया है! अहा! धन्य है सत्य! आज जब भगवान् भूतनाथ राजा हरिश्चन्द्र का वृत्तान्त भवानी से कहने लगे तो उनके तीनों नेत्र अश्रु से पूर्ण हो गये और रोमाञ्च होने से सब शरीर के भस्मकण अलग-अलग हो गये। मुझको आज्ञा भी हुई है कि अलक्ष रूप से तुम सर्वदा राजा हरिश्चन्द्र की अंगरक्षा करना; इससे चलूँ, मैं भी भेष बदलकर भगवान् की आज्ञा-पालन में प्रवृत्त होऊँ।

(जाते हैं, जवनिका गिरती है)

तीसरे अङ्क में यह अङ्कावतार समाप्त हुआ।

तीसरा अंक

(स्थान काशी के घाट-किनारे की सड़क)

महाराज हरिश्चन्द्र घूमते हुए दिखाई पड़ते हैं।)

ह०—देखो, काशी भी पहुँच गये। अहा! धन्य है काशी! भगवति वाराणसी! तुम्हें अनेक प्रणाम हैं। अहा! काशी की कैसी अनुपम शोभा है।

"चारहु आश्रम बर्न बसैं मनि कञ्चन धाम आकाशविभासिका। सोभा नहीं कहि जाय कछू बिधिनै रचि मानो पुरीन की नासिका। आपु बसै गिरिधारन जू तट देवनदी बर बारि बिलासिका। पुन्य-प्रकाशिका पाप-बिनासिका हीयहुलासिका सोहत कासिका ॥ १ ॥

"बसैं बिन्दुमाधव बिसेसरादि देव सबै दरसन ही ते लागै जमसुख मसी है। तीरथ अनादि पंचगंगा मनिकर्निकादि सात आवरण मध्य पुन्यरूप धसी है। गिरिधरदास पास भागीरथी सोभादेत जाकी धार तोरै आसु कर्मरूप रसी है। ससी सम जसी असी बरना में बसी पाप खसी हेतु असी ऐसी लसी बारानसी है ॥ २ ॥

"रचित प्रभा सी भासी अवलि मकानन की जिनके अकासी फबै रतन-नकासी है फिरैं दास-दासी विप्र-गृही और संन्यासी लसैं वर गुनरासी देवपुरीहू न जासी है। गिरिधरदास विश्व कीरति विलासी रमाहासी लौं उजासी जाकी लगत हुलासी है। खासी पर कासी पुनवाँसी चन्द्रिकासी जाके वासी अविनासि अघनासी ऐसी कासी है ॥ ३ ॥

देखा! जैसा ईश्वर ने यह सुन्दर अँगूठी के नगीने-सा नगर बनाया है वैसी ही नदी भी इसके लिए दी है। धन्य गंगे! "जन की सब त्रास विनास करी मुख ते निज नाम उचारन में। सब पाप प्रतापहिं दूर दर्‌यो तुम आप अपान निहारन में। अहो गंग अनंग के शत्रु करे बहु नेकु बलै मुख डारन में। गिरि-धारन जू कितने बिरचे गिरिधारन धारन धारन में ॥ ४ ॥ ❀"

कुछ महातम ही पर नहीं, गंगा जी का जल भी ऐसा ही उत्तम और मनोहर है! अहा!

नव उज्जवल जलधार, हार हीरक सी सोहति।
बिच बिच छहरति बूंद मध्य मुक्ता-मनि पोहति ॥
लोल लहर लहि पवन एक पै इक इमि आवत।
जिमि नर-गन मन विविध मनोरथकरत मिटावत ॥
सुभग-स्वर्ग-सोपान सरिस सब के मन भावत।
दरसन मज्जन पान त्रिविध भय दूर मिटावत ॥
श्रीहरिपद-नख-चन्द्रकान्त-मनि-द्रवित सुधारस।
ब्रह्म-कमण्डल मंडन, भव खंडन सुर-सरबस ॥
सिव-सिर मालतिमाल, भगीरथ नृपति-पुन्यफल।
ऐरावत गज गिरि-पति-हिम-नग-कंठहार कल ॥
सगर-सुवन सठ सहस परस जल मात्र उधारन।
अगिनित धारा रूप धारि सागर सञ्चारन ॥

❀ ये चारों कविता ग्रन्थकर्त्ता के पिता श्री बाबू गोपालचन्द की बनाई हैं, जो कविता में अपना नाम गिरिधरदास या गिरिधारण रखते थे।

काशी कहँ प्रिय जान ललकि भेट्यो जग धाई।
सपनेहूँ नहिं तजी, रही अङ्कम लपटाई॥
कहूँ बँधे नव घाट उच्च गिरिवर सम सोहत।
कहुँ छतरी, कहुँ मढ़ी, बढ़ी मन मोहत जोहत॥
धवल धाम चहुँ ओर फहरत धुजा पताका।
घहरत घंटा धुनि धमकत धौंसा करि साका॥
मधुरी नौबत बजत, कहूँ नारी नर गावत।
वेद पढ़त कहुँ द्विज, कहुँ जोगी ध्यान लगावत॥
कहुँ सुन्दरि नहात बारि कर-जुगल उछारत।
जुग अम्बुज मिलि मुक्तपुच्छ मनु सुच्छ निकारत॥
धोवत सुन्दरि वदन करन अति ही छबि पावत।
वारिधि नाते ससि कलङ्क मनु कमल मिटावत॥
सुन्दरि ससि मुख नीर मध्य इमि सुन्दर मोहत।
कमल बेलि लहलही नवल कुसुमन मन मोहत॥
दीठि जहीं जहँ जात रहत तितहीं ठहराई।
गंगा छवि हरिचन्द कछू बरनी नहिं जाई॥

(कुछ सोच कर) पर हा! जो अपना जी दुखी होता है तो संसार सूना जान पड़ता है।

"अशनं वसनं वासो येषां चैवाविधानतः।
मगधेन समा काशी गंगाप्यंगारवाहिनी॥*"

विश्वामित्र को पृथ्वी दान करके जितना चित्त प्रसन्न नहीं

* जिनका भोजन, वस्त्र और निवास ठीक-ठीक नहीं है, उनको काशी भी मगह है और गंगा भी तपाने वाली है।

हुआ उतना अब बिना दक्षिणा दिये दुखी होता है। हा! कैसे कष्ट की बात है, राज-पाट, धन-धाम सब छूटा अब दक्षिणा कहाँ से देंगे। क्या करें। हम सत्य धर्म कभी छोड़ेंगे ही नहीं और मुनि ऐसे क्रोधी हैं कि बिना दक्षिणा मिले शापदेने को तैयार होंगे और जो वह शाप न भी देंगे तो क्या? हम ब्राह्मण का ऋण चुकाये बिना शरीर भी तो नहीं त्याग सकते। क्या करें! कुवेर को जीत कर धन लावें! पर कोई शस्त्र भी तो नहीं है; तो क्या किसी से माँग कर दें! पर क्षत्रिय का तो धर्म नहीं कि किसी के आगे हाथ पसारे. फिर ऋण काढ़े! पर देंगे कहाँ से! हां! देखो काशी में आकर लोग संसार के बंधन से छूटते हैं पर हमको यहाँ भी हाय-हाय मची है। हा! पृथ्वी तू फट क्यों नहीं जाती कि मैं अपना कलङ्कित मुह फिर किसी को न दिखाऊँ! (आतंक से) पर यह क्या? सूर्य्यवंश में उत्पन्न होकर हमारे ये कर्म हैं कि ब्राह्मण का ऋण दिये बिना पृथ्वी में समा जाना सोचें! (कुछ सोच कर) हमारी तो इस समय कुछ बुद्धि ही नहीं काम करती। क्या करें? हमें तो संसार सूना देख पड़ता है। (चिन्ता करके एक साथ हर्ष से) वाह! अभी तो स्त्री, पुत्र, हम, तीन-तीन मनुष्य तैयार हैं! क्या हमलोगों के बिकने से सहस्र स्वर्ण मुद्रा भी न मिलेगी? तब फिर किस बात का इतना सोच? न जाने बुद्धि इतनी देर तक कहाँ सोई थी; हमने तो पहले ही विश्वामित्र से कहा था—

बेचि देह दारा सुअन, होय दासहू मन्द।
रखि हैं निज बच सत्य करि, अभिमानी हरिचन्द॥

(नेपथ्य में)

तो क्यों नहीं जल्दी अपने को बेचता ? क्या हमें और काम नहीं है कि तेरे पीछे-पीछे दक्षिणा के वास्ते लगे फिरें ? अरे मुनि तो आ पहुँचे। क्या हुआ, आज उनसे एक-दो दिन की अवधि और लेंगे।

(विश्वामित्र आते हैं)

वि०—(आप ही आप) हमारी विद्या सिद्ध हुई भी इसी दुष्ट के कारण सब बहक गई। कुछ इन्द्र के कहने ही पर नहीं, हमारा इस पर स्वतः भी क्रोध है, पर क्या करें, इसके सत्य, धैर्य और विनय के आगे हमारा क्रोध कुछ काम नहीं करता। यद्यपि यह राज्य-भ्रष्ट हो चुका पर जब तक इसे सत्य-भ्रष्ट न कर लूँगा तब तक मुझे सन्तोष न होगा (आगे देखकर) अरे। यही दुरात्मा (कुछ रुककर) वा महात्मा हरिश्चन्द्र हैं ? (प्रकट) क्यों रे ? आज महीने में कै दिन बाकी हैं ? बोल, कब दक्षिणा देगा ?

ह०—(घबड़ाकर) अहा ! महात्मा कौशिक भगवन ! प्रणाम करता हूँ (दण्डवत् करता है)।

वि०—हुआ प्रणाम, बोल तैंने दक्षिणा देने का क्या उपाय किया ? आज महीना पूरा हुआ, अब मैं एक क्षण भर भी न मानूँगा। दे अभी, नहीं तो—(शाप के वास्ते कमण्डलु से जल हाथ में लेते हैं)।

ह०—(पैरों पर गिरकर) भगवन् ! क्षमा कीजिये। यदि

आज सूर्यास्त के पहिले मैं न दूँ तो जो चाहें कीजिएगा। मैं अभी अपने को बेचकर मुद्रा ले आता हूं।

वि०—(आप ही आप) वाह रे महानुभावता! (प्रकट) अच्छा, आज साँझ तक और सही। साँझ को न देगा तो मैं शाप ही न दूंगा, वरञ्च त्रैलोक्य में आज ही विदित कर दूँगा कि हरिश्चन्द्र का सत्य भ्रष्ट हुआ। (जाते हैं)।

ह०—भला किसी तरह मुनि से प्राण बचे। अब चलें अपना शरीर बेचकर दक्षिणा देने का उपाय सोचें। हा! ऋण भी कैसी बुरी वस्तु है, इस लोक में वही मनुष्य कृतार्थ है जिसने ऋण चुका देने को कभी क्रोधी और क्रूर लहनदार की लाल-लाल आंखें नहीं देखी हैं। (आगे चलकर) अरे! क्या बाजार में आगये, अच्छा, (सिर पर तृण रखकर) ❀ अरे सुनो भाई सेठ, साहूकार, महाजन, दूकानदारों, हम किसी कारण से अपने को हजार मोहर पर बेचते हैं, किसी को लेना हो तो लो। (इसी तरह कहता हुआ इधर-उधर फिरता है) देखो कोई दिन वह था कि इसी मनुष्य-विक्रय को अनुचित जानकर हम दूसरे को दण्ड देते थे पर आज वही कर्म हम आप करते हैं। दैव बली है!

❀ उस काल में जब कोई दास्यत्व स्वीकार करता था तब सिर पर तृण रखता था।

(अरे ! सुनो भाई इत्यादि कहता हुआ इधर-उधर फिरता है। ऊपर देख कर) क्या कहा ? "क्यों, तुम ऐसा दुष्कर कर्म करते हो ?" आर्य यह मत पूछो, यह सब कर्म की गति है। (ऊपर देखकर) क्या कहा ? 'तुम क्या कर सकते हो, क्या समझते हो, और किस तरह रहोगे ?" इसका क्या पूछना है। स्वामी जो कहेगा वह करेंगे; समझते सब कुछ हैं, पर इस अवसर पर समझना कुछ काम नहीं आता, और जैसे स्वामी रक्खेगा वैसे रहेंगे। जब अपने को बेच ही दिया तब इसका क्या विचार है। (ऊपर देख कर) क्या कहा ? "कुछ दाम कम करो" आर्य, हम लोग तो क्षत्रिय हैं, हम दो बात कहां से जाने। जो कुछ ठीक था कह दिया।

(नेपथ्य से)

आर्यपुत्र ! ऐसे समय में हमको छोड़ जाते हो ! तुम दास होगे तो मैं स्वाधीन रहके क्या करूँगी ? स्त्री को अर्द्धाङ्गिनी कहते हैं, इससे पहले बायाँ अंग बेच लो तब दहिना अङ्ग बेचो।

ह०—(सुनकर बड़े शोक से) हा ! रानी की यह दशा इन आँखों से कैसे देखी जायगी ?)

(सड़क पर शैव्या और बालक फिरते हुए दिखाई पड़ते हैं)

शै० —कोई महात्मा कृपा करके हमको मोल ले तो बड़ा उपकार हो।

बा०—अमको बी कोई मोल ले तो बला उपकाल ओ।

शै०—(आंखों में आँसू भर कर) पुत्र ! चन्द्र-कुल-भूषण महा-राज वीरसेन का नाती और सूर्य्यकुल की शोभा महा-राज हरिश्चन्द्र का पुत्र होकर तू क्यों ऐसे कातर वचन कहता है। मैं अभी जीती हूँ ! (रोती है)

बा०—(माँ का अञ्चल पकड़ के) माँ ! तुमको कोई मोल लेगा तो हमको बी मोल लेगा। आँ, आँ, माँ लोती काए को ओ (कुछ रोना सा मुँह बना के शैव्या का आँचल पकड़ के भूलने लगता है)।

शै०—(आंसू पोंछ कर) अरे भाग्य से पूछ।

ह०—अहह ! भाग्य ! यह भी तुम्हें देखना था ? हा ! अयोध्या की प्रजा रोती रह गई, हम उनको कुछ धीरज भी न दे आये। उनकी अब कौन गति होगी। हा ! यह नहीं कि राज छूटने पर भी छुटकारा हो, अब यह देखना पड़ा। हृदत ! तुम इस चक्रवर्ती की सेवा-योग्य बालक और स्त्री को बिकता देख कर टुकड़े-टुकड़े क्यों नहीं हो जाते ? (बारम्बार लम्बी साँस लेकर आँसू बहाता है)।

शै०—(कोई महात्मा इत्यादि कहती हुई ऊपर देख कर) क्या कहा ? "क्या-क्या करोगी ?" पर-पुरुष से सम्भाषण और उच्छिष्ट भोजन छोड़ कर और सब सेवा करूँगी। (ऊपर देख कर) क्या कहा ? "इतने मोल

पर कौन लेगा ?" आर्य्य ! कोई साधु-ब्राह्मण-महात्मा कृपा करके ले ही लेंगे।

(उपाध्याय और बटुक आते हैं)

उ०—क्यों रे कौण्डिन्य ! सच ही दासी बिकती है ?

ब०—हाँ, गुरुजी ! क्या मैं झूठ कहूँगा ? आप ही देख लीजिएगा।

उ०—लो चल, आगे-आगे भीड़ हटाता चल, देख, धारा-प्रवाह की भाँति कैसे सब काम-काजी लोग इधर से उधर फिर रहे हैं, भीड़ के मारे पैर धरने को जगह नहीं है और मारे कोलाहल के कान नहीं दिया जाता।

ब०—(आगे आगे चलता हुआ) हटो भाई, हटो (कुछ आगे बढ़कर) गुरुजी ! यह जहाँ भीड़ लगी है वहीं होगी।

उ०—(शैव्या को देखकर) अरे, यही दासी बिकती है ?

शै०—(अरे कोई हमको मोल ले इत्यादि कहती और रोती है।

बा०—(माता की भाँती तोतली बोली से कहता है)।

उ०—पुत्री ! कहो तुम कौन सेवा करोगी ?

शै०—पर-पुरुष से सम्भाषण और उच्छिष्ट भोजन छोड़ कर और जो-जो कहियेगा सब करूँगी.?

उ०—वाह ! ठीक है। अच्छा, लो यह सुवर्ण। हमारी ब्राह्मणी अग्निहोत्र की अग्नि की सेवा से घर के काम-काज नहीं कर सकती सो तुम सँभालना।

शै०— (हाथ फैलाकर) महाराज ! आपने बड़ा उपकार किया।

उ०—(शैव्या को भली भाँति देखकर आप ही आप) अहा ! यह निस्सन्देह किसी बड़े कुल की है। इसका मुख सहज लज्जा से ऊँचा नहीं होता और दृष्टि बराबर पैर ही पर है। जो बोलती है वह धीरे-धीरे और बहुत सँभाल के बोलती है। हा ! इसकी यह गति क्यों हुई ? (प्रकट) पुत्री ! तुम्हारे पति हैं ?

शै०—(राजा की ओर देखती है)

ह०—(आप ही आप दुःख से) अब नहीं हैं। पति के होते भी ऐसी स्त्री की यह दशा हो !

उ०—(राजा को देख कर आश्चर्य से) अरे यह विशाल-नेत्र, प्रशस्त-वक्षस्थल और संसार की रक्षा करने के योग्य लम्बी-लम्बी भुजा वाला कौन मनुष्य है और मुकुट के योग्य सिर पर तृण क्यों रक्खा है ? (प्रकट) महात्मा तुम हमको अपने दुःख का भागी समझो और कृपा पूर्वक अपना सब वृत्तान्त कहो।

ह०— भगवन् और तो विदित करने का अवसर नहीं है, इतना ही कहता हूँ कि ब्राह्मण के ऋण के कारण यह दशा हुई।

उ०— तो हमसे धन लेकर आप शीघ्र ही ऋण-मुक्त हूजिए !

ह०—(दोनों कानों पर हाथ रख कर) राम राम ! यह तो ब्राह्मण की वृत्ति है। आप से धन लेकर हमारी कौन गति होगी !

उ०—तो पाँच सौ मोहर पर आप दोनों में से जो चाहे सो हमारे संग चले।

शै—(राजा से हाथ जोड़ कर) नाथ ! हमारे आछत आप मत बिकये, जिसमें हमको अपनी आँख से यह न देखना पड़े, हमारी इतनी बिनती मानिये। (रोती है)।

ह०—(आँसू रोक कर) अच्छा ! तुम्हीं जाओ। (आप ही आप) हा ! बज्र हृदय हरिश्चन्द्र ही का है कि अब भी नहीं विदीर्ण होता !

शै०—(राजा के कपड़े में सोना बांधती हुई) नाथ अब तो दर्शन भी दुर्लभ होंगे। (रोती हुई उपाध्याय से) आर्य्य ! आप क्षण भर क्षमा करें तो मैं आर्यपुत्र का भली-भाँति दर्शन कर लूँ। फिर यह मुख कहाँ और मैं कहाँ !

उ०—हाँ ! हाँ, मैं जाता हूं, कौण्डिन्य यहाँ हैं, तुम उसके साथ आना। (जाता है)।

शै०—(रोकर) नाथ ! मेरे अपराधों को क्षमा करना।

ह०—(अत्यन्त घबड़ा कर) अरे, अरे, विधाता तुझे यही करना था। (आपही आप) हा ! पहले महारानी बनाकर अब दैव ने इसे दासी बनाया। यह भी देखना बदा था। हमारी इस दुर्गति से आज कुलगुरु भगवान् सूर्य का भी मुख मलीन हो रहा है। (रोता हुआ, प्रकट रानी से) प्रिये ! सर्व भांत से उपाध्याय को प्रसन्न करना और सेवा करना।

शै०—(रोकर) नाथ ! जो आज्ञा।

बटु०—उपाध्याय जी गये, अब चलो जल्दी करो ;

ह०—(आँखों में आँसू भर के) देवी ! (फिर रुककर अत्यन्त सोंच से आप ही आप) हाय ! अब मैं देवी क्यों कहता हूँ, अब तो विधाता ने इसे दासी बनाया। (धैर्य से) देवी ! उपाध्याय की आराधना भली भाँति करना और इनके सब शिष्यों से भी सुहृद्-भाव रखना, ब्राह्मण की स्त्री की प्रीति-पूर्वक सेवा करना बालक का यथासम्भव पालन करना और अपने धर्म और प्राण की रक्षा करना। विशेष हम क्या समझावें। जो-जो दैव दिखावे उसे धीरज से देखना (आँसू बहते हैं)।

शै०—जो आज्ञा (राजा के पैरों पर गिर के रोती है)।

ह०—(धैर्यपूर्वक) प्रिये ! देर मत करो, बटुक घबड़ा रहे हैं।

शै०—(उठकर रोती और राजा की ओर देखती हुई धीरे-धीरे चलती है)।

बा०—(राजा से) माँ कआँ जाती ऐं।

ह०—(धैर्य से आँसू रोक कर) जहाँ हमारे भाग्य ने उसे दासी बनाया है।

बा०—(बटुक से) अले मा को मत ले जा। (मा का आँचल पकड़ के खींचता है)।

बटु०—(बालक को ढकेल कर) चल, चल देर होती है।

बा०—ढकेलने से गिर कर रोता हुआ उठकर अत्यन्त क्रोध और करुणा से माता-पिता की ओर देखता है)।

ह०—ब्राह्मण देवता ! बालकों के अपराध से नहीं रुष्ट होना।

(बालक को उठाकर धूर पोंछ के मुँह चूमता हुआ) पुत्र ! मुझ चण्डाल का मुख इस समय ऐसे क्रोध से क्यों देखता है ? ब्राह्मण का क्रोध तो सभी दशा में सहना चाहिए। जाओ, माता के संग, मुझ भाग्यहीन के साथ रहकर क्या करोगे ? (रानी से) प्रिये ! धैर्य धरो। अपना कुल और जाति स्मरण करो। अब जाओ, देर होती है।

(रानी और बालक रोते हुए बटुक के साथ जाते हैं)

ह०—धन्य हरिश्चन्द्र ! तुम्हारे सिवा और कठोर हृदय किसका होगा ? संसार में धन और जन छोड़ कर लोग स्त्री की रक्षा करते हैं, पर तुमने उसका भी त्याग किया।

(विश्वामित्र आते हैं।)

ह०—(पैर पर गिरके प्रणाम करता है)

वि०—ला, दे दक्षिणा ! अब साँझ होने में कुछ देर नहीं है।

ह०—(हाथ जोड़कर) महाराज, आधी लीजिये; आधी अभी देता हूँ (सोना देता है)।

वि०—हम आधी दक्षिणा लेके क्या करें ! दे, चाहे जहां से सब दक्षिणा।

(नेपथ्य में)

धिक् तपो धिक् व्रतमिदं धिग् ज्ञानंधिग् बहु श्रुतम्।
नीतवानसि यद् ब्रह्मन् हरिश्चन्द्रमिमां दशाम्॥

वि०—(बड़े क्रोध से) आः ! हमको धिक्कार देने वाला यह कौन दुष्ट है ? (ऊपर देख कर) अरे विश्वेदेवा ! (क्रोध

से जल हाथ में लेकर) अरे क्षत्रिय के पक्षपातियो ! तुम अभी विमान से गिरो और क्षत्रिय के कुल में तुम्हारा जन्म हो और वहाँ भी लड़कपन ही में ब्राह्मण के हाथ मारे जाओ ❀ । (जल छोड़ते हैं) (नेपथ्य में हाहाकार के साथ बड़ा शब्द होता है)। (सुनकर और ऊपर देखकर आनन्द से) हहहह ! अच्छा हुआ ! यह देखो, किरीट कुण्डल बिना मेरे क्रोध से विमान से छूट कर विश्वेदेवा उल्टे ही होकर नीचे गिरते हैं; और हमको धिक्कार दें।

ह०—(ऊपर देख कर भय से) वाह रे तप के प्रभाव ! (आप ही आप) तब तो हरिश्चन्द्र को अब तक शाप नहीं दिया है यह बड़ा अनुग्रह है ! (प्रकट) भगवन् ! यह स्त्री बेच कर आधा धन पाया है सो और आधा हम अपने को बेचकर अभी देते हैं।

(नेपथ्य में)

अरे, अब तो नहीं सही जाती।

वि०—हम आधा न लेंगे, चाहे जहाँ से अभी सब दे।

ह०—अरे सुनो भाई, सेठ-साहूकार इत्यादि पुकारता हुआ घूमता है।

(चाण्डाल वेष में धर्म और सत्य आते हैं +)

❀ यही पाँचो विश्वेदेवा विश्वामित्र के शाप से द्वापर में द्रौपदी के पाँच पुत्र हुए जिन्हें अश्वत्थामा ने बालपन ही में मार डाला।

+ काँछ कछे, काला रंग, लाल नेत्र . सिर पर छोटे-छोटे घुँघराले बाल और शरीर नंगा, बातों से मतवालापन झलकता हुआ।

धर्म०—(आप ही आप)।

हम प्रतच्छ हरिरूप जगत हमरे बल चालत ।
जल-थल-नभ-थिर मो प्रभाव मरजाद न टालत ॥
हमहीं नर के मीत सदा साँचे हितकारी ।
इक हमही सँग जात, तजत जब पितु सुत नारी ॥
सो हम नित थित इक सत्य में जाके बल सब जग जियो ।
सो सत्य परिच्छन नृपति को आज भेस हम यह कियो ॥

(आश्चर्य से आप ही आप) सचमुच इस राजर्षि के समान दूसरा आज त्रिभुवन में नहीं है ।

(आगे बढ़कर प्रकट) अरे ! हरजनवाँ ! मोहर का सन्दूक ले आवा है न !

सत्य—का चौधरी ! मोहर लेके का करबो ?

धर्म०—तोहसे का काम पूछै से ?

(दोनों आगे बढ़ते हुए फिरते हैं)

ह०—(अरे सुनो, भाई, सेठ-साहूकार इत्यादि दो-तीन बेर पुकारके इधर उधर घूमकर) हाय ! कोई नहीं बोलता और कुलगुरु भगवान् सूर्य भी आज हमसे रुष्ट होकर शीघ्र ही अस्ताचल जाया चाहते हैं (घबराहट दिखाता है)।

धर्म०—(आप ही आप) हाय ! हाय ! इस समय इस महात्मा को बड़ा ही कष्ट है। तो अब चलें आगे। (आगे बढ़ कर) अरे ! अरे ! हम तुमको मोल लेंगे, लेव यह पाँच सै मोहर लेव।

ह०—(आनन्द से आगे बढ़ कर) वाह कृपानिधान! बड़े अवसर पर आये। लाइए (उसको पहचान कर) आप मोल लेंगे?

धर्म०—हाँ, हम मोल लेंगे। (सोना देना चाहता है)

ह०—आप कौन हैं?

धर्म०—हम चौधरी डोम सरदार। अमल हमारा दोनों पार॥
सब मसान पर हमराराज। कफन माँगने का है काज॥
फूलमती देवी * के दास। पूजें सती मसान निवास॥
धनतेरस औ रात दिवाली। बलि चढ़ाय के पूजें काली॥
सो हम तुम को लेंगे मोल। देंगे मुहर गाँठ से खोल॥

(मत्त की भाँति चेष्टा करता है)

ह०—(बड़े दुःख से) अहह! बड़ा दारुण व्यसन उपस्थि हुआ है। (विश्वामित्र से) भगवन्! मैं पैर पड़ता हूँ, मैं जन्म भर आप का दास होकर रहूँगा, मुझे चाण्डाल होने से बचाइए।

वि०—(छिः मूर्ख! भला हम दास लेके क्या करेंगे? "स्वयं दासास्तपस्विनः"।

ह०—(हाथ जोड़ कर) जो आज्ञा कीजिएगा हम सब करेंगे।

वि०—सब करेगा न? (ऊपर हाथ उठाकर) धर्म के साक्षी देवता लोग सुनें, यह कहता है कि जो आप कहेंगे मैं सब करूँगा।

---

* प्राचीन काल में चाण्डालों की कुल देवी चण्डकात्यायनी थीं; परन्तु इस काल में फूलमती इन लोगों की कुलदेवी हैं।

ह०—हाँ, हाँ, जो आप आज्ञा कीजिएगा सब करूँगा।

वि०—तो इसी गाहक के हाथ अपने को बेचकर अभी हमारी शेष दक्षिणा चुका दे।

ह०—जो आज्ञा (आप ही आप) अब कौन सोच है। (प्रगट धर्म से) तो हम एक नियम पर बिकेंगे!

धर्म०—वह कौन?

ह०—भीख असन, कम्बल बसन, रखि हैं दूर निवास।
जो प्रभु आज्ञा होइ है, करि हैं सब ह्वै दास॥

धर्म०—ठीक है, लेव सोना (दूर से राजा के आंचल में मोहर देता है)।

ह०—(लेकर हर्ष से आप ही आप)।

ऋण छूट्यो पूरयो वचन, द्विजहु न दीनों साप।
सत्य पालि चाण्डाल हू, होइ आजु मोहि दाप॥

(प्रकट, विश्वामित्र से) भगवन्! लीजिये यह मोहर।

वि०—(मुँह चिढ़ाकर) सचमुच देता है?

ह०—हाँ, हाँ, यह लीजिए! (मोहर देते हैं)।

वि०—(लेकर) स्वस्ति। (आप ही आप) बस अब चलो, बहुत परीक्षा हो चुकी। (जाना चाहते हैं)।

ह०—(हाथ जोड़कर) भगवन्! दक्षिणा देने में देर होने का अपराध क्षमा हुआ न?

वि०—हाँ, क्षमा हुआ अब हम जाते हैं।

ह०—भगवन्! प्रणाम करता हूँ।

(विश्वामित्र आशीर्वाद देकर जाते हैं)

ह०—अब चौधरी जी (लज्जा से रुक कर) स्वामी की जो आज्ञा हो वह करें ।

धर्म०—मत्त की भांति नाचता हुआ ।

जाओ अभी दक्खिनी मसान । लेव यहाँ कफ़न का दान ॥
जो कर तुमको नहीं चुकावे । सो किरिया करने नहीं पावे ॥
चलो घाट पर करो निवास । भये आज से हमरे दास ॥

ह०—जो आज्ञा ।

(जवनिका गिरती है)

इति तीसरा अङ्क



चौथा अंक

(स्थान-दक्षिण श्मशान, नदी, पीपल का पेड़, चिता, मुरदे, कौए, सियार, कुत्ते, हड्डी इत्यादि)

(कम्बल ओढ़ और एक मोटा लट्ठ लिये हुए राजा हरिश्चन्द्र दिखाई पड़ते हैं)

ह०—(लम्बी साँस लेकर) हाय ! अब जन्म भर यही दुःख भोगना पड़ेगा ।

जाति दास चण्डाल की, घर घनघोर मसान ।
कफन खसोटी को करम, सब ही एक समान ॥

न जाने ! विधाता का क्रोध इतने पर भी शान्त हुआ कि नहीं । बड़ों ने सच कहा है कि दुःख से दुःख जाता है । दक्षिणा का ऋण चुका, तो यह कर्म करना पड़ा । हम क्या सोचें ? अपनी अनाथ प्रजा को; या दीन नातेदारों को, या अशरण नौकरों को, या रोती हुई दासियों को, या सूनी अयोध्या को, या दासी बनी महारानी को, या उस अनजान बालक को, या अपने ही इस चण्डालपने को । हा ! बटुरु के धक्के से गिरकर रोहिताश्व ने क्रोध-भरी और रानी ने जाते समय करुणा-भरी दृष्टि से जो मेरी ओर देखा था वह अब तक नहीं भूलता । (घबड़ाकर) हा देवी ! सूर्यकुल की बहू और चन्द्रकुल की बेटी होकर तुम बेची गईं और दासी बनीं । हा ! तुम अपने जिन सुकुमार हाथों से फूल की माला भी न गूंथ सकती थीं उनसे बरतन कैसे माँजोगी । (मोह प्राप्त होने चाहता है पर सँभल कर) अथवा

क्या हुआ। यह तो कोई न कहेगा कि हरिश्चन्द्र ने सत्य छोड़ा।

वेचि देह दारा सुअन, होइ दास हू मन्द।
राख्यो निज बच सत्य करि, अभिमानी हरचन्द॥

(आकाश से पुष्पवृष्टि होती है)

अरे ! यह असमय में पुष्पवृष्टि कैसी ? किसी पुण्यात्मा का मुर्दा आया होगा। तो हम सावधान हो जायँ (लट्ठ कन्धे पर रख कर फिरता हुआ) खबरदार ! बिना हमसे कहे और बिना हमें आधा कफन दिये कोई संस्कार न करे (यही कहता हुआ निर्भय मुर्दा से इधर-उधर देखता फिरता है)। (नेपथ्य में, कोलाहल सुनकर) हाय हाय ! कैसा भयंकर श्मशान है ! दूर से मण्डल बाँध-बांध कर चोंच बाये डैना फैलाये कंगालों की तरह मुर्दों पर गिद्ध कैसे गिरते हैं और कैसा मांस नोच नोच कर आपस में लड़ते और चिल्लाते हैं। इधर अत्यन्त कर्णकटु अमंगल के नगाड़े की भाँति एक के शब्द की लाग से दूसरे सियार कैसे रोते हैं। इधर चिराइन फैलती हुई चट-चट करती चिताएँ कैसी जल रही है जिनमें कहीं से माँस के टुकड़े उड़ते हैं, कहीं लोहू वा चरबी बहती है। आग का रंग मांस के सम्बन्ध से नीला-पीला हो रहा है, ज्वाला घूम-घूम कर निकलती है, आग कभी एक साथ धधक उठती है, कभी मन्द हो जाती है। धुआँ चारों ओर छा रहा है। (आगे देख कर, आदर से) अहा ! यह बीभत्स व्यापार भी बड़ाई के योग्य है। शव ! तुम धन्य हो कि इन पशुओं के इतने काम आते हो; अतएव कहा है—

"मरनो भलो विदेश को, जहाँ न अपनो कोय।
माटी खायँ जनावराँ, महा-महोच्छव होय॥"

अहा! देखो।

सिर पैं बैठ्यो काग आँख दोउ खात निकारत।
खींचत जीभहि स्यार अतिहि आनँद उर धारत॥
गिद्ध जांघ कहँ खोदि-खोदि कै मांस उचारत।
स्वान आँगुरिन काटि-काटि के खान विचारत॥
बहु चील नोच लै जात तुच मोद मढ्यो सब को हियो।
मनु ब्रह्मभोज जिजमान कोउ आजु भिखारिन कहँ दियो॥
सोई मुख सोई उदर, सोई कर पद, दोय।
भयो आजु कछु और ही, परसत जेहि नहिं कोय॥
हाड़ मांस लाला रकत, बसा तुचा सब सोय।
छिन्न-भिन्न दुर्गन्ध मय, मरे मनुस के होय।
कादर जेहि लखि कै डरत, पण्डित पावत लाज।
अहो! व्यर्थ संसार को विषय वासना साज॥

अहा! मरना भी क्या वस्तु है।

सोई मुख जेहि चन्द बखान्यौ।
सोई अङ्ग जेहि प्रिय करि जान्यौ॥
सोई भुज से प्रिय गर डारें।
सोई भुज जिन नर विक्रम पारें॥
सोई पद जिहि सेवक बन्दत।
सोई छवि जेहि देखि अनन्दत॥
सोई रसना जहँ अमृत बानी।

जेहि सुनि के हिय नारि जुड़ानी ॥
सोई हृदय जहँ भाव अनेका ।
सोई सिर जहँ निज बच टेका ॥
सोई छवि-मय अङ्ग सुहाये ।
आज जीव बिनु धरनि सुहाये ॥

कहां गई वह सुन्दर सोभा ।
जीवत जेहि लखि सब मन लोभा ॥
प्रानहु ते बढ़ि जा कहँ चाहत ।
ता कहँ आजु सबै मिलि दाहत ॥

फूल बोझहू जिन न सहारे ।
तिन पै बोझ काठ बहु डारे ॥
सिर पीड़ा जिनकी नहिं हेरी ।
करत कपालक्रिया तिन केरी ॥

छिनहूँ जे न भये कहुँ न्यारे ।
तेउ बन्धुगन छोड़ि सिधारे ॥
जो दृग कोर महीप निहारत ।
आजु काक तेहि भोज विचारत ॥
भुजबल जे नहिं भुवन समाये ।
ते लखियत मुख कफन छिपाये ॥

नर पति प्रजा भेद बिनु देखे ।
गने काल सब एकहि लेखे ॥
सुभग कुरूप अमृत विष सानो ।
आजु सबै इक भाव बिकानो ॥

पुरु दधीच कोऊ अब नाहीं।
रहे नाम ही ग्रन्थन माहीं॥

अहा! देखो वही सिर, जिस पर मन्त्र से अभिषेक होता था, कभी नवरत्न का मुकुट रक्खा जाता था, जिसमें इतना अभिमान था, कि इन्द्र को भी तुच्छ गिनता था, और जिसमें बड़े-बड़े राज्य जीतने के मनोरथ भरे थे, आज पिशाचों का गेंद बना है और लोग उसे पैर छूने में भी घिन करते हैं। (आगे देख कर) अरे यह श्मशानदेवी हैं। अहा! कात्यायनी को भी कैसा बीभत्स उपचार प्यारा है? यह देखो डोम लोगों ने सूखे, गले-सड़े फूलों की माला गङ्गा में से पकड़-पकड़ कर देवी को पहना दी है और कफन की ध्वजा लगा दी है। मरे बैल और भैसों के गले के घण्टे पीपल की डार में लटक रहे हैं, जिनमें लोलक की जगह नली की हड्डी लगी है। घण्टे के पानी से चारों ओर से देवी का अभिषेक होता है और पेड़ के खम्भे में लोहू के थापे लगे हैं। नीचे जो उतारों की बलि दी गई है उसके खाने को कुत्ते और सियार लड़-लड़कर कोलाहल मचा रहे हैं। (हाथ जोड़ कर)।

*"भगवति! चंडि! प्रेते! प्रेतविमाने! लसत्प्रेते। प्रेतास्थिरौद्ररूपे! प्रेताशिनि! भैरवि! नमस्ते"।

(नेपथ्य में) राजन्! हम केवल चाण्डालों के प्रणाम के योग्य हैं। तुम्हारे प्रणाम से हमें लज्जा आती है। माँगो, क्या वर मांगते हो?

---

* इस में प्रायः सब श्लोक आर्यक्षेमीश्वर के बनाये चण्डकौशिक से उद्धृत किये गये हैं।

ह०—(सुनकर आश्चर्य से) भगवति ! यदि आप प्रसन्न हैं तो हमारे स्वामी का कल्याण कीजिये ।

(नेपथ्य में) साधु महाराज ! हरिश्चन्द्र साधु !

ह०—(ऊपर देखकर) स्थिरता किसी को भी नहीं है। जो सूर्य उदय होते ही पद्मिनी-वल्लभ और लौकिक-वैदिक दोनों कर्मों का प्रवर्त्तक था, जो दोपहर तक अपना प्रचण्ड प्रताप क्षण-क्षण बढ़ाता गया, जो गगनाङ्गन का दीपक और कालसर्प का शिखामणि था, वह इस समय परकटे गिद्ध की भाँति अपना सब तेज गँवा कर देखो समुद्र में गिरा चाहता है ।

अथवा :—

साँझ सोई पट लाल कसे कटि सूरज खप्पर हाथ लह्यो है ।
पच्छिम के बहु शब्दन के मिस जीअ उचाटन मन्त्र कह्यो है ॥
मद्य भरी नर खोपरी सों ससि को नव बिम्बहु धाइ गह्यो है ।
दै बलि जीव पसु वह मत्त ह्वै काल कपालिक नाच रह्यो है ॥
सूरज धूम बिना की चिता सोई अन्त में ले जल माहिं बहाई ।
बोलें घने तरु बैठि विहङ्गम रोवत सो मनु लोग लुगाई ॥
धूम अन्धार कपाल निसाकर, हाड़ नक्षत्र लहू सी* ललाई ।
आनन्द हेतु निशाचर के यह काल समान सो साँझ बनाई ॥

अहा ! यह चारों ओर से पक्षी सब कैसा शब्द करते हु
अपने-अपने घोंसलों की ओर चले आते हैं। वर्षा से नदी क

* प्राचीन काल राजा के अपराधी लोग श्मशान पर गला काट कर म
जाते थे। इसी से यहाँ श्मशान के वर्णन में लोहू का वर्णन है।

भयङ्कर प्रवाह, साँझ होने से श्मशान के पीपल पर कौओं का एक सङ्ग अमङ्गल शब्द से काँव-काँव करना और रात के आगमन से एक सन्नाटे के समय चित्त में कैसी उदासी और भय उत्पन्न करता है। अन्धकार बढ़ता ही आता है। वर्षा के कारण इन श्मशानवासी मण्डूकों का टर्र-टर्र करना भी कैसा डरावना मालूम होता है।

रुरुआ चहुँ दिसि ररत डरत सुनि के नर नारी।
फटफटाइ दोउ पंख उलूकहु रटत पुकारी॥
अन्धकारबस गिरत काक अरु चील करत रव।
गिद्ध-गरुड़-हड़गिल्ल भजत लखि निकट भयद रव।
रोवत सियार, गरजत नदी, स्वान भूँकि डरपावई।
संग दादुर झींगुर रुदन धुनिमिली स्वर तुमुल मचावई॥

इस समय यह चिता भी कैसी भयंकर मालूम पड़ती है। किसी का सिर चिता के नीचे लटक रहा है, कहीं आँच से हाथ-पैर गिर पड़े हैं, कहीं शरीर आधा जला है,कहीं बिल्कुल कच्चा है, किसी को वैसे ही पानी में बहा दिया है, किसी को किनारे ही छोड़ दिया है, किसी का मुँह जल जाने से दाँत निकला हुआ भयंकर हो रहा है और कोई आग में ऐसा जल गया है कि कहीं पता भी नहीं है। वाह रे शरीर! तेरी क्या २ गति होती है!!! सचमुच मरने पर इस शरीर को चटपट जला ही देना योग्य है, क्योंकि ऐसे रूप और गुण जिस शरीर में थे उसको कीड़ों वा मछलियों से नुचवाना और सड़ाकर दुर्गन्धमय करना बहुत ही बुरा है। न कुछ शेष रहेगा, न दुर्गति होगी। हा! चलो आगे चलें

(खबरदार इत्यादि कहता हुआ इधर--उधर घूमता है)

(पिशाच और डाकिनीगण परस्पर आमोद करते और गाते-बजाते हुए आते हैं।

पि०—और डा०—हैं भूत प्रेत हम, डाइन हैं छमाछम,
 हम सेवें मसान शिव को भजें बोलैं बम बम बम।

पि०—हम कड़ कड़ कड़ कड़ कड़ कड़ हड्डी को तोड़ेंगे।
 हम भड़ भड़ धड़ धड़ पड़ पड़ सिर सबका फोड़ेंगे॥

डा०—हम घुट घुट घुट घुट घुट घुट लोहू पिलावेंगी।
 हम चट चट चट चट चट चट ताली बजावेंगी॥

सब—हम नाचें मिल कर थेई थेई थेई थेई कूदें धम् धम् धम्।
 हैं भूत०—

पि०—हम काट काट कर शिर को गेंदा उछालेंगे।
 हम खींच खींच कर चरबी पंशाखा बालेंगे॥

डा०—हम माँग में लाल लाल लोहू का सेंदुर लगावेंगी।
 हम नस के तागे चमड़े का लहँगा बनावेंगी॥

सब—हम धज से सज के बज के चलेंगे चमकेंगे चम चम चम।

पि०—लोहू का मुँह से फर्र फर्र फुहारा छोड़ेंगे।
 माला गले पहिरने को अँतड़ी को जोड़ेंगे॥

डा०—हम लाद औंधे मुरदे चौकी बनावेंगी।
 कफन बिछा के लड़कों को उस पर सुलावेंगी॥

सब—हम सुख से गावेंगे ढोल बजावेंगे ढम ढम ढम ढम ढम।
 (वैसे ही कूदते हुए एक ओर से चले जाते हैं)

ह०—(कौतुक से देख कर) पिशाचों का क्रीड़ा-कुतूहल भी

देखने के योग्य है। अहा! यह कैसे काले-काले झाड़ू से सिर के बाल खड़े किये लम्बे हाथ-पैर, विकराल दाँत, लम्बी जीभ निकाले इधर-उधर दौड़ते और परस्पर किलकारी मारते हैं मानो भयानक रस की सेना मूर्तिमान होकर यहाँ स्वच्छन्द .बिहार कर रही है। हाय, हाय! इनका खेल और सहज व्योहार भी कैसा भयङ्कर है। कोई कटाकट हड्डी चबा रहा है, कोई खोपड़ियों में लहू भर-भर के पीता है, कोई सिर का गेंद बनाकर खेलता है, कोई अँतड़ी निकाल गले में डाले है और चन्दन की भाँति चरबी और लहू शरीर में पोत रहा है, कोई दूसरे से माँस छीन कर ले भागता है, एक जलता माँस मारे तृष्णा के मुँह में रख लेता है, पर जब गरम मालूम पड़ता है तो थू-थू करके थूक देता है और दूसरा उसी को फिर झट से खा जाता है। हा! देखो, यह चुड़ैल एक स्त्री की नाक नत्थ समेत नोच लाई है, जिसे देखने को चारो ओर से सब भूत एकत्र हो रहे हैं और सभी को इसका बड़ा कौतुक हो गया है। हंसी में परस्पर लोहू का कुल्ला करते हैं और जलती लकड़ी और मुरदों के अंगों से लड़ते हैं और उनको ले-लेकर नाचते हैं। यदि तनिक भी क्रोध में आते हैं तो श्मशान के कुत्तों को पकड़-पकड़ कर खा .जाते हैं। अहा! भगवान भूतनाथ ने बड़े कठिन स्थान पर योग-साधन किया है। (खबरदार इत्यादि कहता हुआ इधर-उधर फिरता है)। (ऊपर देख-

कर) आधीरात हो गई, वर्षा के कारण अँधेरी बहुत ही छा रही है, हाथ से हाथ नहीं सूझता। चाण्डाल कुल की भाँति श्मशान पर तम का भी आज राज हो रहा है! (स्मरण करके) हा! इस दुःख की दशा में भी हमसे प्रिया अलग पड़ी है। कैसी भी हीन अवस्था हो, पर अपना प्यारा जो पास रहे तो कुछ कष्ट नहीं मालूम पड़ता। सच है:—

"टूट टाट घर टपकत खटियो टूट।
प्रिय के बाँह उसिसवाँ सुख के लूट॥"

बिधना ने इस दुःख पर भी वियोग दिया। हा! यह वर्षा और यह दुःख! हरिश्चन्द्र का तो ऐसा कठिन कलेजा है कि सब सहेगा पर जिसने सपने में भी दुःख नहीं देखा वह महारानी किस दशा में होंगी। हा देवी! धीरज धरो, धीरज धरो! तुमने ऐसे ही भाग्यहीन से स्नेह किया है जिसके साथ सदा दुःख ही दुःख है। (ऊपर देख कर) पानी बरसने लगा। अरे! (घोघी भली भाँति ओढ़कर) हमको तो यह वर्षा और श्मशान दोनों एक ही से दिखाई पड़ते हैं। देखो :—

चपला की चमक चहूँधा सों लगाई चिता चिनगी चिलक पटबीजना चलायो है। हेती बगमाल स्याम बादर सु भूमिकारी वीरबधू लहू बूँद भुव लपटायो है। हरीचन्द नीर धार आँसू सी परत जहां दादुर को सोर रोर दुखिन मचायो है। दाहन वियोग दुखियन को मरेहूँ यह देखो पापी पावस मसान बनि आयो है।

(कुछ देर तक चुप रह कर) कौन है ? (खबरदार इत्यादि कहता हुआ इधर-उधर फिर कर)

इन्द्र काजहू सरिस जो, आयुस लांघै कोय।
यह प्रचण्ड भुजदण्ड मम, प्रतिभट ताको होय ॥

अरे ! कोई नहीं बोलता। (कुछ आगे बढ़कर) कौन है ?

(नेपथ्य में) हम हैं !

ह०—अरे ! हमारी बात का यह उत्तर कौन देता है ? चलें, जहां से आवाज़ आई है वहाँ चल कर देखें। (आगे बढ़ कर नेपथ्य की ओर देखकर) अरे यह कौन है ?

चिता भस्म सब अङ्ग लगाये। अस्थि अभूसन विविध बनाये ॥
हा ! श्मशान कपाल जगावत। को यह चल्यो रुद्र सम आवत ॥

(कापालिक के वेष में धर्म आता है *)

धर्म—अरे, हम हैं।

वृत्ति अयाचित आत्मरति, करि जग के सुख त्याग !
फिरहि मसान मसान हम, धरि आनन्द विराग ॥

(आगे बढ़कर, महाराज हरिश्चन्द्र को देखकर आपही आप)

हम प्रतच्छ हरि रूप जगत हमरे बल चालत।
जल-थल-नभ थिर मम प्रभाव मरजाद न टालत ॥
हमहीं नर के मीत सदा साँचे हितकारी ।
हमहीं इक सँग जात तजत जब पितु-सुत-नारी ॥

---

* गेरुए वस्त्र का काछा काछे, गेरुआ कफनी पहने, सिर से बाल खोले, सेंदुर का अर्द्धचन्द्र किये, नंगी तलवार गले में लटकती हुई, एक हाथ में खप्पड़ बलता हुआ, दूसरे हाथ में चिमटा, अंग में भभूत पोते; नशे से आँखें लाल. फूल की माला और हड्डी के आभूषण पहने।

सो हम नित थित इक सत्य में जाके बल सब जग जियो।
सोइ सत्य परिच्छन्न नृपति को आजु भेस हम यह किया॥

(कुछ सोचकर) राजर्षि हरिश्चन्द्र की दुःखपरम्परा अत्यन्त शोचनीय और इसके चरित्र अत्यन्त आश्चर्य के हैं। अथवा महात्माओं का यह स्वभाव ही होता है।

सहत विविध दुख मरि मिटत, भोगत लाखन सोग।
पै निज सत्य न छाड़ही, जो जग साँचे लोग॥
बरु सूरज पच्छिम उगे, बिन्ध्य तरै जल माहिं।
सत्य-वीर जन पै कबहुँ; निज बच टारत नाहिं।

अथवा उनके मन इतने बड़े हैं कि दुःख को दुःख सुख को सुख गिनते ही नहीं, चलें उनके पास चलें। (आगे बढ़कर और देखकर) अरे! यही महात्मा हरिश्चन्द्र हैं?

(प्रकट) महाराज, कल्याण हो!

ह०—(प्रणाम करके) आइए योगिराज!

ध०—महाराज, हम अर्थी हैं।

ह०—(लज्जा और विकलता नाट्य करता है)

ध०—महाराज! आप लज्जा मत कीजिये। हम लोग योगबल से सब कुछ जानते हैं। आप इस दशा पर भी हमारा अर्थ पूर्ण करने के लिये बहुत हैं। चन्द्रमा राहु से ग्रसा रहता हैं तब भी दान दिलवाकर भिक्षुकों का कल्याण करता है।

ह०—हमारे योग्य जो कुछ हो आज्ञा कीजिए।

ध०—अंजन, गुटिका, पादुका, धातु भेद बैताल।

वज्र रसायन जोगिनी, मोहि सिद्धि यह काल ❀।

ह०—तो मुझ जो आज्ञा हो करूँ।

ध०—आज्ञा यही है कि यह सब मुझे सिद्ध हो गये हैं, पर विघ्न इसमें बाधक होते हैं, सो विघ्नों का निवारण कर दीजिये।

ह०—आप जानते हैं कि मैं पराया दास हूँ इस से जिसमें मेरा धर्म न जाय वह मैं करने को तैयार हूँ।

ध०—(आप ही आप) राजन्! जिस दिन तुम्हारा धर्म जायगा उस दिन पृथ्वी किसके बल से ठहरेगी। (प्रत्यक्ष) महाराज! इसमें धर्म न जायगा, क्योंकि स्वामी की आज्ञा तो आप उल्लङ्घन करते ही नहीं। सिद्धि का आकर इसी श्मशान के निकट ही है और मैं अब पुरश्चरण करने जाता हूँ, आप विघ्नों का निषेध कर दीजिये।

(जाता है)

ह०—(ललकार कर) हटो, रे हटो विघ्नों! चारो ओर से तुम्हारा प्रचार हमने रोक दिया।

❀ अंजनसिद्धि से जमीन में गड़े खज़ाने देख पड़ते हैं। गुटिका मुँह में रखकर वा पादुका पहन कर चाहे जहाँ अलक्ष्य चला जाय। धातु भेद से औषधिमात्र सिद्ध होती हैं। वैताल बस में होकर यथेच्छ काम देता है। वज्र सिद्ध होने से जहाँ गिराओ वहाँ गिरता है। रसायन सिद्ध होने से चांदी-सोना बनता है। जोगिनी सिद्ध होने से भूत-भविष्यत् का वृत्तान्त कह देती है और सब इच्छा पूर्ण करती है। ये ही आठों सिद्धियाँ हैं।

(नेपथ्य में) महाराजाधिराज ! जो आज्ञा। आप जैसे सत्यवीर की आज्ञा कौन लांघ सकता है।

खुल्यो द्वार कल्याण को, सिद्ध योग तप आज।
साध-सिधि-विद्या सब करहिं, अपने मन को काज ॥

ह०—(हर्ष से) बड़े आनन्द की बात है कि विघ्नों ने हमारा कहना मान लिया। (विमान पर बैठी हुई तीनों महाविद्या आती हैं)❀

म० वि०—महाराज हरिश्चन्द्र ! बधाई है। हमी लोगों को सिद्ध करने को विश्वामित्र ने बड़ा परिश्रम किया था, तब देवताओं ने माया से आप को स्वप्न में हमारा रोना सुना कर हमारा प्राण बचाया है।

ह०—(आप ही आप) अरे! ये ही सृष्टि को उत्पन्न, पालन और नाश करने वाली महाविद्याएं हैं, जिन्हें विश्वामित्र भी न सिद्ध कर सके। (प्रकट, हाथ जोड़ कर) त्रिलोक-विजयनी महाविद्याओं को नमस्कार है।

म० वि०—महाराज ! हम लोग तो आपके बस में हैं। हमारा ग्रहण कीजिये।

ह०—देवियो ! यदि हम पर प्रसन्न हो तो विश्वामित्र मुनि की वशवर्त्तिनी हो, उन्होंने आप लोगों के वास्ते बड़ा परिश्रम किया है।

❀ ब्रह्मा, विष्णु, महेश के वेष में, पर स्त्री का शृङ्गार। खेलने में चित्र पट के द्वारा परदे के ऊपर इनको दिखलवेंगे और इनकी ओर से बोलने वाला नेपथ्य में से बोलेगा।

स० वि०—धन्य महाराज ! धन्य, जो आज्ञा।

(जाती हैं)

(धर्म एक वैताल के सिर पर पिटारा रखवाये हुए आता है)

ध०—महाराज कल्याण हो, आप की कृपा से महानिधान*सिद्ध हुआ। आप को बधाई है। अब लीजिए इस रसेन्द्र को।

याही के परभाव सों. अमरदेव सम होइ।
जोगीजन विहरहि सदा, मेरु शिखर भय खोइ॥

ह०—(प्रणाम करके) महाराज! दासधर्म के यह विरुद्ध है। इस समय स्वामी से कहे बिना मेरा कुछ भी लेना स्वामी को धोखा देना है।

ध०—(आश्चर्य से आप ही आप) वाह रे महानुभावता! (प्रकट) तो इससे स्वर्ण बनाकर आप अपना दास्यत्व छुड़ा लें।

ह०—यह ठीक है, पर मैंने तो विनती की न, कि जब मैं दूसरे का दास हो चुका तो इस अवस्था में मुझे जो कुछ मिले सब स्वामी का है। क्योंकि मैं तो देह के साथ ही अपना स्वत्व-मात्र बेच चुका. इससे आप मेरे बदले कृपा करके मेरे स्वामी ही को यह रसेन्द्र दीजिए।

ध०—(आश्चर्य से, आप ही आप) धन्य हरिश्चन्द्र! धन्य तुम्हारा धैर्य! धन्य तुम्हारा विवेक और धन्य तुम्हारी महानुभावता! या :—

---

* महानिधान बुभुक्षित धातुभेदी पारा, जिसे बावन तोला पाव रत्ती कहते है।

चले मेरु वरु प्रलय जल, पवन झकोरन पाय।
पै बीरन के मन कबहुँ, चलहिं नहीं ललचाय॥

तो हमें भी इसमें कौन हठ है (प्रत्यक्ष) वैताल! जाओ! जो महाराज की आज्ञा है वह करो।

वै०—जो रावलजी की आज्ञा (जाता है)

ध०—महाराज! ब्रह्ममुहूर्त्त निकट आया, अब हमको भी आज्ञा हो।

ह०—योगिराज! हमको भूल न जाइयेगा कभी-कभी स्मरण कीजिएगा।

ध०—महाराज! बड़े-बड़े देवता आपका स्मरण करते हैं और करेंगे, मैं क्या कहूँ! (जाता है)

ह०—क्या रात बीत गई! आज तो कोई भी मुरदा नया नहीं आया। रात के साथ ही श्मशान भी शान्त हो चला, भगवान् नित्य ही ऐसा करे।

(नेपथ्य में, घण्टा नूपुरादि का शब्द सुन कर)

(विमान पर अष्ट महासिद्धि, नवनिधि और बारहों प्रयोग आदि देवता * आते हैं)

---

* साधारण देवी-देवताओं के भेष में। अष्ट महासिद्धि—अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व। नवनिधि यथा—पद्म, महापद्म, शङ्ख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील, और खर्व। बारह प्रयोग यथा—मारण, मोहन, उच्चाटन, कीलन, विद्वेषण और कामनाशन ये छः बुरे और स्तम्भन, वशीकरण, आकर्षण, बन्दीमोचन, कामपूरण और वाक्प्रसारण ये छः अच्छे। ये भी चित्रपट में दिखाये जायँगे।

ह०—(आश्चर्य से) अरे ! ये कौन देवता बड़े प्रसन्न होकर श्मशान पर एकत्र हो रहे हैं।

दे०—महाराज हरिश्चन्द्र की जय हो। आपके अनुग्रह से हमलोग विघ्नों से छूट कर स्वतन्त्र हो गये; अब हम आपके वश में हैं, जो आज्ञा करें हमलोग अष्ट महासिद्धि, नवनिधि और बारह प्रयोग सब आपके हाथ में हैं।

ह०—(प्रणाम करके) यदि हम पर आप लोग प्रसन्न हों तो महासिद्धि योगियों के, निधि सज्जनों के और प्रयोग साधकों के पास जाओ।

दे०—(आश्चर्य से) धन्य ! राजर्षि हरिश्चन्द्र ! तुम्हारे बिना और ऐसा कौन होगा जो घर आई लक्ष्मी का त्याग करे। हमी लोगों की सिद्धि को बड़े-बड़े योगी, मुनि पच मरते हैं, पर तुमने तृण की भाँति हमारा त्याग करके जगत् का कल्याण किया।

ह०—आप लोग मेरे सिर आँखों पर हैं पर मैं क्या करूँ क्योंकि मैं पराधीन हूँ। एक बात और भी निवेदन है। वह यह कि छः अच्छे प्रयोगों की तो हमारे समय में सद्यः-सिद्धि होय पर बुरे प्रयोग की सिद्धि विलम्ब से हो।

ह०—महाराज ! जो आज्ञा ! हमलोग जाते हैं। आज आपके सत्य ने शिव के कीलन ※ को भी शिथिल कर दिया। महाराज का कल्याण हो। (जाते हैं)।

※ शिवजी ने साधन मात्र को कील दिया है जिसमें जल्दी न सिद्ध हों, सो राजा हरिश्चन्द्र ने विघ्नों को जो रोक दिया इसमें वह कीलन भी शिवजी के इच्छा पूर्वक उस समय दूर हो गया था. क्योंकि यह भी तो एक सब में बड़ा विघ्न था।

(नेपथ्य में इस भाँति मानो राजा हरिश्चन्द्र नहीं सुनता)
(एक स्वर से) तो अप्सरा को भेजें (दूसरे स्वर से) छिः मूर्ख ! जिसको अष्ट सिद्धि, नव--निधियों ने नहीं डिगाया उसको अप्सरा क्या डिगावेंगी ?
(एक स्वर से हां तक्षक को आज्ञा दे अब और कोई उपाय नहीं है) ।

ह०—अहा ! अरुण उदय हुआ चाहता है । पूर्व दिशा ने अपना मुँह लाल किया (सांस लेकर) ।
"वा चकई को भयो चित चेता चितोति चहूं दिसी चाय सों नाची । है गई छीन कलाधर की कलाजामिनी जोति मनों जम जांची ॥ बोलत वैरी विहंगम देव सँयोगिन की भई सम्पत्ति कांची । लोहू पियो जो वियोगिन को सो कियो मुख लाल पिशाचिनी प्राची ॥"

हा ! प्रिये ! इन बरसातों की रात को तुम रो-रो के बिताती होगी ! हाय ! वत्स रोहिताश्व, भला हम लोगों ने तो अपना शरीर बेचा तब दास हुए, तुम बिना बिके ही क्यों दास बन गये ?

जेहि सहसन परिचारिका, राखत हाथहिं हाथ ।
सो तुम लोटत धूर में, दास बालकन साथ ॥
जाकी आयसु जग-नृपति, सुनतहि धारत सीस ।
तेहि द्विज-बटु आज्ञा करत, अहह कठिन अति ईस ॥
बिनु तन बेचे बिनु दिये, बिनु जग ज्ञान विवेक ।
दैव सर्प-दशित भये, भोगत कष्ट अनेक ॥

(घबड़ा कर) नारायण ! नारायण ! मेरे मुख से क्या निकल गया ? देवता उसकी रक्षा करें। (बाईं आँख का फड़कना दिखाकर) इसी समय में यह महा अप-शकुन क्यों हुआ ? (दाहिनी भुजा का फड़कना दिखाकर) अरे, और साथ ही यह मंगल शकुन भी ! न जाने क्या होनहार है ! वा अब क्या होनहार है ? जो होना था सो हो चुका। अब इससे बढ़कर और कौन दशा होगी ? अब केवल मरणमात्र बाकी है। इच्छा तो यही है कि सत्य छूटने और दीन होने के पहले ही शरीर छूटे, क्योंकि इस दुष्ट चित्त का क्या ठिकाना है, पर वश क्या है ?

(नेपथ्य में)

पुत्र हरिश्चन्द्र ! सावधान। यही अन्तिम परीक्षा है। तुम्हारे पुरुषा इक्ष्वाकु से लेकर त्रिशंकु पर्यन्त आकाश में नेत्र भरे खड़े एक टक तुम्हारा मुख देख रहे हैं। आज तक इस वंश में ऐसा कठिन दुःख किसी को नहीं हुआ था। ऐसा न हो कि इनका सिर नीचा हो। अपने धैर्य का स्मरण करो।

ह०—(घबड़ा कर ऊपर देख कर) अरे, यह कौन है ? कुलगुरु भगवान् सूर्य अपना तेज समेटे मुझे अनुशासन कर रहे हैं (ऊपर) पिता, मैं सावधान हूँ, सब दुःखों को फूल की माला की भाँति ग्रहण करूँगा।

(नेपथ्य में, रोने की आवाज सुन पड़ती है)

ह०—अरे अब सवेरा होने के समय मुरदा आया ! अथवा चाण्डाल कुल का सदा कल्याण हो, हमें इससे क्या ?

(खबरदार इत्यादि कहता हुआ फिरता है)

(नेपथ्य में)

हाय! कैसी भई। हाय बेटा! हमें रोती छोड़ के कहाँ गये!! हाय हाय रे!'

ह०—अहह! किसी दीन स्त्री का शब्द है, और शोक भी इसको पुत्र का है। हाय हाय! हमको भी भाग्य ने क्या ही निर्दयी और बीभत्स कर्म सौंपा है! इससे भी वस्त्र माँगना पड़ेगा।

(रोती हुई शैव्या रोहिताश्व का मुरदा लिये आती है)

शै०—(रोती हुई) हाय बेटा! जब बाप ने छोड़ दिया तब तुम भी छोड़ चले! हाय! हमारी विपत् और बुढ़ौती की ओर भी तुमने न देखा! हाय! हाय रे! अब हमारी कौन गति होगी? (रोती है)

ह०—हाय हाय! इसके पति ने भी इसको छोड़ दिया है? हा! इस तपस्विनी को निष्करुण विधि ने बड़ा ही दुःख दिया है।

शै०—(रोती हुई) हाय बेटा! अरे आज मुझे किसने लूट लिया! यह मेरी बोलती चिड़िया कहाँ उड़ गई! हाय, अब मैं किसका मुँह देख के जीऊँगी! हाय! मेरी अन्धी की लकड़ी कौन छीन ले गया। हाय! मेरा ऐसा सुन्दर खिलौना किसने तोड़ डाला! अरे बेटा! तैं तो मरे पर भी सुन्दर लगता है! हाय रे! अरे बोलता क्यों नहीं। बेग जल्दी बोल। देख, माँ कब की पुकार रही है। बचा!

तू तो एक ही दफे पुकारने में दौड़कर गले से लपट जाता था, क्यों नहीं बोलता ? (शव को बार-बार गले लगाती; देखती और चूमती है)

ह०---हाय हाय ! इस दुखिया के पास तो खड़ा नहीं हुआ जाता है।

शै०—(पागल की भाँति) अरे, यह क्या हो रहा है ? बेटा गये हो ? आओ जल्दी । अरे अकेले इस मसान में मुझे डर लगता है, यहाँ मुझको कौन ले आया है ? अरे बेटा ! जल्दी आओ ! अरे क्या कहते हो, मैं गुरु के लिये फूल लेने गया था, वहाँ काले साँप ने मुझे काट लिया ? हाय ! हाय रे !! अरे कहाँ काट लिया; अरे कोई दौड़ के किसी गुनी को बुलाओ जो जिलावे बच्चे को। अरे वह सांप कहाँ गया, हमको क्यों नहीं काटता ? काट रे काट; क्या उस सुकुमार बच्चे ही पर बल दिखाना था ? हमें काट। हाय ! हमको नहीं काटता। अरे, यहाँ तो कोई साँप वाँप नहीं है। मेरे लाल ! झूठ बोलना कब से सीखे ? हाय हाय ! मैं इतना पुकारती हूँ और तुम खेलना नहीं छोड़ते ? बेटा गुरुजी पुकार रहे हैं, उनके होम की बेला निकली जाती हैं। देखो बड़ी देर से वह तुम्हारे आसरे बैठे हैं, तो जल्दी उनको दूब और बेलपत्र........हाय ! हमने इतना पुकारा तुम कुछ नहीं बोलते ! (जोर से) बेटा ! सांझ भई अब विद्यार्थी लोग घर फिर आये; तुम अब

तक क्यों नहीं आये ? (आगे शव देख कर) हाय ! हाय रे ! अरे मेरे लाल को साँप ने सचमुच डस लिया ! हाय लाल ! हाय रे ! मेरे आँखों के उजियाले को कौन ले गया। हाय मेरा बोलता हुआ सुग्गा कहाँ उड़ गया ! बेटा ! अभी तो बोल रहे थे, अभी क्या हो गया ! हाय ! मेरा बसा घर आज किसने उजाड़ दिया ! हाय ! मेरी कोख में किसने आग लगा दी ! हाय ! मेरा कलेजा किसने निकाल लिया ! (चिल्ला-चिल्ला कर रोती है) हाय लाल कहाँ गये ? अरे ! अब मैं किसका मुँह देखके जिऊँगी रे ? हाय ! अब माँ कहके मुझको कौन पुकारेगा ! अरे, आज किस बैरी की छाती ठण्ढी भई ! अरे, तेरे सुकुमार अङ्गों पर भी काल को तनिक दया न आई ! अरे बेटा ! आँख खोलो। हाय ! मैं सब विपत तुम्हारा ही मुँह देखकर सहती थी, सो अब कैसे जीती रहूँगी। अरे लाल ! एक बेर तो बोलो ! (रोती है)।

ह०—न जाने क्यों इसके रोने पर मेरा कलेजा फटा जाता है।

शै०—(रोती हुई) हा नाथ ! अरे अपने गोद के खेलाये बच्चे की यह दशा क्यों नहीं देखते ? हाय ! अरे, तुमने तो उसको हमें सौंपा था कि इसे अच्छी तरह पालना सो हमने इसकी यह दशा कर दी। हाय ! अरे, ऐसे समय में भी आकर नहीं सहाय होते ? भला एक बार लड़के का मुह तो देख जाओ ! मैं अब किसके भरोसे जीऊँगी ?

ह०—हाय हाय ! इसकी बातों से तो प्राण मुँह को चले आ

हैं, और मालूम होता है कि संसार उलटा जाता है। यहाँ से हट चलें (कुछ दूर हटकर उसकी ओर देखता खड़ा हो जाता है)।

शै०—(रोती हुई) हाय! यह विपत का समुद्र कहाँ से उमड़ पड़ा! अरे छलिया मुझे छलकर कहाँ भाग गया! (देखकर) अरे आयुष की रेखा तो इतनी लम्बी है अभी से वह वज्र कहां से टूट पड़ा। अरे ऐसा सुन्दर मुंह, बड़ी-बड़ी आंख, लम्बी-लम्बी भुजा, चौड़ी छाती गुलाब-सा रंग,! हाय, मरने के तुझ में कौन लच्छन थे जो भगवान् ने तुझे मार डाला! हाय हाय! अरे, बड़े जोतषी-गुनी लोग तो कहते थे कि तुम्हारा बेटा बड़ा प्रतापी चक्रवर्ती राजा होगा; बहुत दिन जीयेगा, सो सब झूठ निकला! हाय! पोथी-पत्रा, पूजा-पाठ, दान, जप; होम, कुछ भी काम न आया। हाय! तुम्हारे बाप का कठिन पुण्य भी तुम्हारा सहाय न हुआ और तुम चल बसे! हाय।

ह०—अरे! इन बातों से तो मुझे बड़ी शङ्का होती है। (शव को भली भाँति देखकर) अरे; इस लड़के में तो सब लक्षण चक्रवर्ती के से दिखाई पड़ते हैं! हाय! न जाने किस बड़े कुल का दीपक आज इसने बुझाया है, और न जाने किस नगर को आज इसने अनाथ किया है। हाय रोहिताश्व भी इतना बड़ा हुआ होगा। (बड़े सोच में) हाय हाय! मेरे मुँह से क्या अमंगल निकल गया! नारायण! नारायण! (सोचता है)।

शै०—भगवान् विश्वामित्र! आज तुम्हारे सब मनोरथ पूरे हुए। हाय!

ह०—(घबराकर) हाय हाय! यह क्या? (भली-भांति देख कर रोता हुआ) हाय! अब तक मैं सन्देह ही में पड़ा हूँ! अरे मेरी आंखें कहाँ गई थीं, जिनने अब तक पुत्र रोहिताश्व को न पहचाना, और कान कहां गये थे जिनने अब तक महारानी की बोली न सुनी! हाय पुत्र! हा लाल! हा सूर्यवंश के अङ्कुर! हा हरिश्चन्द्र की विपत्ति के एक मात्र अवलम्ब! हाय! तुम ऐसे कठिन समय में दुखिया मां को छोड़ कर कहां गये? अरे, तुम्हारे कोमल अंगों को क्या हो गया? तुमने क्या खेला, क्या खाया, क्या सुख भोगा कि अभी से चल बसे! पुत्र! स्वर्ग ऐसा ही प्यारा था तो मुझ से कहते, मैं अपने बाहुबल से तुमको इसी शरीर से स्वर्ग पहुँचा देता। अथवा अब इस अभिमान से क्या? भगवान् इस अभिमान का फल यह सब दे रहा है। हाय पुत्र! (रोता है)

अहा! मुझ से बढ़ कर और कौन मन्द भाग्य होगा! राज्य गया, धन-जन-कुटुम्ब सब छूटा, उस पर भी वह दारुण पुत्रशोक उपस्थित हुआ। भला अब मैं रानी को क्या मुँह दिखाऊँ? निस्सन्देह मुझ से अधिक अभागा और कौन होगा? न जाने हमारें किस जन्म के पाप उदय हुए हैं? जो कुछ हमने आज तक किया वह यदि

पुण्य होता तो हमें यह दुःख न देखना पड़ता। हमारा धर्म का अभिमान सब झूठा था, क्योंकि कलियुग नहीं है कि अच्छा करते बुरा फल मिले। निसन्देह मैं महा अभागा और बड़ा पापी हूँ। (रङ्ग-भूमि की पृथ्वी हिलती है और नेपथ्य में शब्द होता है) क्या प्रलय काल आ गया? नहीं, यह बड़ा भारी अपशकुन हुआ है, इसका फल कुछ अच्छा नहीं वा अब बुरा होना ही क्या बाकी रह गया है, जो होगा! हा! न जाने किस अपराध से दैव इतना रूठा है। (रोता है) हा! सूर्य-कुल आलवाल-प्रवाल! हा हरिश्चन्द्र-हृदयानन्द! हा शैव्यावलम्ब! हा वत्स रोहिताश्व! हा मातृ पितृ-विपत्तिसहचर! तुम हम लोगों को इस दशा में छोड़ कर कहाँ गये! आज हम सचमुच चाण्डाल हुए। लोग कहेंगे कि इसने न जाने कौन दुष्कर्म किया था कि पुत्र-शोक देखा। हाय! हम संसार को क्या मुँह दिखावेंगे? (रोता है) वा संसार में इस बात के प्रकट होने के पहले ही हम भी प्राणत्याग करें। हा निर्लज्ज प्राण! तुम अब भी क्यों नहीं निकलते। हा वज्रहृदय! इतने पर भी तू क्यों नहीं फटता! अरे नेत्रो! अब और क्या देखना बाकी है कि तुम अब तक खुले हो? या इस व्यर्थ प्रलाप का फल ही क्या है, समय बीतता जाता है। इसके पूर्व न किसी से सामना हो, प्राणत्याग करना ही उत्तम बात है। (पेड़ के पास जाकर फाँसी देने के योग्य

डाल खोजकर उसमें दुपट्टा बाँधता है) धर्म्म ! मैंने अपने जान सब अच्छा ही किया, परंतु न जाने किस कारण मेरा सब आचरण तुम्हारे विरुद्ध पड़ा सो मुझे क्षमा करना ! (दुपट्टे की फाँसी गले में लगाना चाहता है कि एक साथ चौंक कर) गोविन्द ! गोविन्द, यह मैंने क्या अनर्थ, अधर्म विचारा ! भला मुझ दास को अपने शरीर पर क्या अधिकार था कि मैंने प्राण त्याग करना चाहा ! भगवान् सूर्य इसी क्षण के हेतु अनुशासन करते थे। नारायण ! २ ! इस इच्छाकृत मानसिक पाप से कैसे उद्धार होगा ? हे सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर ! क्षमा करना, दुःख से मनुष्य की बुद्धि ठिकाने नहीं रहती, अब तो मैं चाण्डाल का दास हूँ, न अब शैव्या मेरी स्त्री है और न रोहिताश्व मेरा पुत्र ! चलूँ, अपने स्वामी के काम पर सावधान हो जाऊँ, वा देखूँ अब दुःखिनी शैव्या क्या कहती है ? (शैव्या के पीछे जाकर खड़ा होता है)।

शै०—(पहली तरह बहुत रोकर) हाय ! अब मैं क्या करूँ अब मैं किसका मुँह देखकर संसार में जीऊँगी ! हाय ! मैं आज से निपूती हुइ ! पुत्रवती स्त्री अपने बालकों पर अब मेरी छाया न पड़ने देंगी ! हा ! नित्य सवेरे उठकर अब मैं किसकी चिन्ता करूँगी ! खाने के समय मेरी गोद में बैठकर और मुझसे माँग-मांगकर अब कौन खायगा ! मैं परोसी थाली देखकर कैसे प्राण रक्खूँगी !

(रोती है) हाय ! खेलते-खेलते आकर मेरे गले से कौन लिपट जायगा ! और मा-मा कहकर तनिक-तनिक बातों पर कौन हठ करेगा ! हाय हाय ! मैं अब किसको अपने आँचल से मुह की धूल पोंछकर गले लगाऊँगी और किसके अभिमान से विपत् में भी फूली-फली फिरूँगी ! (रोती है) या जब रोहिताश्व ही नहीं तो मैं ही जी के क्या करूँगी ! (छाती पीटकर) हाय प्राण ! तुम अब भी क्यों नहीं निकलते ? हाय ! मैं ऐसी स्वार्थी हूँ कि आत्महत्या के नरक के भय से भी अपने को नहीं मार डालती ! नहीं नहीं, अब मैं न जीऊँगी। या तो इस पेड़ में फांसी लगा कर मर जाऊँगी या गङ्गा में कूद पड़ूँगी। (उन्मत्त की भाँति उठकर दौड़ना चाहती है)।

ह०—(आड़ से)

तनहिं बेंचि दासी कहवाई।
मरत स्वामि-आयसु बिन पाई॥
करु न अधर्म सोच जिय माँहीं।
"पराधीन सपने सुख नाहीं॥"

शै०—(चौकन्नी होकर) अहा ! यह किसने इस कठिन समय धर्म का उपदेश किया। सच है, मैं अब इस देह की कौन हूँ जो मर सकूँ ! हाय दैव ! तुमसे यह भी न देखा गया कि मैं मरकर भी सुख पाऊँ ? (कुछ धीरज धरकर) तो चलूँ छाती पर वज्र धरके अब लोकरीति

करूँ। (रोती और लकड़ी चुनकर चिता बनाती हुई) हाय! जिन हाथों से ठोक ठोक कर रोज सुलाती थी उन्हीं हाथों से आज चिता पर कैसे रक्खूँगी, जिसके मुँह में छाला पड़नेके भय से कभी मैंन गरम दूध भी नहीं पिलाया उसे—(बहुत ही रोती है)

ह०—धन्य देवी, आखिर तो चन्द्र-सूर्यकुल की स्त्री हो, तुम न धीरज धरोगी तो कौन धरेगा।

शै०—(चिता बनाकर पुत्र के पास आकर उठाना चाहती और रोती है)।

ह०—तो अब चलें उससे आधा कफन मांगें (आगे बढ़कर और बल-पूर्वक आँसुओं को रोक कर शैव्या से) महा-भागे! श्मशान पति की आज्ञा है कि आधा कफन दिये बिना कोई मुरदा फूँकने न पावे, सो तुम भी पहले हमें कपड़ा दे लो तब क्रिया करो। (कफन मांगने को हाथ फैलाता है, आकाश से पुष्पवृष्टि होती है)

(नेपथ्य में)

अहो धैर्यमहो सत्यमहो दानमहो बलम्।
त्वया राजन् हरिश्चन्द्र सर्वलोकोत्तरं कृतम्॥

(दोनों आश्चर्य से ऊपर देखते हैं)

शै०—हाय! इस कुसमय में आर्यपुत्र की यह कौन स्तुति करता है? वा इस स्तुति ही से क्या है, शास्त्र सब असत्य हैं, नहीं तो आर्यपुत्र से धर्मी की यह गति हो! यह केवल देवताओं और ब्राह्मणों का पाखण्ड है।

ह०—(दोनों कानों पर हाथ रख कर) नारायण ! नारायण ! महाभागे, ऐसा मत कहो, शास्त्र, ब्राह्मण और देवता त्रिकाल में सत्य हैं। ऐसा कहोगी तो प्रायश्चित्त होगा। अपना धर्म विचारो। लाओ, मृत कम्बल हमें दो और अपना काम आरम्भ करो। (हाथ फैलाता है)

शै०—(महाराज हरिश्चन्द्र के हाथ में चक्रवर्ती का चिन्ह देख कर और कुछ स्वर, कुछ आकृति से अपने पति को पहचान कर) हा आर्यपुत्र ! इतने दिन तक कहाँ छिपे थे ? देखो, अपने गोद के खेलाये दुलारे पुत्र की दशा। तुम्हारा प्यारा रोहिताश्व देखो, अब अनाथ की भाँति मसान में पड़ा है। (रोती है)

ह०—प्रिये ! धीरज धरो, यह रोने का समय नहीं है। देखो, सवेरा हुआ चाहता है, ऐसा न हो कि कोई आ जाय और हम लोगों को जान ले; और एक लज्जामात्र बच गई है वह भी जाय। चलो कलेजे पर सिल रख कर अब रोहिताश्व की क्रिया करो, आधा कम्बल हमको दो।

शै०—(रोती हुई) नाथ ! मेरे पास तो एक भी कपड़ा नहीं था, अपना आँचल फाड़ कर उसे लपेट लाई हूँ, उसमें से भी जो आधा दे दूँगी तो यह खुला रह जायगा। हाय ! चक्रवर्ती के पुत्र को आज कफन नहीं मिलता !

(बहुत रोती है)

ह०—(बल-पूर्वक आँसुओं को रोक कर और बहुत धीरज धर-

कर) प्यारी ! रो मत। ऐसे समय में तो धीरज और धरम रखना काम है। मैं जिसका दास हूँ उसकी आज्ञा है कि बिना आधा कफ़न लिये क्रिया मत करने दो। इससे मैं यदि अपनी स्त्री और अपना पुत्र समझ कर तुमसे इसका आधा कफ़न न लूँ तो बड़ा अधर्म होगा। जिस हरिश्चन्द्र ने उदय से अस्त तक की पृथ्वी के लिए धर्म न छोड़ा उसका धर्म आधा गज कपड़े के वास्ते मत छुड़ाओ और कफ़न से जल्दी आधा कपड़ा फाड़ दो। देखो, सवेरा हुआ चाहता है, ऐसा न हो कि कुलगुरु भगवान् अपने वंश की यह दुर्दशा देखकर चित्त में उदास हों। (हाथ फैलाता है)।

शै०—(रोती हुई) नाथ ! जो आज्ञा। (रोहिताश्व का मृत-कम्बल फाड़ा चाहती है कि रंग-भूमि की पृथ्वी हिलती है, तोप छुटने का-सा बड़ा शब्द और बिजली का-सा उजाला होता है, नेपथ्य में बाजे की और बस धन्य और जय-जय की ध्वनि होती है, फूल बरसते हैं, और भगवान् नारायण प्रकट होकर राजा हरिश्चन्द्र का हाथ पकड़ लेते हैं)।

भ०—बस, महाराज, बस ! धर्म और सत्य सब की परमावधि हो गई। देखो, तुम्हारे पुण्य भय से पृथ्वी बारम्बार काँपती है, अब त्रैलोक्य की रक्षा करो। (नेत्रों से आंसू बहते हैं)।

ह०—(साष्टाङ्ग दंडवत् करके रोता हुआ गद्गद स्वर से) भगवन्! मेरे वास्ते आपने परिश्रम किया! कहां यह श्मशान-भूमि

कहाँ यह मृत्युलोक, कहां मेरा मनुष्य शरीर, और कहाँ पूर्ण परब्रह्म सच्चिदानन्दघन साक्षात आप। (प्रेम के आंसुओं से और गद्गद कण्ठ होने से कुछ कहा नहीं जाता)।

भ०—(शैव्या से) पुत्री! अब सोच मत कर। धन्य तेरा सौभाग्य कि तुझे राजर्षि हरिश्चन्द्र ऐसा पति मिला है। (रोहिताश्व की ओर देख कर) वत्स रोहिताश्व! उठो, देखो तुम्हारे माता-पिता देर से तुम से मिलने को व्याकुल हो रहे हैं।

(रोहिताश्व उठ खड़ा होता है और आश्चर्य से भगवान् को प्रणाम करके माता-पिता का मुँह देखने लगता है, आकाश से फिर पुष्पवृष्टि होती है)।

ह० और शै०—(आश्चर्य, सानन्द, करुणा और प्रेम से कुछ कह नहीं सकते, आँखों से आँसू बहते हैं और एकटक भगवान् के मुखारविन्द की ओर देखते हैं) (श्री महादेव, पार्वती, भैरव, धर्म, सत्य, इन्द्र और विश्वामित्र आते हैं)। ❀

सब—धन्य महाराज हरिश्चन्द्र धन्य! जो आपने किया सो किसी ने न किया न करेगा।

(राजा हरिश्चन्द्र, शैव्या और रोहिताश्व सबको प्रणाम करते हैं)।

❀ श्री महादेव पार्वती और भैरव का ध्यान सब को विदित है। इन्द्र और विश्वामित्र का लिख चुके हैं। धर्म चतुर्भुज, श्याम रङ्ग, पीताम्बर, दण्ड, पत्र और कमल हाथ में। सत्य; शुक्लवर्ण, श्वेत वस्त्राभरण, नारायण के चारों आयुध हाथ में।

वि०—महाराज ! यह केवल चन्द्र-सूर्य तक आपकी कीर्ति स्थिर रखने के हेतु मैंने छल किया था, सो क्षमा कीजिये और अपना राज्य लीजिये ।

(हरिश्चन्द्र भगवान और धर्म का मुँह देखते हैं)

धर्म—महाराज ! राज आपका है, इसका मैं साक्षी हूँ, आप निस्सन्देह लीजिए।

सत्य—ठीक है। जिसने हमारा अस्तित्व संसार में प्रत्यक्ष कर दिखाया उसीका पृथ्वी का राज्य है।

श्रीमहादेव—पुत्र हरिश्चन्द्र ! भगवान् नारायण के अनुग्रह से ब्रह्मलोक पर्यन्त तुमने पाया, तथापि, मैं आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारी कीर्ति जब तक पृथ्वी है तब तक स्थिर रहे और रोहिताश्व दीर्घायु, प्रतापी और चक्रवर्ती हो।

पा०—पुत्री शैव्या ! तुम्हारे पति के साथ तुम्हारी कीर्ति स्वर्ग की स्त्रियाँ गावें । तुम्हारी पुत्रवधू सौभाग्यवती हो और लक्ष्मी तुम्हारे घर का कभी त्याग न करें।

(हरिश्चन्द्र और शैव्या प्रणाम करते हैं।)

भ०—और जो तुम्हारी कीर्ति कहे, सुने और उसका अनुसरण करे उसको भैरवी-यातना न हो ।

इन्द्र—(राजा को आलिंगन करके और हाथ जोड़ के)महाराज ! मुझे क्षमा कीजिए। यह सब मेरी दुष्टता थी। परन्तु इस बात से आपका कल्याण ही हुआ, स्वर्ग कौन कहे आपने अपने सत्यबल से ब्रह्मपद पाया। देखिए, आप की रक्षा के हेतु श्रीशिवजी ने भैरवनाथ को आज्ञा दी

थी, आप उपाध्याय बने थे, नारदजी बटु बने थे, साक्षात् धर्म ने आपके हेतु चाण्डाल और कापालिक का भेष लिया, और सत्य ने आपही के कारण चाण्डाल के अनुचर और बैताल का रूप धारण किया।

आप बिके न दास हुए, यह सब चरित्र भगवान् नारायण की इच्छा से केवल आपके सुयश के हेतु किया गया।

ह०—(गद्गद स्वर) अपने दासों का यश बढ़ाने वाला और कौन है ?

म०—महाराज ! और जो इच्छा हो माँगो।

ह०—(प्रणाम करके गद्गद् स्वर से) प्रभु ! आपके दर्शन से सब इच्छा पूर्ण हो गई, तथापि आपके आज्ञानुसार यह वर माँगता हूँ कि मेरी प्रजा भी मेरे साथ वैकुण्ठ जाय और सदा पृथ्वी पर स्थिर रहे।

म०—एवमस्तु, तुम ऐसे ही पुण्यात्मा हो कि तुम्हारे कारण अयोध्या के कीट-पतंग जीवमात्र सब परमधाम जायँगे, और कलियुग में धर्म के सब चरण टूट जायँगे, तब भी वह तुम्हारी इच्छानुसार सत्यमात्र एक पद से स्थिर रहेगा। इतना ही देकर मुझे सन्तोष नहीं हुआ कुछ और भी माँगो ! मैं तुम्हें क्या दूँ ? क्योंकि मैं तो अपने ही को तुम्हें दे चुका, तथापि मेरी इच्छा यही है कि तुमको और कुछ वर दूँ। तुम्हें वर देने में मुझे सन्तोष नहीं होता है।

ह०—(हाथ जोड़कर) भगवन् ! मुझे अब कौन इच्छा है। मैं और क्या वर मांगू, तथापि भरत का यह वाक्य सुफल हो।

खल गनन सों सज्जन दुःखी मत होइ, हरिपद-रति रहैं ।
उपधर्म छूटै, स्वत्व निज भारत गहै; कर दुःख बहै ॥
बुध तजहि मत्सर नारि नर सम होहिं, सब जग सुख लहै ।
तजि ग्रामकविता सुकविजन की अमृतवानी सब कहै ॥"
(पुष्पवृष्टि और बाजे की ध्वनि के साथ जवनिका गिरती है)

॥ इति ॥

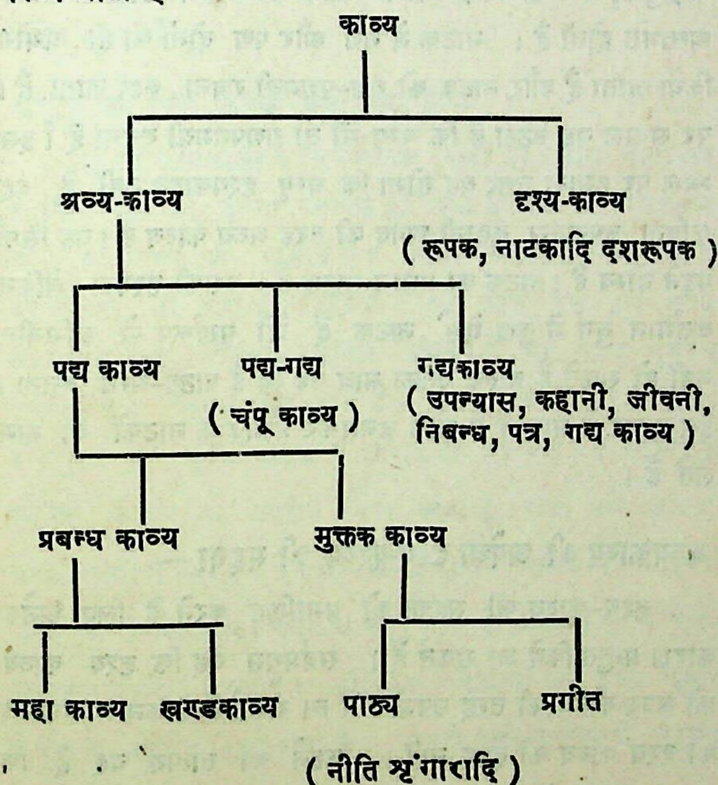


टीका भाग

नाटक

काव्य का विभाजन—

काव्य दो प्रकार के हैं—श्रव्य-काव्य और दृश्य-काव्य। इस विभाजन के स्पष्टीकरण के लिए नीचे एक चक्र उपस्थित किया जाता है—



जिस वस्तु का आनन्द कानों द्वारा प्राप्त किया जाय, वह श्रव्य काव्य और जिसका आनन्द मुख्यतया आँखों द्वारा प्राप्त हो वह दृश्य काव्य है। कविता, कहानी, उपन्यास, निबन्ध आदि साहित्यांग श्रव्य काव्य के अन्तर्गत आते हैं और दृश्य काव्य के अन्तर्गत नाटक आता है। श्रव्यकाव्य के अन्तर्गत कामायणी, कुरुक्षेत्र, जयद्रथ बध, तुलसीदास, आदि आते हैं और 'अजातशत्रु' चन्द्रगुप्त, सत्य हरिश्चन्द्र नाटक आदि की गणना दृश्य काव्य के अन्तर्गत होती है। नाटक में गद्य और पद्य दोनों का ही प्रयोग किया जाता है और नाटक को गद्य-पद्यमयी रचना कहा जाता है। पर सवाल यह उठता है कि चम्पू भी तो गद्यपद्यमयी रचना है ? इस स्थल पर हमारा उत्तर यह होगा कि चम्पू दृश्यकाव्य नहीं है, वह कविता, उपन्यास, कहानी आदि की तरह श्रव्य काव्य है। वह सिर्फ पढ़ने योग्य है। नाटक का प्रधान लक्षण है—उसकी दृश्यता। लेकिन वर्त्तमान युग में कुछ ऐसे नाटक हैं जो पूर्णरूप से अभिनीत नहीं हो सकते हैं बल्कि उनका मात्र उद्देश्य है पाठ्य-ग्रन्थ बनना। इस प्रकार के नाटकों में लोग जयशंकर प्रसाद के नाटकों का नाम लेते हैं।

श्रव्यकाव्य की अपेक्षा दृश्य-काव्य की महत्ता—

दृश्य-काव्य की महत्ता को प्रमाणित करने के लिए अनेक कारण प्रस्तुत किये जा सकते हैं। सर्वप्रथम यह कि दृश्य काव्य को श्रव्य काव्य की तरह उपयोग में ला सकते हैं लेकिन श्रव्यकाव्य को दृश्य काव्य की तरह नहीं। कहने का तात्पर्य यह है कि श्रव्यकाव्य में जो आनन्द कानों के द्वारा प्राप्त किया जाता है वह

दृश्य काव्यमें भी मिलता है बल्कि दृश्य काव्य तो कानों और आँखों दोनों तरह से आनन्द पहुँचाता है। दूसरा मुख्य कारण यह है कि दृश्य काव्य के सहारे सभी ललित कलाओं का एक ही स्थल पर प्रदर्शन होता है इसके अलावे इसके द्वारा नृत्य गीत और संवाद द्वारा भी जनसाधारण का मनोरंजन होता है। प्रदर्शन की मुख्यता के कारण दृश्यकाव्य काव्य के दूसरे भेदों से बिल्कुल भिन्न और अद्‌भुत है। इसीलिए भारतीय वाङ्मय में दृश्यकाव्य का विशेष महत्त्व है।

नाटक का नाम 'रूपक' क्यों पड़ा ?—

यों तो दृश्यकाव्य के लिए नाटक शब्द ही प्रयोग होता आ रहा है और यह इतना व्यापक हो गया है कि वह दृश्यकाव्य का पर्यायवाची बन सकता है। प्राचीन आचार्यों ने नाटक को 'रूपक' भी कहा है। हिन्दी में तो आज कल इस शब्द का प्रयोग नहीं होता है लेकिन संस्कृत में यह शब्द पूर्ववत् प्रचलित है। 'रूपक' का अर्थ है—'रूप का आरोप'। 'रूपारोपात्तुरूपकम्' चूँकि नाटक में अभिनेता या नट पर अभिनेय व्यक्तियों के रूप का आरोप किया जाता है, अतः उसे 'रूपक' कहना असंगत नहीं है। जैसे—सत्यहरिश्चन्द्र नाटक में 'मोहना' 'इन्द्र' का रूपधारण कर रंगमंच पर आता है और 'इन्द्र' के ऐसा आचरण प्रदर्शित करता है। इसीलिए 'मोहना' के ऊपर 'इन्द्र' के रूप का आरोप किया गया है। रूप के इसी आरोप के कारण दृश्यकाव्य की 'रूपक' संज्ञा है।

दृश्यकाव्य के भेद—

दृश्यकाव्य दो प्रकार के हैं--(१) रूपक और (२) उपरूपक

(१) रूपक के दस भेद हैं (जिनमें मुख्य भेद 'नाटक' है)—नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अंक, वीथी, और प्रहसन।

(२) उपरूपक के अठारह भेद हैं (जिनमें मुख्य भेद 'नाटिका' है)—नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थान, उल्लाट्य, काव्य, प्रेंखण, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणिका, हल्लीश, और भाणिका

नाटकीय तत्व—

पाश्चात्य नाट्यशास्त्रियों के अनुसार नाटकों के छः तत्व हैं--कथावस्तु, पात्र, कथनोपकथन, देशकाल, शैली और उद्देश्य। परन्तु भारतीय आचार्यों ने नाट्य के सिर्फ तीन तत्व बतलाए हैं—वस्तु, नायक और रस। यहाँ पर हम भारतीय आचार्यों द्वारा मान्य-तत्वों का ही विश्लेषण करेंगे।

वस्तु (Plot)

नाटक की कथा-वस्तु दो प्रकार की होती है—आधिकारिक और प्रासंगिक। आधिकारिक कथा नाटक की मूल कथा होती है और इसके अतिरिक्त, नाटक में कुछ अन्य कथाएँ भी रहा करती हैं जिनका काम रहता है विशेष स्थितियों में प्रसंग के अनुकूल आधिकारिक कथा को सहायता पहुचाँना। यह प्रासंगिक

कथा कहलाती है। राजा हरिश्चन्द्र की कथा आधिकारिक कथा है, परन्तु चाण्डाल, उपाध्याय आदि की कथाएँ प्रासंगिक हैं।

प्रासंगिक कथा के दो भेद हैं—पताका और प्रकरी। जो कथावस्तु बराबर चलती रहती है वह 'पताका' और जो कुछ समय चलकर रुक जाती है वह 'प्रकरी' कही जाती है। प्रासंगिक वस्तु में चमत्कार पूर्ण धारावाहिकता लाने के लिए 'पताकास्थानक' का प्रयोग किया जाता है।

फल की सिद्धि के साधनों के विचार से वस्तु का प्रयोजन भी पाँच भागों में विभक्त है--बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य। "बीज मुख्य फल का हेतु वह कथा भाग है जो क्रमशः विकसित होता जाता है। बिन्दु वह बात है जो निमित्त बनकर समाप्त होने वाली अवांतर कथा को आगे बढ़ाती है और प्रधान कथा को अविच्छिन्न रखती है। पताका और प्रकरी का वर्णन पीछे हो चुका है। ये प्रासंगिक कथा के दो उपभेद हैं। एक में कथा बराबर चलती रहती है और दूसरे में वह थोड़े काल तक चलकर रुक या समाप्त हो जाती है। कार्य से तात्पर्य उस घटना से है जिसके लिये सब उपायों का आरंभ किया जाय और जिसकी सिद्धि के लिए सामग्री इकट्ठी की गई है। इस प्रकार ये पाँचों बातें वस्तु-विन्यास से संबंध रखती हैं।" ये सभी अर्थ प्रकृति के नाम से पुकारे जाते हैं।

कार्य की पाँच अवस्थाएँ हैं—आरंभ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम।

कार्य की अवस्थाओं और अर्थप्रकृतियों के बीच संबंध स्थापित करने के लिए पंचसंधियाँ हैं। वे हैं—मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण। "बीज और आरभ को मिलाने वाली संधि (इसमें बहुत से रसों की कल्पना की जाती है) 'मुख' है। जहाँ मुख संधि में उत्पन्न बीज कभी लक्षित और कभी अलक्षित रहता है वहाँ 'प्रतिमुख' संधि होती है। इस प्रकार बीज का विकास होता रहता है। इसमें यत्न और बिन्दु इन दोनों की संधि होती है। जिस संधि में उपाय कहीं २ दब जाय और उसकी खोज करने को बीज का और भी विकास हो उसे 'गर्भ' संधि कहते हैं। इसका नाम गर्भ संधि इसलिए है कि इसमें फल छिपा पड़ा रहता है। इसमें प्राप्त्याशा और पताका का भी योग होना चाहिए किन्तु प्राप्त्याशा के साथ पताका का मिलान वैकल्पिक होता है। जहाँ पर फल का उपाय तो कुछ और विकसित हो जाता है पर विघ्नों के आ जाने से उसमें आघात पहुँचता है वहाँ 'विमर्श' संधि होती है। किन्तु 'प्रकरी' का विधान यहाँ वैकल्पिक होता है। जहाँ एक ही प्रधान प्रयोजन में कार्य और फलागम के साथ-साथ सब प्रकार के अर्थों का पर्यावसान हो जाता है उसे 'निर्वहरण सँधि' कहते हैं। यहाँ पर प्रधान अर्थ की समाप्ति हो जाती है इसलिए इसका नाम निर्वहण संधि है"।

प्राचीन आचार्यों ने कथावस्तु को नियंत्रित करने के लिए दो भेद किये हैं—(क) दृश्य कथावस्तु और (ख) सूच्म कथावस्तु। दृश्य कथावस्तु वह है जिसका प्रत्यक्ष अभिनय रंगमंच पर

दिखाया जा सकता है और सूक्ष्म वह कथावस्तु है जिसकी सिर्फ सूचना दे दी जाती है। ये सभी कार्य नाटक के पात्र आंगिक (अभिनय), 'वाचिक' (संवाद), 'आहार्य' (वेश—भूषा) और सात्विक (हास्य—रुदन) आदि के द्वारा करते हैं।

नाटक की कथावस्तु कथनोपकथन में ही रहती है—(१) श्राव्य या सर्व श्राव्य (२) अश्राव्य (स्वगत—Solilogny) और (३) नियत श्राव्य। श्राव्य या सर्वश्राव्य—जो सबके सुनने के लिए हो, इसी को प्रकट या प्रकाश भी कहते हैं। अश्राव्य—जो दूसरों के सुनने के लिए न हो। नियत श्राव्य—जो कुछ पात्रों के सुनने के लिए हो और कुछ के लिए न हो। यह दो प्रकार का है—एक अपवारित दूसरा जनान्तिक। अपवारित नियत श्राव्य में जिस पात्र से बात को छिपाना हो उसकी ओर से मुँह फेर कर बात कही जाती है और जनान्तिक नियत श्राव्य में अंगूठा और कन-अंगुली को छोड़ कर तीन अंगुलियों की पताका सी बनाकर उसकी आड़ में एक दो पात्रों को छोड़कर दूसरे पात्रों से बात की जाती है।

रंगमंच पर मृत्यु, बध, विद्रोह, युद्ध, भोजन, मलत्याग आदि दिखाना वर्जित है। इन सबों का प्रयोग न प्राचीन नाटकों में था और न अब है। नाटक में कार्य्य—व्यापार की अधिकता होती है, इसीलिए इन दृश्यों का दिखाया जाना दुर्वार हो गया है।

नायक :—

नाटक का प्रधान पात्र नायक होता है। नेता शब्द 'नी' धातु से बना है जिसका अर्थ है ले चलना। जो कथा को फल

की ओर ले जाय वही नेता है। इसी को फल प्राप्ति होती है। हमारे यहाँ के नाटकों में नायक को सब उच्च और उदार गुणों से सम्पन्न माना गया है। उसके लिए विनय शील, सुन्दर, त्यागी, कार्य करने में कुशल; प्रिय बोलने वाला, लोक प्रिय, शुद्ध, भाषण-पटु, उच्च वंशज, स्थिर चित्त, युवा, बुद्धियुक्त, साहसी, स्मृति वाला, प्रज्ञावान, कलाकार, स्वाभिमानी, शूर, तेजस्वी और शास्त्रज्ञ होना आवश्यक बतलाया है।

नायक चार प्रकार के होते हैं—धीरो दात्त, धीरललित, धीर प्रशान्त और धीरोद्धत। धीरोदात्त क्षमावान, अहंकारशून्य, दृढ़व्रत, आत्मश्लाघा न करने वाला, शोक क्रोधादि से अविचल होता है। हरिश्चन्द्र नाटक का नायक धीरोदात्त है। धीरललित बड़े कोमल स्वभाव का होता है। धीर प्रशान्त अधिकतर ब्राह्मण या वैश्य होता है। धीरोद्धत नायक मायावी. आत्म प्रशंसा-परायण तथा स्वभाव से प्रचण्ड धोखेबाज और चपल होता है। वह अहंकार और दर्प से भरा रहता है।

रस—

भारतीय परम्परानुसार नाटकों में रस को प्रधानता दी गई है। यों तो रस नौ हैं फिर भी प्रधान रस दो माने गये है—शृंगार या वीर। नाटक में अन्य रस गौण है। नाटक में शान्त रस त्याज्य माना गया है।

सुखान्त और दुखान्त—

जिस नाटक का अन्त सुखमय या आनन्दमय दिखलाया जाता है, वह सुखान्त नाटक होता है यथा—कालीदास कृत

शकुन्तला और जिस नाटक का अन्त दुःखमय चित्रित किया जाता है वह दुखान्त नाटक कहा जाता है यथा—संस्कृत का उरुभंग। भारतीय नाटकों का पर्यवसान प्रायः सुख में किया जाता है जबकि पाश्चात्य नाटकों का ध्येय जीवन का दुःखमय परिणाम उपस्थित करना होता है।



नाटक के पारिभाषिक शब्द

१ रूपक—

रूपक नाटक का दूसरा नाम है। दृश्यकाव्य में वर्णित बातों का अभिनय करते समय कोई व्यक्ति उसमें कथित व्यक्ति का रूप धारण कर उस के अनुसार आचरण करता है, इसी कारण नाटक को 'रूपक' कहते हैं। जैसे—सत्य हरिश्चन्द्र नाटक के आरंभ में 'मोहना' इन्द्र बनकर रंगमंच पर आता है और अपने को इन्द्र मान कर तदनुसार आचरण करता है। इसलिए 'मोहना' के ऊपर 'इन्द्र' के रूप का आरोप किया गया है तथा रूप के इसी आरोप के हेतु दृश्यकाव्य की संज्ञा 'रूपक' है।

२ नाटक—

यह शब्द अङ्गरेजी के ड्रामा (Drama) का लक्षक है। 'नाटक' शब्द ' नट् ' धातू से बना है जिसका अर्थ है ' नाचना ' दृश्यकाव्य-संबंधी पुस्तकों में अभिनय करते समय नाचने-गाने आदि की जरूरत होती है, इसलिए 'नाटक' नाम भी उपयुक्त है; लेकिन वास्तव में 'रूपक' के एक भेद का नाम 'नाटक' है जिसमें 'नृत्य' को भी स्थान मिलता है।

३ मंगलाचरण (नान्दी पाठ)—

नाटक के कार्य की निर्विघ्न समाप्ति के लिए किसी देवता की आराधना या मंगल गान किया जाता है, उसे मंगलाचरण या नान्दीपाठ कहते हैं। इस नाटक के आरंभ का दोहा " सत्या-सक्त......कवि हरिचन्द" नान्दी पाठ या मंगलाचरण है।

४ नान्दी—

नाटक के आरंभ में जिसके द्वारा देवता ब्राह्मण तथा राजा आदि की स्तुति की जाती है और साथ ही दर्शकों को आशीर्वाद दिया जाता है, उसे नान्दी कहते हैं। 'नांदी; शब्द नन्द धातु से बना है जिसका अर्थ है—नन्दन करना अर्थात् आनन्द देना। नान्दी से दर्शकों के हृदय प्रफुल्लित हो उठते हैं इसलिए इसका नाम नान्दी रक्खा गया है।

५ सूत्र धार—

नाट्यशाला के प्रबंधक और प्रधान को सूत्रधार कहते हैं। सूत्रधार का काम है—पात्रों को अभिनय के शिक्षण का यथोचित रूप देना और चरित्र-वितरण करना। नाटक के आरंभ (प्रस्तावना) के सर्वप्रथम वह रंगमंच पर आकर कौन-सा नाटक अभिनीत होगा—इसकी सूचना देता है।

६ जवनिका—

रंगभूमि के आगे जो परदा रहता है उसे जवनिका कहते हैं। इसका अर्थ है—बाहरी पर्दा। यह संस्कृत का शब्द है जिसका अर्थ छिपाना होता है।

७ गर्भांक—

किसी अङ्क के बीच में प्रविष्ट दृश्य, जिसमें रंग द्वारऔर आमुख आदि अंग हों और जिसमें बीज तथा फल का स्पष्ट आभाप हो, गर्भांक कहलाता है।

८ अभिनय—

किसी व्यक्ति-विशेष के चरित्र, वेशभूषा तथा कार्यों की नकल कर उसे हू-ब-हू प्रदर्शित करने को अभिनय कहते हैं।

९ रङ्गमंच (या रंगभूमि)—

रंगस्थल रंगमंच कहा जाता है क्योंकि वहाँ पर नाटकीय पात्र अपनी वेश-भूषा बदल कर अभिनय करते हैं। यह अंग्रेजी में स्टेज (Stage) के नाम से पुकारा जाता है।

१० नट—

बहुत तरह के रूप धरण करने वाले को नट कहते हैं। जैसे—सूत्रधार।

११ नटी—

सूत्रधार की स्त्री नटी के नाम से पुकारी जाती है क्योंकि वह भी अनेक प्रकार का रूप ग्रहण करती है।

१२ पूर्वरंग—

रंगमंच की विघ्न-बाधाओं की शान्ति के लिए नाट्य वस्तु के पूर्व नर्त्तक लोग जो कुछ करते हैं, उसे पूर्वरंग कहते हैं।

१३ पारिपार्श्वक—

सूत्रधार के दाँये-बाँये खड़े रहने वाले अनुचर ही पारिपार्श्वक कहे जाते हैं।

१४ विष्कंभक—

भूत और भविष्य की कथाओं को बताने वाला और कथा को

छोटा करने वाला अङ्क विष्कंभक कहलाता है। यह अङ्क के शुरू में होता है।

१५ प्रस्तावना—

नाटक की कथा आरम्भ होने के पूर्व नटी और विदूषक आदि सूत्रधार के साथ आने वाले नाटक के बारे में बात-चीत करते हैं। इसी भाँति दर्शक–मण्डली को खेले जाने वाले नाटक की सूचना भी देते हैं। इसी को प्रस्तावना कहते हैं। इस में कवि का भी परिचय दिया जाता है जिसका नाम आमुख है [साहित्य दर्पण-विश्वनाथ]।

१६ अङ्क—

नाटक के प्रत्येक खण्ड को अङ्क कहते हैं। प्रत्येक अङ्क में पूर्व कथित नायक और नायिका आदि पात्रों का चरित्र दिखलाया जाता है। अङ्क में उतनी बातें होनी चाहिए जिनसे नायक और नायिका का चरित्र साफ होता जाय। व्यर्थ का व्यापार या बे-जरूरत के पद्यों का दे देना अङ्क का दोष हो जाता है।

१७ अङ्कावतार—

किसी अङ्क के पहले ही होने वाले अभिनय की सूचना पूर्व अङ्क के अन्त में दी जाती है। इस भाग को अङ्कावतार कहते हैं (इस नाटक में अङ्कावतार कहाँ है ?)।

१८ स्वगत (आप ही आप)—

कभी-कभी कोई पात्र ऐसा नाट्य करता है मानो उसकी बातें रंग-मंच पर का पात्र नहीं सुन रहा है। इस प्रकार की बातें ऐसी होती हैं कि किसी को कहीं नहीं गईं याने आपही आप धीरे-धीरे बोली गईं। इसको स्वगत भाषण कहते हैं।

१९ विदूषक—

यह नाटक के नायक का अन्यतम मित्र होता है। नाटक में उसका एकमात्र काम है दर्शकों को हँसाना और मनोविनोद देना। प्रत्येक नाटक में विदूषकों का समावेश नहीं होता है।

२०—नायक

नाटक का मुख्यपात्र, जो फल को भोगने वाला हो, वह नायक कहा जाता है।

२१ उपनायक

नायक के प्रतिपक्षी को उपनायक कहते हैं।

२२ प्रगट—

प्रगट, लिखने का अर्थ है कि पात्र का कथन जोर से सबके लिए कहा गया है। यह स्वगत, का प्रतिकूल मतलब वाला है।

२३ नेपथ्य—

रंगस्थल के पीछे पर्दा से घिरा हुआ एक स्थान होता है। यहीं पर पात्र लोग वेष बदलते हैं। इसको नेपथ्य कहते हैं।

२४ आकांश-भाषित—

नाटक के अभिनय में बिना किसी से प्रश्न पूछे ही आप से आप अभिनेता ऊपर की ओर देखकर किसी प्रश्न को इस प्रकार कहता है कि मालूम पड़ता है कि वह प्रश्न उससे किया जाता है और फिर वह उसका उत्तर देता है—इस प्रकार के कथन को आकाश-भाषित कहते हैं।

२५ भरत-वाक्य—

नाटक के अन्त में जो आशीर्वादात्मक पद कहे जाते हैं, वे ही भरत-वाक्य हैं। भरत वाक्य नाटक का कोई अंग नहीं बल्कि वह सिर्फ मंगल कामना है।

हिन्दी-नाट्य-साहित्य का विकास

स्वर्गीय विश्वकवि डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने नाट्यकला की विवेचना करते हुए कहा है कि इस कला की यथार्थता विभिन्न वेष-विन्यासों और हाव-भाव द्वारा रंग-मंच पर किसी चरित्र की यथार्थ परिणति करने में है।

नाटक शब्द का मूल 'नट' धातु है, जिसका अर्थ है—'नाचना'। नाचना नाटक का एक प्रमुख अंग है। नाटकों की उत्पत्ति के संबंध में अनेक प्रकार की कथाएँ प्रचलित हैं। परन्तु भरत मुनि के 'नाट्यशास्त्र' में दी हुई कथा को अधिक महत्त्व दिया जाता है। भरत मुनि ने स्वयं कहा है कि 'एक बार वैवस्वत मनु के दूसरे युग में लोग बहुत दुःखित हुए। इस पर इन्द्र तथा दूसरे देवताओं ने जाकर ब्रह्मा से प्रार्थना की कि आप मनोविनोद का कोई ऐसा साधन उत्पन्न कीजिए, जिससे सबका चित्त प्रसन्न हो सके। इस पर ब्रह्मा ने चारों वेदों को बुलाया और उन चारों की सहायता से नाट्य के पंचम वेद की रचना की। इस नये वेद के लिए ऋग्वेद से संवाद, सामवेद से गान, यजुर्वेद से नाट्य और अथर्ववेद से रस लिया गया।' स्व० विश्वकवि रविबाबू ने भी निम्नलिखित श्लोक से प्रमाणित किया है कि ब्रह्मा ने चार वेदों के समान नाट्य-वेद का भी निर्माण किया है—

इहानुक्रियते ब्रह्मा शक्रणाभ्यासितः पुरा।
चकाराकृष्य वेदेभ्यो नाट्यवेदञ्च पञ्चमम्॥

ब्रह्मा ने रंग-मंच का निर्माण किया, शिवजी ने इस नाट्य-कला को ताण्डव दिया, पार्वती ने लास्य नृत्य बतलाये और विष्णु ने चार नाट्य शैलियाँ प्रदान कीं।

भारतवर्ष में नाटकों का उदय होने के संबंध में आधुनिक विद्वानों के दो मत है। पहला यह है कि भारतवर्ष में नाटकों का उदय धार्मिक कृत्यों से हुआ है। आदिकाल में जब मानवों के प्राण संकट में पड़ जाते थे तो वे संकट से मुक्ति पाने के लिए अपने उपास्य देव के समीप नृत्य करते थे। मेकडोनल हब ने 'हिस्ट्री आफ दि संस्कृत लिटरेचर' में लिखा है कि 'यही अनुमान होता है कि भारतीय नाटक की उन्नति कृष्ण की उपासना के आधार पर ही हुई और इस कारण सबसे पहले जो भी नाटक खेले गये, सभी धर्मसंबंधी थे, जिनमें श्रीकृष्ण-चरित्र के दृश्य नृत्य, गान और वार्त्ता द्वारा दिखलाये जाते थे।' प्रो० मैक्सम्यूलर, लेवी, डा० हटैल आदि विद्वानों का कथन है कि नाटक की उत्पत्ति वैदिक ऋचाओं के गान से हुई है।

दूसरे विद्वानों का यह कथन है कि नाटक का उदय लौकिक और सामाजिक कृत्यों पर हुआ है। इसके मानने वालो में योरप के दो विद्वान् मुख्य है—एक है प्रो० हिलेब्रा (Hillebrand) और दूसरे हैं प्रो० कोनो (Konow)। इस तरह मालूम होता है कि संस्कृत में तो पहले नाटकों की रचना बहुत ही हुई, परन्तु हिन्दी साहित्य के जन्म से संस्कृत के नाटकों का लिखा जाना प्रायः

बन्द-सा हो गया। यही कारण है कि हिन्दी साहित्य के आदि-काल में अच्छे नाटकों का पूर्णतः अभाव है। साथ-साथ यह भी देखना पड़ता है कि वह काल अशान्ति का युगथा, जिसमें लिखना-पढ़ना हो नहीं सकता था। उसके बाद मुसलमानों का आगमन हुआ और यह समय भी नाटकों की रचना के अनुकूल न था। इसके दो कारण हैं। प्रथम तो 'इस्लाम में किसी का अभिनय करना कुफ्र है' दूसरे, देश में अपेक्षाकृत अधिक शांति और समृद्धि रहने पर भी भारतीय जनता पराधीनता के पाप और विदेशी शासन के अवांछनीय भार का अनुभव भली भांति कर रही थी। उसके हास में क्रन्दन था और क्रीड़ा में उदासी। मुसलमानी राज्य-काल में यदि कहीं नाट्यकला किसी रूपमें अवशिष्ट रह गई थी तो वह गोंवों में रासलीलाओं और रामलीलाओं के रूप में।

सत्रहवीं शताब्दी में कुछ नाटक लिखे गये है। एक हैं आगरा के प्रसिद्ध कवि श्रीबनारसी दासजी, जिन्होंने सं० १६९३ में 'समय-सार' नाम का नाटक लिखा है। परन्तु यह प्रसिद्ध जैन कवि कुंदकुंदाचार्य के नाटक का भाषान्तर है। प्राणचन्द्र ने स० १६६७ में 'रामायण महानाटक' लिखाहै; जो दोहा चौपाइयों में कथनोपकथन के रूप में है। देव ने 'देवमाया प्रपञ्च' एक पद्यमय नाटक लिखा है, जिसे भारतेन्दु बाबू, मिश्रबन्धुओं तथा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रसिद्ध कवि देव का बनाया हुआ बतलाया है। परन्तु श्रीव्रज-रत्नदासजी के अनुसार यह एक दूसरे देव कवि का बनाया हुआ है, जो व्यासजी के शिष्य थे। सं० १६८० में हृदयराम ने हनु-

मन्नाटक का अनुवाद किया है, जो पद्यमय भाषा में है। राजा लक्ष्मण सिंह से पूर्व शकुन्तला नाटक का अनुवाद नेवाज कवि ने किया है, जो नाटक के अन्तर्गत नहीं होता। इसके बाद बाँधव नरेश महाराज जयसिंह के पुत्र महाराज विश्वनाथसिंह के लिखे 'आनन्दरघुनन्दन' का उल्लेख हुआ है। व्रजभाषा में नाटक पहलेपहल इन्हीं ने लिखा। इस दृष्टि से इनका 'आनन्द रघुनन्दन' नाटक विशेष महत्व की वस्तु है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इसे हिन्दी का प्रथम नाटक माना है। यद्यपि इसमें पद्यों की प्रचुरता है पर सब संवाद व्रजभाषा गद्य में है। अंकविधान और पात्र-विधान भी है। हिन्दी के प्रथम नाटककार के रूप में ये चिरस्मरणीय हैं। वस्तुतः यह एक उत्कृष्ट नाटक है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखा है कि 'भारतेन्दु के पहले नाटक के नाम से जो दो-चार ग्रन्थ व्रजभाषा में लिखे गये थे; उनमें महराज विश्वनाथसिंह-कृत 'आनन्दरघुनन्दन' नाटक को छोड़कर और किसी में नाटकत्व न था।' भारतेन्दु बाबू ने अपने 'नाटक' नामक निबन्ध में लिखा है कि गिरिधरदास (बाबू गोपाल चन्द्रजी) कृत नहुष नाटक में नाटकीय तत्त्वों का सुन्दर रूप से समन्वय हुआ है। उसके बाद सन् १८६२ में राजा लक्ष्मणसिंह ने 'शकुन्तला' नाटक का अनुवाद प्रस्तुत किया था। परन्तु फ्रेडरिक पिन्काट साहब का कथन है कि शकुन्तला के इस हिन्दी–अनुवाद में बँगला के अनुवाद से बहुत कुछ सहायता ली गई है।

इस तरह देखने पर स्पष्ट होता है कि अब तक के नाटकों में तीन विशेषताएँ हैं—

(क) अधिकांश अनुवाद है। (ख) धार्मिक और पौराणिक है, और व्रजभाषा में लिखे गये हैं। (ग) पद्य की प्रचुरता हैं; गद्य नाम-मात्र के लिए है।

भारतेन्दु के आगमन से हिन्दी-नाटकों का नवीन युग आरम्भ होता है। उन्होंने कुछ मौलिक नाटकों की रचना की और कुछ संस्कृत, बँगला तथा अँग्रेजी से अनुवाद किये। वास्तव में मौलिक हिन्दी नाटकों के जन्मदाता भारतेन्दु बाबू ही है। उन्होंने कट्टर वैष्णव होने पर भी नवीन विचारों का अनुसरण किया। उन्होंने प्राचीनता के साथ ही नवीनता को भी अपनाया और उसे अपने नाटकों में स्थान दिया। उन्होंने ही सबसे पहले नाटकों में खड़ी बोली का ठीक-ठीक उपयोग किया है। उन्होंने न तो संस्कृत-शैली का अनुसरण किया है और न अँग्रेजी शैली का, बल्कि दोनों के बीच के मार्ग को ग्रहण किया है। उन्होंने अपने नाटकों में शृंगार, हास्य, कौतुक, समाज-संसार एवं देशवत्सलता का ही समन्वय किया है। इस तरह देखते है कि उनके नाटकों में 'जीवन का बहुरंगी' चित्र उतरा है। उनके द्वारा प्रणीत मौलिक नाटक ये हैं—वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, चन्द्रावली, विषस्य विषमौषधम्, भारत-दुर्दशा, नीलदेवी, अंधेरनगरी, प्रेम-योगिनी, सती--प्रताप (अधूरा); और अनूदित नाटक ये हैं -विद्या-सुन्दर, पाखंड-विडम्बन, धनंजय-विजय, कर्पूरमंजरी, मुद्राराक्षस, सत्य-हरिश्चन्द्र, भारत-जननी।

'सत्य हरिश्चन्द्र मौलिक नाटक होते हुए भी बंगला-नाटक का अनुवाद कहा जा सकता है, जैसा कि रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है।

भारत-दुर्दशा में देश की शोचनीय अवस्था का रूप आँका गया है। 'नीलदेवी' में स्त्रियों का वीरतापूर्ण कौशल दिखलाया गया है। इस तरह देखते हैं कि नाटकों की रचना शैली में उन्होंने मध्यम-मार्ग का अवलंबन किया है। न तो बँगला के नाटकों की तरह प्राचीन भारतीय शैली को एकबारगी छोड़ वे अँग्रेजी नाटकों की नकल कर चले और न प्राचीन नाट्यशास्त्र की जटिलता ही में अपने को फँसाया। उनके बड़े नाटकों में प्रस्तावना बराबर रहती थी। पताका स्थानक आदि के प्रयोग भी वे कहीं-कहीं कर देते थे। भारतेन्दु बाबू की प्रेरणा से बहुत से लोगों ने हिन्दी-नाटकों की सृष्टि की। उस समय के नाटककारों में बाबू श्री निवासदास का नाम सबसे पहले आता है। इन्होंने प्रह्लाद-चरित्र की रचना की। इसकी गिनती अच्छे नाटकों में होती है। इनके अन्य नाटकों में संयोगिता-स्वयंवर, रणधीर-प्रेममोहिनी, और तपती-संवरण हैं। श्री बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'-कृत 'भारत-सौभाग्य', श्री तोता राम-कृत 'केटो कृतान्त', पं० गदाधर भट्ट-कृत 'रेल का विकट खेल', 'बाल-विवाह' तथा चन्द्रसेन' और पं० प्रतापनारायण मिश्र-कृत 'गोसंकट नाटक', कलि-प्रभाव', 'जुआरी की खुवारी' और 'हठी हमीर' नाम के कुछ नाटक हिन्दी नाट्य-साहित्य के रंगमंच पर आये। भारतेन्दु-काल के अन्तिम समय में श्री राधाकृष्णदासजी का आगमन होता है। उन्होंने चार नाटक लिखे हैं, जिनमें 'दुःखिनी बाला' सामाजिक नाटक, महारानी पद्मावती' और 'महाराणा-प्रताप' ऐतिहासिक नाटक तथा 'धर्मालाप' एक धार्मिक नाटक है। इनके नाटकों में 'महाराणा

प्रताप' को प्रसिद्धि अधिक मिली। इसका कारण यह है कि मुख्य कथा के साथ-साथ एक प्रासंगिक प्रहसन भी इसमें चलता है। श्री केशव राम भट्ट ने 'सज्जाद-संबुल' और 'शमशाद-सोसन' नाम के दो नाटक लिखे, जिनमें उर्दू के शब्दों की भरमार है।

इस काल में पं० गदाधर भट्ट ने संस्कृत के 'मृच्छ-कटिक' का अनुवाद किया और बा० रामकृष्ण वर्मा द्वारा बंगभाषा की कृष्ण कुमारी, वीरनारी एवं पद्मावती का अनुवाद हुआ।

इस तरह भारतेन्दु-युग के नाटकों में निम्नलिखित विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं—(क) प्रस्तावना की अवहेलना हुई। (ख) पौराणिक और सामाजिक विषयों की ओर नाटककारों का झुकाव। (ग) गद्य की भाषा में उर्दू का आधिक्य और हास्य एवं व्यंग्य का पुट अधिक। (घ) ऐतिहासिक नाटक लिखे जाने लगे।

इन मौलिक नाटकों के पश्चात् हिन्दी-नाट्य-साहित्य में अनुवाद का युग आता है। उस समय संस्कृत, बंगला एवं अँग्रेजी के नाटकों का अनुवाद हुआ। संस्कृत के अनुवाद—संस्कृत से अनुवाद करने में राय बहादुर लाला सीताराम बी० ए० और पं० सत्यनारायण कविरत्न ने खूब हाथ बँटाया। लाला सीताराम ने नागानन्द, मृच्छकटिक, महावीर- चरित, उत्तर-रामचरित, मालतीमाधव और मालविकाग्निमित्र का संस्कृत से अनुवाद किया। पद्यभाग का अनुवाद करने में उन्हें सफलता नहीं मिली; परन्तु उनकी हिन्दी बहुत सीधी सादी, सरल और मुहावरे युक्त

है। संस्कृत का भाव उसमें इस ढंग से लाया गया है कि कहीं संस्कृतपन या जटिलता नहीं आने पाई है'। पं० सत्यनारायण कविरत्न ने भवभूति के 'उत्तर रामचरित' तथा मालतीमाधव' का अनुवाद किया। दोनों अनुवाद बहुत सरस एवं सरल हैं। परन्तु कहीं कहीं भावों का ठीक रूप देने में भाषा दुरूह और अव्यवस्थित हो गई है। पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र ने 'वेणीसंहार' और 'अभिज्ञानशाकुन्तल' का हिन्दी अनुवाद किया। उन्होंने संस्कृत 'रत्नावली' नाटिका का भी अनुवाद किया था; परन्तु वे पूरा नहीं कर सके थे। उसका बाबू बालमुकुन्द ने सफलतापूर्वक अनुवाद किया।

अँग्रेजी के अनुवाद—जयपुर के पुरोहित गोपीनाथ एम० ए० ने शेक्सपियर के रोमियो-जुलियट (प्रेम-लीला के नाम से) ऐज यू लाइक इट और वैनिस का बैपारी, इन तीन नाटकों के अनुवाद प्रस्तुत किये। उसके बाद श्री मथुरा प्रसाद चौधरी ने 'मैकवेथ' का अनुवाद 'साहसेन्द्र साहस' के नाम से किया और 'हैमलेट' का एक अनुवाद जयंत के नाम से निकाला, जो मराठी का अनुवाद है।

बँगला से अनुवाद—पं० रूपनारायण पांडेय ने गिरीशचन्द्र घोष एवं द्विजेन्द्रलाल राय के नाटकों का अनुवाद किया। उन्होंने गिरीश बाबू के 'पतिव्रता', क्षीरोद प्रसाद विद्याविनोद के 'खानजहाँ', रवि बाबू के 'अचलायतन', 'राजा ओ रानी' तथा द्विजेन्द्रलाल राय के 'उस पार', 'शाहजहाँ', 'दुर्गादास', 'ताराबाई' आदि अनेक बँगला नाटकों का हिन्दी में अनुवाद

किया। इनकी भाषा, अच्छी खासी हिन्दी है और मूल भाव को व्यक्त करने में पूर्णरूप से समर्थ है।

अनुवादों के अतिरिक्त कुछ मौलिक नाटकों की भी रचना हुई। इस अनुवादयुग में मौलिक नाटककारों में सर्वप्रथम पं० किशोरी लाल गोस्वामी आते हैं, जिन्होंने 'चौपट चपेट' और 'मयंकमंजरी', दो नाटक लिखे। पहला नाटक एक प्रहसन और दूसरा शृंगार रस से ओतप्रात और पाँच अंकों का है। उसके बाद कवि पं० अयोध्या- सिंहजी उपाध्याय ने 'रुक्मिणीपरिणय' और 'प्रद्युम्न- विजयव्यायोग नाम के दो नाटक लिखे। पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र-कृत 'सीता बनवास', पं० बन्देव प्रसाद मिश्र-कृत 'प्रभासमिलन', मीराबाई और लल्ला बाबू नाटक तथा बाबू शिवनन्दन सहाय का 'सुदामा नाटक भी उल्लेखनीय है। इसी काल में कानपुर के प्रसिद्ध कवि राय देवी प्रसाद पूर्ण ने 'चन्द्रकला भानुकुमार'- नामक मौलिक नाटक लिखा, जिसमें मध्ययुग के राजकुमारों एवं राजकुमारियों के जीवन की झाँकी मिलती है। इसमें चरित्रचित्रण का पूर्ण अभाव और कवित्व की प्रचुरता है। इसी बीच पं० नारायण प्रसाद बेताब, पं० राधेश्याम कथावाचक, पं० हरिकृष्ण जौहर, विश्वम्भर सहाय 'व्याकुल' और श्रीयुत आगा हश्र काशमीरी ने पारसी कम्पनियों के लिए नाटकों की रचना की, जो व्यावसायिक दृष्टि से पूर्ण सफल हुए। बेताब जी के नाटकों में 'रामायण' और महाभारत' और जौहर की 'पतिभक्ति' विशेष उल्लेखनीय है, जिसमें 'महा भारत' बहुत ही लोकप्रिय हुआ। राधेश्यामजी ने 'वीर

अभिमन्यु', 'प्रह्लाद', 'श्रवणकुमार', 'परिवर्तन' आदि की रचना की। इनमें वीर अभिमन्यु की बहुत ख्याति है। इसी तरह व्याकुलजी का 'बुद्धचरित' बहुत ही अच्छा है। उसकी सराहना करते हुए रा० ब० श्यामसुन्दर दास ने रूपकरहस्य में लिखा है—यह नाटक भाषा, भाव, रस, वस्तु, अभिनयशीलता तथा चरित्रचित्रण के विचार से हिन्दी में अद्वितीय है। इन नाटकों ने साहित्य का गौरव नहीं बढ़ाया बल्कि मनोरंजन का एक साधन बन कर रह गये। इस युग के नाटकों में कोई खास विशेषता नहीं है; क्योंकि यह अनुवाद का युग रहा।

ऐसी परिस्थिति में ही सन् १९२० के पश्चात् प्रसाद-जी हिन्दी के नाट्यक्षेत्र में ऐतिहासिक, पौराणिक एवं सांस्कृतिक नाटक लेकर अवतीर्ण हुए। इनके नाटकों पर अँगरेजी, बँगला और सँस्कृत, तीनों भाषाओं के नाटकों का प्रभाव पड़ा, जो नाटक की घटनाओं में एक लड़ी की तरह गूँथ दिये गये हैं। पाश्चात्य नाटकों एवं बँगला की छाप अवश्य पड़ी; परन्तु इनके नाटकों में अपना व्यक्तित्व है और है अपना दृष्टिकोण। वस्तुतः इन्होंने नाटकीय क्षेत्र में प्राचीनता और नवीनता के बीच एक मध्यम कड़ी स्थापित की।

वर्तमान काल के प्रमुख नाटककारों में पं० माखनलाल चतुर्वेदी मिश्रबन्धु, पं० बदरीनाथ भट्ट, मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, पं० गोविन्दवल्लभ पंत, श्री उग्र, प्रेमचन्द लक्ष्मीनारायण मिश्र, सेठ गोविन्ददास, अश्क, उदयशंकर भट्ट, सुदर्शन, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, हरिकृष्ण प्रेमी, जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द, सत्येन्द्रजी,

जी० पी श्रीवास्तव आदि मुख्य हैं। पं० माखन लाल चतुर्वेदी ने ऐतिहासिक नाटक 'कृष्णार्जुन-युद्ध' लिख कर काफी ख्याति प्राप्त की है। इसमें चरित्र चित्रण स्वाभाविक हुआ है और अल्प मात्रा में हास्य भी है। मिश्रबन्धुओं ने तीन नाटक लिखे हैं—नेत्रोन्मीलन, पूर्व भारत और शिवाजी। पं० बदरीनाथ भट्ट ने चुंगी की उम्मीदवारी, वेनचरित्र, तुलसीदास, चन्द्रगुप्त, दुर्गावती, मिस अमरीकन आदि नाटकों की रचना की है। इनमें दुर्गावती ने काफी प्रसिद्धि पाई है। मैथिली-शरण गुप्त ने 'चन्द्रहास' नाम का एक ऐतिहासिक नाटक लिखा है। रामनरेश त्रिपाठी ने 'जयन्त', 'चन्द्रालोक' एवं 'बफाती चचा' नाम के नाटक लिखे हैं। अंतिम नाटक में हिन्दू मुस्लिम एकता की समस्या है। प० गोविन्दवल्लभ पंत ने 'वरमाला', 'राजमुकुट', 'अंगूर की बेटी' नाम के नाटकों की रचना की है। इनमें वरमाला एक पौराणिक व्याख्यान है और राजमुकुट का इतिवृत्त ऐतिहासिक है। 'वरमाला' अभिन-योपयोगी भी है। उग्र ने 'महात्मा ईसा' को अभिनय की दृष्टि से लिखा है, और इसमें सभी वर्गों के पात्र हैं, जिनका चरित्र-चित्रण सुन्दर हुआ है। इसके अतिरिक्त 'डिक्टेटर' और 'चार बेचारे' भी है। प्रेमचन्द ने दो मौलिक नाटक 'कर्बला' और 'संग्राम' लिखे हैं। इनके अलावा उन्होंने गाल्सवर्दी के इन कई नाटकों का अनुवाद किया है—न्याय, हड़ताल, चाँदी की डिबिया। जस्टिस, स्ट्राइक और सिल्वरबक्स के ये अनुवाद हैं। लक्ष्मीनारायण मिश्र ने इब्सन के ढंग पर कुछ समस्यात्मक

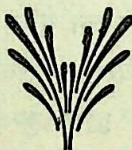
नाटकों को लिखा है, जैसे-मुक्ति का रहस्य; सन्यासी; सिन्दूर की होली, राक्षस का मंदिर, राजयोग और आधी रात। इन्होंने अशोक नाम का एक ऐतिहासिक नाटक भी लिखा है। सेठ गोविन्द दास जी ने नाट्य-तत्त्वों का गहन एवं विस्तृत अध्ययन किया है और उन्होंने सामाजिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, सभी प्रकार के नाटकों की रचना की है। उनके नाटकों में कर्त्तव्य हर्ष, प्रकाश और स्पर्द्धा का नाम लिया जाता है। अश्कजी ने जय-पराजय एवं स्वर्ग की झलक नाम के दो नाटकों को लिखा है, जिनमें प्रथम ऐतिहासिक और द्वितीय सामाजिक है। इसके अलावा उन्होंने एकांकी नाटक भी काफी लिखे हैं। पं० उदयशंकर भट्ट ने अधिकतर पौराणिक नाटकों की रचना की है। उनके नाटकों में अंबा, दाहर, मत्स्यगंधा, विश्वामित्र और सगरविजय हैं। सुदर्शनजी ने कई अच्छे नाटक लिखे हैं, जिनमें 'अंजना', 'भाग्यचक्र' और आनरेरी मैजिस्ट्रेट हैं। इनमें अन्तिम प्रहसन है। उसकी ख्याति भी अधिक हुई है। श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ने 'अशोक' और 'चन्द्रगुप्त' लिखे हैं। इनमें प्रथम अधिक सफल है। हरिकृष्ण प्रेमी ने दो ऐतिहासिक नाटकों की रचना की—रक्षा-बंधन और शिव-साधना। आपने 'विजय पाताल' नाम का भी एक नाटक लिखा है। श्रीचतुरसेन शास्त्री ने अमर राठौर, उत्सर्ग और अजीत सिंह नाम के तीन ऐतिहासिक नाटक लिखे हैं। इनकी भाषा ओजस्विनी है। श्री जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द ने 'प्रताप-प्रतिज्ञा' की रचना की है। सुमित्रानन्दन पंत ने ज्योत्स्ना की रचना की, जिसमें नाटक के तत्वों का पूर्ण

अभाव है। श्री कैलाश भटनागर का भी 'भीम प्रतिज्ञा' अच्छा हुआ है। श्रीसत्येन्द्र जी ने भी 'मुक्तियज्ञ' की रचना की है। इसमें वीररस का सुन्दर समन्वय हुआ है। श्री जी० पी० श्रीवास्तव ने फ्रांसीसी नाटककार मोलियर के नाटकों का छायामात्र अनुवाद कर उनको हिन्दुस्तानी का रूप दिया, जो प्रहसन के रूप में लिखे गये हैं। उनके निम्नलिखित नाटक हैं—मरदानी औरत, गड़बड़ झाला, नोंकझोंक, दुमदार आदमी, उलट-फेर आदि।

कुछ और अनूदित नाटक—श्रीसत्यजीवन वर्मा द्वारा भास के 'स्वप्नवासवदत्ता'; ब्रजजीवन दास द्वारा पंचरात्र मध्यम व्यायोग, प्रतिज्ञा-यौगंधरायण; श्रीबलदेव शास्त्री द्वारा प्रतिमा तथा बागीश्वर विद्यालंकार द्वारा कुन्दमाला के हिन्दी में अनुवाद हुए। इतना ही नहीं, श्री भोलानाथ शर्मा एम्० ए० ने गेटे के 'फाउस्ट' का सुन्दर अनुवाद किया है।

वर्तमान नाटकों को देखते हुए लिखना पड़ता है कि नाटकों के दोषों को हटाना अनिवार्य है। नाटकों की रचना रंगमंच की दृष्टि से नहीं होती। उनमें दृश्य लम्बे रहते हैं और साथ-साथ कौतूहल-वृद्धि का गुण नहीं पाया जाता। इतना ही नहीं नाटक की समाप्ति किस प्रकार होनी चाहिये, इस कला से भी हमारे नाटककार अनभिज्ञ हैं। वर्तमान नाटकों की भाषा पात्रानुकूल नहीं है और साथ-साथ उनमें लम्बे-लम्बे कथनोपकथन गायन तथा स्वगत भाषण होते हैं, जिससे नाटक की रोचकता जाती रहती है। हमारे नाटककार रंगमंच निर्देश (Stag

Direction) भी पुस्तकों में नहीं देते जिससे अभिनेताओं को कुछ भी सहायता नहीं मिलती। वास्तव में इन्हीं सब कठिनाइयों के कारण हम हिन्दी वालों का अपना रंगमंच नहीं हो पाता। यह हिन्दी नाटकों के विकास का एक सब से बड़ा अवरोध है। इससे मुक्त होने में एक युग लगेगा।



भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

जीवन-वृत्त—

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र बंगाल के इतिहास-प्रसिद्ध सेठ अमीचन्द के वंशज थे। इनका जन्म भाद्रपद शुक्ला सप्तमी, सं० १६०७ (ता० ६ सितम्बर १८५०) में हुआ। इनके पिता का नाम बाबू गोपालचन्द्र था। ये भी हिन्दी के अच्छे कवि थे। बाबू हरिश्चन्द्र का व्यक्तित्व असाधारण प्रतिभाशाली था। शैशवकाल में ही आपकी साहित्यानुरक्ति का प्रस्फुटन प्रारम्भ हो चला था। पाँच वर्ष की ही अवस्था में आपने एक दोहा रच कर स्पष्ट कर दिया कि सरस्वती की आप पर अनुपम अनुकम्पा है! आपने अपनी प्रखर मेधा से गद्य साहित्य के एक युग का निर्माण कर दिया। वर्तमान हिन्दी संसार भारतेन्दु-युग का चिर आभारी रहेगा। पाँच वर्ष की अवस्था में इनकी पूज्य माता का परलोक वास हो गया था और ६ वर्ष की अवस्था होने पर इनके पूज्य पिताजी का भी स्वर्गवास हो गया।

बाल्यावस्था में पितृ-हीन हो जाने के कारण ये स्वच्छन्द हो गये। ये मन देकर कभी नहीं पढ़ते थे, सर्वदा चञ्चल-चित्त रहते थे, पर बुद्धि तो ईश्वर-प्रदत्त थी। इनका विद्याध्ययन ११ ही वर्ष की अवस्था में समाप्त हो गया था। ये बाल्यकाल से ही कौतुक-प्रिय थे। उसी समय इन्हें देशाटन करने का भी मौका मिला। देशाटन से लौटने के बाद ही इनके मन में यह धुन

समाई कि देश का उपकार कैसे होगा। वयोवृद्धि के साथ-साथ इनके हृदय में देशानुराग ऐसा प्रबल होता गया कि देश की दशा देख कर और सोच कर ये कभी-कभी पागल से हो जाते और एकान्त में बैठकर अश्रुधारा प्रवाहित करते थे। इन्हें निश्चय हो गया कि बिना मातृ-भाषा की उन्नति किए तथा पाश्चात्य शिक्षा का अध्ययन किए कुछ हो ही नहीं सकता। इन्होंने अपने घर पर एक स्कूल खोल दिया जो आज 'हरिश्चन्द्र हाई स्कूल' के नाम से प्रसिद्ध है। सन् १८६८ में इन्होंने 'कवि-वचन-सुधा' नामक मासिक-पत्र निकाला। कुछ समय के बाद यह पत्र पाक्षिक और साप्ताहिक हो गया। सन् १८७३ में इन्होंने 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' भी प्रारम्भ किया, किन्तु यह तुरत ही बन्द हो गया। स्त्रियों में शिक्षा प्रचार के लिए 'बाला-बोधिनी' का जन्म हुआ।

सन् १८७० में ये आनरेरी मैजिस्ट्रेट बनाये गए। किन्तु कुछ दिनों के बाद इन्होंने स्वयं उस पद को छोड़ दिया। १८७३ में ये खूब परिमार्जित भाषा में गद्य-पद्य-लेख लिखने लग गये थे। इसी समय 'कर्पूर-मंजरी' 'सत्य-हरिश्चन्द्र' और 'चन्द्रावली' की रचना हुई।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र बड़े उदार पुरुष थे। कितने ही लोगों को पुरस्कार देकर इन्होंने कवि और सुलेखक बना दिया। ये गाने-बजाने, चित्रकारी, पुस्तक-संग्रह आदि के बड़े प्रेमी थे। हिन्दी को राजभाषा बनाने का पहले-पहल आपने ही उद्योग किया था। भारतेन्दु आशु-कवि थे। बातें करते जाते थे, कवित्त रचते जाते थे। 'अन्धेर-नगरी' एक ही दिन में लिखी गई थी।

भारतेन्दु जी की प्रतिभा का विकास सर्वतोमुखी था। आपने भाषा और साहित्य दोनों का ही रूप सँवारा। समाज से साहित्य पिछड़ रहा था। भारतेन्दु के मौलिक नाटकों से जन-रुचि संतुष्ट हुई तथा समाज और साहित्य मध्य संधि स्थिर हुई। पैंतीस वर्ष की ही अल्पावस्था में आपका स्वर्ग-वास हो गया।

भारतेन्दु की रचनाएँ

भारतेन्दु की रचनाओं की संख्या इतनी अधिक है कि उसे देखकर उनकी प्रतिभा, उनकी लगन और उनके अध्यवसाय पर आश्चर्य होता है। उनकी रचनाएँ चार प्रकार की हैं—(१) नाटक—मौलिक नाटक नौ हैं—सत्यहरिश्चन्द्र, चन्द्रावली, भारत-दुर्दशा, नीलदेवी, अंधेर नगरी, वैदकी हिंसा हिंसा न भवति; विषस्य विषमौषधम्, सती प्रताप, प्रेमयोगिनी। इसमें अन्तिम दो अपूर्ण हैं। अनूदित नाटक आठ हैं और वे हैं—मुद्राराक्षस, धनञ्जय-विजय रत्नावली नाटिका, कर्पूर मंजरी, विद्या सुन्दर, भारत-जननी, पाखंड विडम्बन, दुर्लभ बन्धु। (२) उनके शृंगार-रसपूर्ण काव्य-ग्रन्थों में होली, मधुमुकुल, प्रेम फुलवारी, प्रेमप्रलाप, सतसई शृंगार आदि हैं और राष्ट्रीय और राजभक्ति सम्बन्धी रचनाओं में विजयिनी-विजय, वैजयन्ती, भारत-वीणा, सुमनांजलि आदि हैं। और उनके भक्ति-काव्य-संबंधी ४१ ग्रन्थ हैं। (३) इतिहास—इस कोटि की रचनाओं में काश्मीर कुसम, अग्रवालों की उत्पत्ति, दिल्ली दरबार आदि हैं। (४) उन्होंने छोटे-मोटे निबन्ध भी काफी लिखे हैं!

भारतेन्दु की काव्य साधना

हरिश्चन्द्रजी का स्थान हिन्दी साहित्य में बड़े ही महत्त्व का है। वस्तुतः आधुनिक हिन्दी गद्य और पद्य साहित्य के भारतेन्दु ही जन्मदाता हैं। भारतेन्दु की महत्ता बढ़ाने में उनकी राष्ट्रीयता, संधिकाल में सामंजस्य की भावना का सफल चित्रण, अभिव्यंजना के क्षेत्र में मनोभावों का सफल और प्रकृत-चित्रण, सामूहिक रूप से सभी साहित्यकारों का साहित्य के परिमार्जन एवं परिवर्धन में प्रशंसनीय सहयोग। इन्हीं सब कारणों से उनकी प्रतिभा का समुचित विकास हो पाया। भारतेन्दु का काव्य हमें कई रूपों में दृष्टिगत होता है। अस्तु, हम सुविधा के लिए उनके काव्य का विभाजन चार भागों में करते हैं—

(१) भक्ति प्रधान (२) शृंगार-प्रधान (३) देश-प्रेम (४) सामाजिक समस्या-प्रधान।

१ भक्ति-प्रधान—भारतेन्दु वैष्णव थे। वे पुष्टि-सम्प्रदाय के कृष्ण भक्त थे। उन्होंने अधिकतर इसी प्रकार की रचनाएँ की हैं। इस तरह की कृष्ण संबंधी कविताए सूर के काव्य पर अवलम्बित हैं। जिस भी दृष्टि से उसकी परख करने की चेष्टा करें, उसमें वही विषय, वही भाषा वही शब्द-योजना, वही भाव-भंगिमा है। यह ठीक है कि उन पर सूर का अत्यधिक प्रभाव है परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उनमें मौलिकता नहीं है। भारतेन्दु में मौलिकता है। भारतेन्दु की भक्ति संबंधी कविताएँ गीतिकाव्य की श्रेणी के अन्तर्गत आती हैं। इस प्रकार के पदों की संख्या लगभग डेढ़ हजार हैं। इतनी बड़ी संख्या में इस प्रकार के पद

रचनाकारों में अष्टछाप के कवियों के बाद भारतेन्दु ही आते हैं। उनकी धार्मिक भावना की अभिव्यक्ति निम्नांकित पंक्तियों में अभिव्यक्त है—

हम तो मोल लिये या घर के,

दास-दास श्री वल्लभ कुल के, चाकर राधावर के।

२ श्रृङ्गार-प्रधान—भक्ति-सम्बन्धी रचनाओं के बाद उनकी श्रृङ्गार-सम्बन्धी रचनाएँ आती हैं। इस प्रकार की रचनाओं में उन्होंने राधा और कृष्ण को नायिका और नायक के रूप में वर्णन किया है। उन्होंने श्रृङ्गार के दोनों पक्षों को अपने काव्य में स्थान दिया है। उन्होंने संयोग श्रृङ्गार की अपेक्षा वियोग-श्रृङ्गार के अङ्कन में ही सफलता प्राप्त की है। प्रेममय चित्र आँकने में भारतेन्दु पटु हैं। इनकी श्रृङ्गार रस की कविताओं में प्रेम का अश्लील वर्णन नहीं हुआ है। इस प्रकार की रचनाओं का पाठकों के हृदय पर अधिक प्रभाव पड़ा है। ऐसी रचनाएँ प्रायः कवित्त और सवैये में ही पायी जाती हैं। उनके कवित्त और सवैयों में अनुभूति का सुन्दर समावेश है। इस कोटि के काव्य ग्रंथों में प्रेम फुलवारी, प्रेम माधुरी, प्रेम तरंग आदि हैं।

३ देश-प्रेम-प्रधान—भारतेन्दु के हृदय में देश-प्रेम की भावना भी विराजमान थी। वे राष्ट्र का कल्याण चाहते थे। सर्व प्रथम उन्होंने भारत की दुर्दशा का चित्र खींच कर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया—

रोअहु सब मिलि के आवहु भारत भाई।
हा! हा!! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥

वस्तुतः आज की राष्ट्रीयता का बीज-वपन भारतेन्दु ही कर गये थे।

४ सामाजिक समस्या-प्रधान रचनाएँ—भारतेन्दु समाज के दोष से परिचित थे। उन्होंने समाज की समस्या को सुलझाने का प्रयत्न भी किया। वस्तुतः समाज का सुधार करने के लिए ही उन्होंने ठुमरी, लावनी, गजल, ख्याल, नौटंकी के गाने और सामाजिक आहार-व्यवहार तथा उत्सव पर गाये जानेवाले गीतों की रचना की।

भारतेन्दु ने प्रकृति का भी चित्र उतारा है, पर उसमें शुद्ध प्राकृतिक वर्णन का अभाव है। उनके प्रकृति चित्रण में कोई आनन्द नहीं है।

भारतेन्दु ने मनोवैज्ञानिक एवं विद्वतापूर्ण तर्कों के आधार पर वात्सल्य, सख्य, भक्ति और आनन्द इन चार रसों की उद्भावना की, जो हिन्दी कविता के लिए एक मौलिक देन है। भारतेन्दु की कविता में खड़ी बोली और ब्रजभाषा का सुन्दर संतुलन है परन्तु इनकी कविता प्रधानतः ब्रजभाषा में ही होती थी। इनकी भाषा प्रवाहपूर्ण, सरल, सरस, प्रसाद-गुण-युक्त तथा बोधगम्य है। इनकी भाषा में कहीं-कहीं व्याकरण की अशुद्धियाँ भी हैं। इन्होंने भावानुकूल शैली का आश्रय ग्रहण किया हैं। इनकी रचनाओं में अलंकारों की मुठभेड़ है। वे अलंकार कहीं स्वाभाविक रूप से उतर पड़े हैं, कहीं कृत्रिम रूप में। छन्दों की दृष्टि से कवित्त में मनहरण और सवैया में मत्त गयन्द, दुर्मित तथा अरसाल

मिलते हैं। इनकी छन्द योजना निर्दोष, विषयानुकूल और विविध रूपिणी है। अस्तु, सभी दृष्टि से भारतेन्दु एक सफल कवि हैं।

भारतेन्दु का गद्य-साहित्य—

हिन्दी रंग मंच पर भारतेन्दु का आविर्भाव उस समय हुआ जिस समय गद्य-साहित्य का नितान्त अभाव था। यों तो नाम-लिहाज के लिए हिन्दी के गद्यकारों में लल्लू लाल, सदल मिश्र, राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द, राजा लक्ष्मण सिंह आदि का नाम लिया जाता है, परन्तु इनमें एक ने भाषा को पंडिताऊ और दूसरे ने उर्दू-दाँ बनाया। इससे भाषा विकृत हो गई थी। भारतेन्दु ने आकर गद्य की भाषा को एक मान्यरूप दिया। उन्होंने गद्य के लिए खड़ी बोली को अपनाया और उसे ऐसा शक्तिशाली बना दिया कि सचमुच वह भाषा भावों की अभिव्यक्ति का वाहक हो गई। जिस शैली को उन्होंने गद्य के लिए अपनाया, वह आज भी मान्य है। उनकी भाषा बनावटी नहीं बल्कि स्वाभाविक है। इसीलिए भारतेन्दु गद्य-साहित्य के जन्म दाता माने जाते हैं। पद्य की अपेक्षा उन्होंने गद्य भी कम नहीं लिखा है और गद्य के लिए जो विषय चुने गए हैं, वे विभिन्न दिशा के परिचायक हैं। उनके गद्य-साहित्य में गांभीर्य है। उन्होंने साहित्य के अनेक उपेक्षित अंगों की मरहम-पट्टी की। उन्होंने इतिहास, निबन्ध, कथा और उपन्यास आदि लिखने की ओर ध्यान दिया। इतना ही नहीं बल्कि दूसरे लोगों से लिखवाया भी। कहने का तात्पर्य यह है कि उन्होंने एक लेखक-मंडली का निर्माण किया।

सुतरां यह स्पष्ट है कि युग की माँग को समझते हुए गद्य-साहित्य के विकास के लिए वे प्रयत्नशील रहे। हाँ, आलोचना की नयी प्रणाली का प्रारंभ भी भारतेन्दु से ही शुरू हुआ। इसीलिए ग्रियर्सन साहब की राय में वे उत्तर भारत के सर्व प्रथम समालोचक थे। इस बात की पुष्टि के लिए उनका 'नाटक' संबंधी निबन्ध काफी है। भारतेन्दु के निबन्ध गभीर, गवेषणात्मक एवं हास्यमय होते थे। काश्मीर-कुसुम, महाराष्ट्र देश का इतिहास, बादशाह दर्पण आदि लिख कर इतिहास-रचना का मार्ग प्रशस्त किया। उन्होंने जीवन-चरित्र भी काफी लिखा है। 'चरितावली' की ग्रियर्सन साहब ने भी प्रशंसा लिखी थी। 'रामायण का महत्व' लिख कर उन्होंने पुरातत्व वेत्ता होने का काफी परिचय दिया है। वस्तुतः इन सब बातों को दृष्टिपथ में रखते हुए हमें यह स्वीकार करना पड़ता है कि भारतेन्दु अपने युग के बेजोड़ एवं सर्व प्रथम गद्यकार थे।

भारतेन्दु की पत्रकारिता—

भारतेन्दु अपने युग के एक सफल पत्रकार थे। यों तो उनके युग में प्रचार की ओर लोग ध्यान नहीं देते थे पर भारतेन्दु ने जमाने की रफ्तार को देखकर पत्र निकाला था; हाँ, उनके पहले पत्र निकले अवश्य थे लेकिन उस समय पत्र की दशा अधकचरी थी। सन् १८६७ में भारतेन्दु ने 'कविवचन सुधा' प्रकाशित की और इस पत्र की लोकप्रियता इतनी रही कि वह भारतेन्दु की मृत्यु तक बराबर निकलती रही। सन् १८७३ में भारतेन्दु ने हरिश्चन्द्र मैगज़िन निकाला जो सन् १८८० तक बड़ी सजधज से निकलता

रहा। परन्तु आर्थिक संकट के कारण उन्होंने सन् १८८० ई० के बाद इससे हाथ खींच लिया। इसी तरह अनेक पत्रों का प्रकाशन उन्होंने किया। अतएव हम देखते हैं कि इन पत्रों के द्वारा उन्होंने अपनी पत्र-कला का यथेष्ट परिचय दिया। उस जमाने के लिये बड़े गौरव की बात थी।

भारतेन्दु की नाट्य-कला—

हिन्दी में नाटक के जन्मदाता भी भारतेन्दु ही थे। उनके नाटक दो तरह के हैं--कुछ अनूदित हैं और कुछ मौलिक। इन्होंने कुल मिलाकर अठारह नाटक लिखे हैं जिनमें से दो इनके हैं या नहीं—इसमें सन्देह है और दो-तीन अपूर्ण ही रह गए। उन्होंने नाटक रचना का अभ्यास अनुवाद से आरंभ किया। अंग्रेजी साहित्य से भारतेन्दु पूर्ण रूप से परिचित नहीं थे। उनका 'दुर्लभ बन्धु' 'मर्चेंएड आफ वेनिस' नाटक का अनुवाद है। अनुवाद के साथ-साथ उन्होंने मौलिक-नाटकों का भी प्रणयन किया। 'भारत-दुर्दशा', 'नील देवी' और 'चंद्रावली' इनके मौलिक-नाटकों में अत्यन्त ही सुन्दर है। उनके मौलिक नाटक ऐतिहासिक तथा पौराणिक हैं। अनुवादित में 'मुद्राराक्षस', 'भारत-जननी', 'विद्या सुन्दर', 'धनञ्जय-विजय' आदि बड़े मनोहर हैं। इनके अनूदित नाटक मौलिक नाटकों के समान आनन्द देते हैं। 'मुद्रा-राक्षस' इसी की टीका है। 'चन्द्रावली' में कवित्व और कल्पना का संतुलित समन्वय है। 'भारत दुर्दशा' और 'भारत जननी' राष्ट्रीय भावनाओं से भरा पड़ा है। इनके सभी नाटक रंगमंच

पर खेले जाने योग्य हैं। भारतेन्दु के जीवन काल में भी इनके नाटकों का अभिनय हुआ था और आज भी हो रहा है।

रचना-शैली की दृष्टि से भारतेन्दु संस्कृत के नाटकों से प्रभावित हैं लेकिन उनके प्रत्येक स्थल पर मौलिकता टपकती है। न उन्होंने परम्परागत शैली का अनुकरण किया है और न नवीनता का अंधाधुंध समावेश बल्कि मध्यम मार्ग का अनुसरण किया। उनके बड़े नाटकों में प्रस्तावना बराबर रहती है। इस तरह हम देखते हैं कि उनके नाटक नवीन भी हैं और प्राचीन भी।

उपसंहार—

भारतेन्दु हमारे पथ-प्रदर्शक थे। उन्होंने हमें एक निर्दिष्ट मार्ग दिखलाया। आज साहित्य के प्रांगण में जो भी फल-फूल, पेड़-पौधे के नाम पर देख रहे हैं वह उन्हीं की देन है, उन्हीं का प्रसाद है। उन्होंने सिर्फ चौंतीस वर्ष की आयु पायी थी फिर भी उनकी लेखनी के द्वारा साहित्य का जो उपकार हुआ है, वह चिरस्मरणीय है। इसी हेतु भारतेन्दु मर कर भी अमर हैं। भारतेन्दु ने अपना चित्र अपने निम्नांकित दोहों में खींचा है, वह बिल्कुल चरितार्थ होता है—

सेवक गुनीजन के चाकर चतुर के हैं,
कविन के मीत, चित हित गुन गानी के।
सीधेन सों सीधे, महा बांके हम बांकेन सों;
हरिचन्द्र नगद दमाद अभिमानी के।

चाहिवे की चाह, काहू को न परवाह,
नेही नेह के दिवाने सदा सूरत निवानी के।
सरबस रसिक के, सुदास दास प्रेमिन के,
सखा प्यारे कृष्ण के, गुलाम राधारानी के

सत्य हरिश्चन्द्र नाटक की कथा

पुराणवर्णित अयोध्या के राजा हरिश्चन्द्र के सत्य पालन की कथा इस दृश्य काव्य में वर्णन की गई है। राजा ने विश्वामित्र को सारी पृथ्वी दान करके उसकी दक्षिणा चुकाने के निमित्त काशी में स्वपत्नी तथा प्रिय पुत्र को एक ब्रह्मचारी के हाथ और अपने को एक डोम के हाथ बेच कर और श्मशान में मुर्दों की कफन की वृत्ति स्वीकार कर दृढ़ता-पूर्वक धर्म का पालन किया था।

प्रथम अङ्क में राजा इन्द्र निज देव-सभा में 'यहाँ सत्यभय एक के' इत्यादि कहते इधर-उधर घूमते हैं। इतने में वहाँ नारद आते हैं और प्रसंगानुसार राजा हरिश्चन्द्र की सत्यता की प्रशंसा करते हैं। राजा इन्द्र के उस विषय में उत्तरोत्तर प्रश्न करने पर वह कहते हैं कि राजा हरिश्चन्द्र ऐसा धार्मिक है कि :—

चन्द्र टरै सूरज टरै, टरै जगत व्योहार।
पै दृढ़ श्रीहरिचन्द के, टरै न सत्यविचार॥

उसी समय विश्वामित्र इन्द्र के पास आते हैं और नारद विदा माँग कर चले जाते हैं। विश्वामित्र ने यह सुनकर कि नारद हरिश्चन्द्र की बड़ी प्रशंसा कर रहे थे और इन्द्र के छेड़ने पर कुछ रुष्ट से हो गये, यह कहा कि 'अभी देखता हूँ, जो हरिश्चन्द्र को तेजो-भ्रष्ट न किया तो मेरा नाम विश्वामित्र नहीं' और सक्रोध चलना चाहते हैं।

दूसरे अङ्क में, नेपथ्य में वैतालिक राजा का यश गान करता है।

प्रकटहु रवि कुल रवि निसि बीती प्रजा कमलगन फूले।
मन्द परे रिपुगन तारा सम जनभय तम उन्मूले ॥

इस कविता में कवि ने श्यागोक्ति द्वारा प्रातःकाल की छवि का भी वर्णन किया है।

इसी अङ्क में राजा हरिश्चन्द्र ने विश्वामित्र को स्व-राज्य अर्पण किया है। ऋषि ने उस दान की दक्षिणा सहस्र स्वर्ण मुद्रा माँगी है और एक महीने के भीतर न पाने से ब्रह्मदण्ड देने का भय दिखलाया है।

दूसरे अङ्क के अङ्कावतार में भैरवनाथ श्री महादेव जी की आज्ञा से हरिश्चन्द्र की अङ्ग-रक्षा करने को उद्यत होते हैं और हरिश्चन्द्र को देखकर पाप चिल्लाता हुआ भागता है।

तीसरे अङ्क में हरिश्चन्द्र काशी के घाट किनारे की सड़क पर घूमते हैं एवं काशी का माहात्म्य और गंगा की शोभा का वर्णन करते हैं।

'नव उज्ज्वल जलधार हार हीरक सी सोहति।
बिच-बिच छहरति बूँद मध्य मुक्तामणि पोहति ॥'

इसी दृश्य में बटु के सहित एक उपाध्याय आकर रानी और बालक को मोल लेते हैं। यहाँ पर कवि ने बालक की तोतली बातों में अद्भुत करुणा भरी है।

इसी में धर्म चाण्डाल का वेष धारण करके राजा को मोल लेने आता है और विश्वामित्र की आज्ञा से हरिश्चन्द्र डोम के हाथ इस नियम पर बिक कर दक्षिणा चुकाते हैं।

भीख असन कम्बल वसन, रखि हैं दूर निवास।
जो प्रभु आज्ञा होइहैं, करिहैं सब ह्वै दास॥

और चाण्डाल से अपना मूल्य लेकर और मन में यह कहते हुए कि :—

'ऋण छूट्यो पूर्यो बचन, द्विजहु न दीनो शाप।
सत्यपाल चाण्डाल हूँ, होइ आज मोहि दाप'॥

राजा हरिश्चन्द्र एक सहस्र स्वर्ण-मुद्रा विश्वामित्र को दक्षिणा देते हैं और विश्वामित्र आशीर्वाद देते हुए चले जाते हैं।

चौथे अङ्क में राजा हरिश्चन्द्र चाण्डाल के किंकर बनकर श्मशान में घूमते हैं और उस स्थान की अद्भुत शोभा का इस भाँति वर्णन करते हैं।

यथा सन्ध्या मिस श्मशान का वर्णन :—

सूरज धूप बिना की चिता सोई अन्त में ले जल माँह बहाई।

श्मशान में पिशाच, डाकिनी आमोद-प्रमोद करते नाच-गा रहे हैं। इनका विचित्र आलाप जानने योग्य है।

हरिश्चन्द्र वर्षाकाल में श्मशान में घूमते हुये वर्षा और श्मशान दोनों की समता वर्णन कर रहे हैं। इसी अवसर में

धर्म्म कापालिक का वेष धारण कर के एवं महाविद्या तथा ऋद्धि-सिद्धि आकर हरिश्चन्द्र को लालच देकर धर्म्म-भ्रष्ट करना चाहती हैं और जब वे सब इनको धर्म्म से नहीं डिगा सकीं तब इन्द्र ने तक्षक को भेज कर राजा हरिश्चंद्र के पुत्र को डँसवाया है।

जब उनकी स्त्री पुत्र के शव को अपनी साड़ी के टुकड़े में लपेट कर श्मशान में ले गई है और निज डोम स्वामी की आज्ञा पालनार्थ राजा ने अपनी स्त्री से कफन का टुकड़ा माँगा है, उस अवसर पर राजा और रानी के सम्भाषण में कवि ने अपने ग्रन्थ में जिस करुणारस को दर्शाया है उसको पढ़कर कौन ऐसा पाषाण हृदय होगा जिसके नेत्रों से अश्रु धारा प्रवाहित न हो। उस करुण रस-पूर्ण आवेग में भी राजा ने निज पत्नी को धर्म्म पर आरूढ़ रह कर कफन का टुकड़ा देने के लिए उद्यत किया है। उस समय समस्त देवताओं ने श्मशान में प्रकट होकर राजा के सत्यपालन की बड़ी प्रशंसा की है। पुत्र जीवित हुआ है, और विश्वामित्र ने अपनी ओर से राजा को राज्य भी फेर दिया है। उनके सत्य की कथा त्रैलोक्य में व्याप्त हो गई है और आज तक उसका गान किया जाता है।

इस पुस्तक में कवि ने केवल राजा हरिश्चन्द्र की धर्म्म निष्ठता एवं सत्यता ही को प्रतिपादित नहीं किया है, वरन् रानी शैव्या का पातिव्रत्य-धर्म्म भी गुप्त ज्ञान में सर्वोत्तम रीति से सिद्ध किया है। पति के सर्वस्व राज्य को ब्राह्मण को दान कर देने में तनिक भी बाधक न होना और केवल इतना ही कहना कि "नाथ स्वामी के व्यवहार को भी आप सत्य मानियेगा" और

इतना कहने के लिए भी क्षमा माँगना, स्वामी के बिकने के पूर्व ही उनके हित साधनार्थ अपने को निरे गोद के बालक के साथ बेच देना, पति की आज्ञा भंग और उनका सत्यव्रत भ्रष्ट न हों, केवल इस अभिप्राय से अञ्चल के जिस टुकड़े में प्रियपुत्र के शव को बाँध कर ले गई थी, उसका भी आधा फाड़ कर देने पर उद्यत हो जाना, क्या शैव्या को एक परम पूजनीया प्रतिव्रता नारी सिद्ध नहीं करता है ? कवि ने राजा रानी दोनों को आदर्श धर्म्मात्मा दिखलाया है। वैसे ही इन्द्र की परद्रोहिता तथा विश्वामित्र के क्रोध का काले रंग का अच्छा चित्र खींचा है;। परन्तु उसमें भी सुरंग की कुछ छींटे दे दी हैं। अर्थात् उत्तम अधम प्रत्येक पात्र और स्थान का सच्चा चित्र खींचा है और विषय के वर्णन में विलक्षण कविता-शक्ति दिखलाई है। क्रोध, भयानक, शान्त, करुण आदि कई रसों का उद्भव कराया है"।

—:o:o:—

पात्रों का चरित्र-चित्रण

राजा हरिश्चन्द्र

नाटक के प्रधान नायक राजा हरिश्चन्द्र हैं। प्रधान नायक के जितने गुण होते हैं वे सभी इनमें विद्यमान हैं। इनके चरित्र

चित्रण में लेखक को पूरी सफलता हासिल हुई है। हाँ, कहीं-कहीं पर अस्वाभाविक घटनाओं का दिग्दर्शन होता है। इसके लिए भले ही कोई लेखक पर दोषारोपण कर दे, पर उसके लिए भी लेखक क्षम्य हैं क्योंकि वे अपनी उद्देश्य-पूर्त्ति में इस तरह लगे हुए हैं कि उन्हें स्वाभाविकता अथवा अस्वाभाविकता की उतनी परवाह नहीं है। उन्हें तो पाठक वृन्द की सत्यता का एक आदेश पेश करना है। राजा हरिश्चन्द्र का चरित्र-चित्रण उसी आदर्श को मूर्त्ति-मान कर किया गया है। इसीलिए इस नाटक का नाम भी सत्य हरिश्चन्द्र रखा गया है।

नाटक के आरम्भ ही में राजा हरिश्चन्द्र की सत्यता का गुणगान नारद जी द्वारा कराया जाता है। यहाँ पर लेखक की नाट्य-चातुरी का दिग्दर्शन होता है। लेखक अपना असल अभि-प्राय दर्शकों के सामने पेश करता है। हरिश्चन्द्र के और सब गुणों की अपेक्षा सत्यता को प्रधानता दी जाती है। तथा इसी सत्यता का पाठ दर्शकों को पढ़ाना भी लेखक का मतलब है।

राजा हरिश्चन्द्र सिर्फ सत्य-निष्ठ ही नहीं हैं, उनमें महा-पुरुष के और भी गुण मौजूद हैं। वे दृढ़-प्रतिज्ञ भी हैं। इस बात की सबूत में लेखक यह पेश करते हैं कि स्वप्न में भी की हुई प्रतिज्ञा को राजा हरिश्चन्द्र निभाते हैं। मगर लेखक की ऐसी उत्प्रेक्षा अस्वाभाविक और असंगत प्रतीत होती है। दृढ़ प्रतिज्ञा की कसौटी पर कसने के लिए लेखक विश्वामित्र द्वारा राजा हरिश्चन्द्र को भली-बुरी बातें कहवाते हैं। तरह-तरह की यातनाएँ और तकलीफें दिलवाते हैं। पर हरिश्चन्द्र खरे

उतरते हैं। तो क्या ऐसे महापुरुष के मुहँ से इस तरह की आत्मश्लाघा की बातें कहवाना उचित है ?—

चन्द्र टरै सूरज टरै, टरै जगत व्योहार।
पै दृढ़ श्रीहरिचन्द के, टरै न सत्य विचार॥

कदापि नहीं, ऐसा करना तो ऐसे महापुरुष के साथ अन्याय करना है। उनकी अमल कीर्ति में कलङ्क का टीका लगाना है। यही नहीं, लेखक के लिए भी यह एक कमजोरी की बात है। मगर पुस्तकावलोकन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक में भी आत्मश्लाघा कूट-कूट कर भरी है। जहाँ-तहाँ इन्होंने भी अपनी तारीफ़ खुले मुहँ से खूब ही की है।

राजा हरिश्चन्द्र को अपनी स्त्री और पुत्र से प्रेम करना स्वाभाविक है। उनकी हीन दशा देख कर कई बार साधारण मनुष्य की तरह वे घबड़ा उठते हैं परन्तु इसके लिए उन पर किसी तरह का दोषारोपण नहीं किया जा सकता है क्योंकि आखिरकार उन्हें तो मनुष्यवत मानकर चित्रित किया गया है। उनको भी हृदय है। फिर भी, स्वार्थ और आत्मीयजनों के प्रेम के सामने धर्म को नहीं भूलते, और प्रतिज्ञा और सत्य-निष्ठा पर स्त्री और पुत्र की बलि देने में संकोच नहीं करते। उन्हें केवल अधर्म और ब्राह्मण के शाप का ही भय हैं; और किसी का नहीं। विश्वामित्र के व्यर्थ क्रोध करने पर भी उनके लिए न तो किसी अपशब्द का व्यवहार करते हैं और न परोक्ष ही में उनके लिए कोई कटु-वाक्य कहते हैं। यहां पर लेखक ने उन्हें सहनशीलता

और उदारता के ढाँचे में खूब अच्छी तरह ढाला है। नम्रता की तो मानो वे साक्षात् मूर्ति हैं। जितना विश्वामित्र बिगड़ते हैं उतना ही वे विनय दिखाते हैं। रानी के बिक जाने पर जो शिक्षा उन्होंने दी है वह उनके धैर्य और धर्म का द्योतक है। उपाध्याय की सेवा करने का ही आदेश रानी को देते हैं। और कैसा मर्मस्पर्शी उपदेश दिया हैं कि अपने कुल और जाति का विस्मरण न करना, फिर चाहे जैसी दासवृत्ति स्वीकार करनी पड़े उससे हानि नहीं। ये हैं महापुरुषों के उपदेश।

स्वयं श्मशान पर पहुँच कर संसार की अनित्यता का ध्यान उन्हें आता है। धर्म की रक्षा के लिए सब कुछ खो बैठने पर वैराग्य के भावों का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। परन्तु वहाँ भी अपना कर्तव्य और स्वामी सेवा का ध्यान उन्हें बराबर बना रहता है। यहाँ तक कि धर्म भी उनकी प्रशंसा करता है। जब श्मशान पर महाविद्याएँ उनके वश होती हैं तो वे उनको विश्वामित्र की वश-वर्तिनी होने की आज्ञा देते हैं। महानिधान सिद्ध होता है तो स्वामी के लिए है। स्वयं स्वीकार नहीं करते।

शैव्या रोहिताश्व का शव लेकर श्मशान में आती है। उसके हृदय-विदारक रोदन से पेड़-पत्ते तक भी आंसू बहाते हैं तो राजा हरिश्चन्द्र का दुखी होना स्वाभाविक है। मगर ये महापुरुष हैं। महापुरुषों को संसार की किसी तरह की विपत्ति कर्तव्य-च्युत नहीं कर सकती। ऐसी अवस्था में भी वे कर्त्तव्याकर्त्तव्य को नहीं भूलते। शैव्या के लाख आरजू मिन्नत करने पर भी वे बगैर

कर लिए शव को जलाने देने को रवादार नहीं होते। प्यारे एकलौते पुत्र की लाश सामने पड़ी है। स्त्री छाती फाड़-फाड़ कर रो रही है। ऐसे समय में कौन ऐसा हृदयहीन मनुष्य होगा जिसके नेत्र से आँसू की धाराएँ न बह निकलें। ऐसे मौके पर कर्त्तव्य-परायणता दिखलाना एक अनहोनी बात है और साधारण मनुष्य का काम नहीं है। धन्य हैं राजा हरिश्चन्द्र और उनकी कर्त्तव्य-परायणता।

जैसा चित्र नाटककार ने राजा हरिश्चन्द्र का खींचा है उससे हमारे हृदय में राजा के लिए करुणा उत्पन्न हो जाती है।

रानी शैव्या

रानी शैव्या प्रधान नायक की स्त्री है। प्रधान नायक एक महापुरुष हैं। अतएव रानी शैव्या को भी उस तरह की गुणवती होना परमावश्यक है। इसी वजह से नाटककार ने उसे राजा हरिश्चन्द्र के अनुरूप ही चित्रित किया है।

पाति-व्रत धर्म पालन करने में रानी शैव्या सीताजी से किसी हालत में कम नहीं थी। सब से मार्के की बात तो यह है कि पातिव्रत धर्म पालन करने के साथ वह अपना कर्त्तव्य कभी भी नहीं भूलती थी। जो आपत्ति राजा पर पड़ी उन सभी को

रानी को भी झेलना पड़ा था। मगर वह एक स्त्री थी। स्त्री का स्वभाव कोमल होता है। किसी भी तकलीफ को मर्दों से ज्यादा औरत अनुभव करती है। रानी शैव्या ने भी दुःखों को राजा से ज्यादा अनुभव किया होगा। इस वजह से राजा से कहीं ज्यादा धैर्य शैव्या को ही था। पति-परायणा स्त्री वही है जो अपने स्वामी के दुःख-सुख में बराबर हाथ बटावे। राजा पर जो विपत्ति पड़ती है उसको धैर्य-पूर्वक सहने के लिए शैव्या स्वयं अग्रसर होती है। जब बिकने का समय आता है तब वह स्वयं पहले बिकने को उद्यत हो जाती है। स्वामी का वियोग असहनीय होता है। मगर सीताजी की नाईं शैव्या अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्य को भूलकर उसीमें पागल नहीं हो जाती है। मगर इस वजह से माता सीता पर दोषारोपण भी नहीं किया जा सकता क्योंकि उनके सामने केवल पातिव्रत-धर्म ही था। उन्हें सब जगह रामचन्द्र जी का प्रतिबिम्ब नजर आता था। परन्तु शैव्या के सामने दो धर्म हैं। एक तो पातिव्रत-धर्म पालन करना तथा दूसरा अध्यापक का काम बजाना। इनमें से किसी एक ही पर वह ध्यान देती है तो अपना कर्त्तव्य भूलती है।

अध्यापक के लड़के स्वादिष्ट चीजों को खाते हैं। रोहिताश्व उन्हें देख ललचता है। अध्यापक-स्त्री शैव्या को नाना तरह की यातनाएँ देती है। उस पर वह धीरज धारण कर सब कुछ सह लेती है। उस समय में भी उसे अपने स्वामी की बात नहीं भूलती।

एकलौते पुत्र को साँप काटता है। वह मर जाता है। शैव्या का चिराग एक-ब-एक बुझ जाता है। शैव्या का छाती पीट-पीट

कर रोना स्वाभाविक है। अध्यापक की स्त्री शैव्या को शव घर से बाहर करने को बोधित करती है। कफन के लिए कपड़ा भी नहीं देती है। शैव्या विवश होकर लाश लेकर श्मशान की ओर चल देती है पर अध्यापक की स्त्री के लिए मुँह पर भी अपशब्द तथा कटु वाक्य नहीं लाती हैं। यहाँ तक कि अपना पति भी बिना कर लिए हुए शव को नहीं जलाने देता। ऐसे समय एक स्त्री का दिल कैसा करता होगा। मगर सब कुछ शैव्या धीरज-पूर्वक सहती गई।

नाटककार ने उसे ऐसा करुणा-पूर्ण बनाया है कि आँखों में आँसू आ जाते हैं। जो कुछ राजा हरिश्चन्द्र अपनी प्रतिज्ञा के लिये कर सकते हैं वह रानी शैव्या पति की प्रसन्नता के लिए कर सकती है। अगर शैव्या-सी अनुगामिनी राजा हरिश्चन्द्र को नहीं मिली होती तो शायद हरिश्चन्द्र अपनी प्रतिज्ञा नहीं पालन कर सकते।

रोहिताश्व

रोहिताश्व राजा और रानी का एकलौता पुत्र है। उनके बुरे दिन के लिए एक मात्र सहारा है। यह एक भोला बालक है। माँ-बाप की तकलीफों की इसे अभी कुछ खबर नहीं है। इसके लिए घर और बन बराबर है। जहाँ माँ-बाप रहते हैं वहीं

इसका घर है। मगर ऐसा निरीह और भोला बालक भी विश्वामित्र के क्रोध से नहीं बचता है पर वह इसकी परवाह कब करता है। माँ-बाप पर रोज नए-नए दुःख पड़ते हैं। पर वे इसका कुछ नहीं बिगाड़ते। इसके भोलेपन को इनकी परवाह नहीं है। माँ-बाप की नई-नई परिस्थितियों में उसे नए-नए आनन्द मिलते हैं। वह अपने दिन आनन्द प्रमोद में बिताता है। यही नहीं, बल्कि परिस्थति-विशेष की बदौलत माँ-बाप को जितने दुखःदायी कामों को करना पड़ता है रोहिताश्व उन्हें कुतूहलमय नकल करता है। वह एक तमाशा-सा खड़ा कर देता है। काशी बाजार में सिर पर तृण रख कर राजा हरिश्चन्द्र और शैव्या अपने को वेचने के लिए फेरी देते हैं तो रोहिताश्व भी अपनी तोतली बोली से कहता है "आम को बी कोई मोल ले तो बला उपकाल हो" अपने जाने तो रोहिताश्व एक तमाशा खड़ा करता है मगर इन बातों की चोट माँ-बाप के दिल-पर कैसी पड़ती होगी। क्या वे अपने अनमोल रत्न को कभी वेच सकते हैं ?

कभी-कभी तो रोहिताश्व की बदौलत राजा हरिश्चन्द्र को अहद तकलीफ भी होती है, क्योंकि मनुष्य किसी तरह की तकलीफ स्वयं सह सकता है मगर वह अपने आश्रित जनों को दुःखी नहीं देख सकता। साथ साथ यह बात भी है कि रोहिताश्व अगर नहीं रहता तो हरिश्चन्द्र की सत्य-निष्ठा की जाँच उतनी अच्छी तरह शायद नहीं हो सकती थी ?

———

विश्वामित्र

राजा हरिश्चन्द्र के प्रताप से राजा इंद्र भयभीत हो गया था। सुना जाता है कि ईश्वर की दया से इंद्रलोक का राज्य उसी व्यक्ति को मिलता है जो ब्रह्माण्ड में सब से बड़ा पुण्यात्मा होता है। राजा हरिश्चंद्र उन दिनों सबसे बढ़ा-चढ़ा पुण्यात्मा था। ऐसी दशा में इंद्र को उसके पुण्य-प्रताप से डरना स्वाभाविक ही था। अपने स्वार्थ-साधन वश किसी से द्वेष करना पुरानी परिपाटी ही चली आती है।

परंतु बाबा विश्वामित्र से क्यों द्वेष हुआ यह बात स्पष्ट है। विशेषता तो यह है कि हरिश्चंद्र के प्रति उनका क्रोध देख कर राजा इन्द्र ने भी खूब अच्छी तरह उन्हें बहकाया। उसके बहकावे में पड़कर विश्वामित्र अपनी साधू प्रकृति के विरुद्ध आग-बबूला हो गए।

उनका क्रोध अकारण और अन्यायपूर्ण था। अपने क्रोध के आवेश में राजा हरिश्चंद्र से स्वप्न में राज्य छल कर उन्होंने राजा के साथ न केवल अन्याय किया था बल्कि अपने तपोबल का दुरुपयोग भी किया था। बार-बार उन्होंने राजा को कटु वाक्य कहे थे। यद्यपि उसके आदर्श और अनुकरणीय विचारों के आगे बार-बार उन्हें पराजित होना पड़ा पर तौभी उन्होंने बार-बार हरिश्चंद्र के वचन पर अविश्वास किया। समय-समय पर जो कटु बातें उन्होंने राजा हरिश्चंद्र को कहीं थीं वे एक तपस्वी के आचरण के विरुद्ध हैं।

राजा ने कभी भी विश्वामित्र को मौका नहीं दिया कि उनकी कटुवादिता की संसार में बड़ाईं हो। राजा ने विनय के साथ बार-बार उनके क्रोध को शाँत करने की कोशिश की थी पर अपना परिश्रम असफल होता देख वे उसकी विनय-शीलता पर कुछ भी ख्याल न कर के और भी भड़कते थे। जब राजा को वे दक्षिणा चुकाने के लिए एक महीने की अवधि दे चुके तब उस अवधिके भीतर ही दक्षिणा के लिये राजा को तग करने का हक उन महात्मा को बिलकुल नहीं था। इंद्र का तो हरिश्चंद्र के साथ द्वेष में स्वार्थ साधन था पर विश्वामित्र ने राजा के साथ व्यर्थ का रोष कर संसार का अमित्र बनकर अपना नाम सार्थक किया। बार-बार शाप की धमकी दे दे कर राजा को डराकर उन्होंने अपनी तपस्या पर अलकतरा मालिश किया।

एक बार उन्होंने राजा की महानुभावता की बड़ाई की थी। जब राजा हरिश्चंद्रने उनसे पैरों पड़कर प्रार्थनाकी कि मुझे चण्डाल होने से बचावें और मुझे स्वयं अपना दास बना लें तब विश्वामित्र ने कहा था कि "तपस्वी खुद ही अपना दास होते हैं।" इन बातों के कहने में उनको कुछ भी लाज नहीं आई। राजा को चण्डाल के यहाँ बिकवाकर और उसका काम करने की प्रतिज्ञा कराकर ही उनकी वेचैनी शाँत हुई। इतने पर भी उनकी क्रोध-तपश्चर्या पूरी नहीं हुई। बालक रोहिताश्व की भी जान ली गई। अंत में राजा हरिश्चंद्र अपनी कड़ी परीक्षा में उत्तीर्ण हुए।

यह बात ठीक है कि राजा हरिश्चंद्र को राज-पाट, धन, स्त्री, पुत्र सभी कुछ पीछे मिले। भगवान का दर्शन भी प्राप्त हुआ।

वे इन कारणों से विश्वामित्र के दुर्व्यवहारों को भले ही भला मान, जाने के बाद स्वर्ग में भी उनका उपकार ही मानें, पर नाटक के पढ़ने वाले को तृप्ति नहीं होती। विश्वामित्र चाहे जैसे ऋषि हों हरिश्चन्द्र के साथ उनके कपट और क्रूर व्यवहार से उनके प्रति हमारी सहानुभूति नहीं होती, उनके कठोर व्यवहार से घृणा होती है। हमको तो वे घोर दण्ड के भागी जान पड़ते हैं। उनको ऐसा कपट और क्रूर कर्म करने का कोई दण्ड नहीं मिलता। उनको उचित दण्ड नहीं मिलने के कारण चित्त में संतोष नहीं होता।

इन्द्र

इन्द्र सुरपति हैं। महाकवि गो॰ तुलसीदास के शब्दों में वे स्वार्थी तथा इर्षालु हैं; वे किसी दूसरे व्यक्ति की उन्नति, विभूति आदि कुछ भी नहीं देख सकते हैं—'ऊँच निवास नीच करतूती, देखि न सकहिं पराइ विभूती',—'काक समान पाकरिपु रीती, छली मलीन कतहुँ न प्रतीती।' इतना ही नहीं, स्वयं इन्द्र ने भी तो अपने मुख से कहा है—"हमारे ऐसे बड़े-बड़े पदाधिकारियों को शत्रु उतना संताप नहीं देते, जितना दूसरों की संपत्ति और कीर्ति।" नाटककार भारतेन्दु ने इन्द्र को नाटक में स्थान देकर रोचकता ला दी है यह उनकी प्रतिभा का परिचायक है। 'इन्द्र'

आधुनिक 'बड़े बाबू' की तरह चित्रित किया गया है, इस चरित्रांकन द्वारा एक मीठी चुटकी ली गई है। नाटककार ने 'इन्द्रत्व की ओर विशेष लक्ष्य न रख कर इन्द्र का निरूपण एक ईर्षालु धनी के रूप में किया है'।

यों तो इन्द्र देवताओं का राजा है परन्तु उसका कार्य गर्हित और नीच है। उसे अपने पद का अधिक लोभ है, उसे सर्वदा यह भय बना रहता है कि कोई व्यक्ति अपने धर्माचरण द्वारा उसका पद न छीन ले। इसीलिए वह दूसरे का उत्कर्ष नहीं देख सकता। अतः उसके विचार संकीर्ण हैं। वह स्वभाव से ईर्षालु है। वह अपने सम्मुख किसी भी व्यक्ति का यश और प्रशंसा नहीं सुनना चाहता क्योंकि वह कठोर, स्वार्थी और ईर्षालु है। इन्द्र के चरित्र में जो दोष आ गए हैं, वे स्वाभाविक हैं। यह कोई अनहोनी बात नहीं है। पुराणों में भी इन्द्र का चरित्र ईर्षालु रहा है।

नाटक के प्रथम अंक में ही इन्द्र नारद के मुख से राजा हरिश्चन्द्र की दानशीलता एवं सत्यवादिता का गुणगान सुनता है। उसके दान और धर्म की प्रशंसा सुनकर इन्द्र का हृदय द्वेष और ईर्षा से भर उठता है। इसीलिए वह सन्देह करता है कि 'यदि कोई अपने चित्त से बाहर माँगे या ऐसी वस्तु माँगे जिससे दाता की सर्वस्व हानि हो तो वह दे कि नहीं?' सुतरां, यह स्पष्ट होता है कि इन्द्र अपने समान ही संकीर्ण हृदयवाला व्यक्ति राजा हरिचन्द्र को भी समझता है। राजा हरिश्चन्द्र की परीक्षा लेने के लिए वह तुल जाता है। इन्द्र की दृष्टि में राजा हरिश्चन्द्र शत्रु हो जाता है और उसे

सत्य-भ्रष्ट करने के लिए षड़यन्त्र सोचता है। नारद इन्द्र को यह विश्वास भी दिलाते हैं कि वह स्वर्ग-प्राप्ति की आकाँक्षा नहीं करता फिर भी इन्द्र के हृदय को संतोष नहीं होता। इन्द्रकी हार्दिक दुर्बलता एवं संकीर्णता के कारण उसकी ईर्ष्या तीव्रतर होती जाती हैं। नारद मुँह देखी बात नहीं कहते हैं। नारद सत्यवादी हैं, इसीलिए उनके बचन सुन इन्द्र के हृदय को ठेस पहुँचती है। जब इन्द्र राजा हरिश्चन्द्र के वैयक्तिक चरित्र में कोई बुराई नहीं पाता है तो वह उनके गृह चरित्र के संबंध में प्रश्न करना आरंभ कर देता है। फिर इस दृष्टि से भी राजा हरिश्चन्द्र के चरित्र में कोई दोष नजर नहीं आते हैं। अंत में वह इस बात पर उतारू हो जाता है कि किसी भी तरह उसके चरित्र में दोष अवश्य निकल आवे।

इन्द्र इर्षालु ही नहीं अपितु चालाक भी है। परीक्षा लेने के हेतु वह राजा हरिश्चन्द्र को सत्य-भ्रष्ट करने के लिए नारद को उभारना चाहता है पर नारद के सम्मुख उसकी दाल नहीं गलती है तब वह अपनी बात बदल देता है और कहता है—'भला मैं ऐसी परीक्षा थोड़े लेना चाहता हूँ जिससे उन्हें कष्ट हो।

इन्द्र देवराज हैं फिर भी अपने अधिकार को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये उसका इर्ष्या करना अनुचित नहीं कहा जा सकता। संसार के प्रायः सभी व्यक्ति ऐसा किया करते हैं। वह नारद के मुख से उसका गुप्त भेद लेना चाहता है। इन्द्र पारखी भी है। वह मनुष्यों की प्रकृति को भलि-भाँति परख सकता है। बात की बात में वह दूसरे के हृदय की बातों को ताड़ जाता है और

नारद को अपूर्व हठी समझ लेता है। वह इस तथ्य से पूर्णतया परिचित हो जाता है कि नारद से उसका काम न हो सकेगा। अंत में हरिश्चन्द्र का अनिष्ट करने के लिए वह विश्वामित्र को अनुकूल पाता है। स्वार्थवश वह उनकी खुशामद भी करता है और बड़ी चालाकी से राजा हरिश्चन्द्र के प्रति क्रोधी ब्राह्मण के क्रोध को भड़काता है। वह कहता है--'भला सत्यधर्म पालन करना क्या हँसी खेल है। यह आप जैसे महात्माओं का ही काम है जिन्होंने घर-बार छोड़ दिया'। इन्द्र सिर्फ कूटनीतिज्ञ ही नहीं है बल्कि उसमें वाक-पटुता भी है। वह अपनी वाक्-पटुता के कारण ही अपने कपट-जाल में विश्वामित्र को फँसा कर, उनके मुख से यह प्रतिज्ञा करवा लेता है कि 'जो हरिश्चंद्र की तेजो भ्रष्ट न किया तो मेरा नाम विश्वामित्र नहीं'।

अत में जब राजा हरिश्चंद्र सत्य की कसौटी पर खरे उतरते हैं तब वह यह कहता है कि यह सब कुछ उनकी कीर्ति को अमर बनाये रखने के लिए किया गया था। इतना ही नहीं, वह अपनी हार को भी स्वीकार करता है जो वस्तुतः उसकी उदारता है। इस प्रकार नाटककार ने इंद्र के चरित्र का उद्घाटन सुंदर ढग से किया है।

नारद

'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक में नारदजी का चरित्रांकन एक स्पष्ट वक्ता, गुणग्राही एवं साधु के रूप हुआ है परंतु प्राचीन युग के ग्रंथों में घुमक्कड़ और कलही कहे गए हैं। लेकिन इस नाटक में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने उनके चरित्र को एक सात्विक साधु के रूप में चित्रित किया है। इतना होने पर भी उनकी घुमक्कड़ी-वृत्ति इस नाटक में भी परिलक्षित होती है।

नारदजी घुमक्कड़ हैं। वे घूमते-फिरते इंद्र की राज सभा में पहुँचते हैं और आते-ही बात-बात में राजा हरिश्चंद्र का गुण-गान करने लगते हैं। इंद्र ईर्षालु हैं ही वे दूसरे की उन्नति देखना कतई पसंद नहीं करते इसीलिए वे नारद के मुख से हरिश्चंद्र के अवगुणों एव उसकी बुराइयों को सुनना चाहते हैं। पर नारद हमेशा उनके चरित्र को आदर्श ही बतलाते हैं। सभी तरह से, घुमा फिरा कर इन्द्र नारद से राजा हरिश्चंद्र की त्रुटियों को पूछना चाहते हैं पर उनका स्वार्थ नहीं सधता है। अंत में नारद इन्द्र को फटकारते हैं। उन्होंने इन्द्र को एक उपयुक्त उत्तर दिया और उस उत्तर में महात्मा और दुरात्मा की एक आदर्श परिभाषा दी जिस के द्वारा उन्होंने इन्द्र का दुरात्मा सिद्ध कर दिखाया। नारदजी राजा हरिश्चंद्र के सत्-गुणों से प्रभावित हैं इसीलिए वे इन्द्र की नीच बुद्धि पर क्रुद्ध हो जाते हैं और राजा की दृष्टि में इन्द्र-सिंहासन तथा अप्सराओं को तुच्छ सिद्ध कर

दिखाते हैं। नारद मानव-हृदय की वृत्तियों के पारखी हैं। वे इन्द्र की मनोवृत्तियों को अच्छी तरह जानते थे, इसीलिए उनके सामने उसकी दाल नहीं गली। इतना ही नहीं, विश्वामित्र के आगमन पर यथोचित शिष्टाचार के अनन्तर वे शीघ्र ही चल पड़ते हैं क्योंकि वे इस तथ्य से पूर्णतया परिचित हैं कि इन्द्र और विश्वामित्र दोनों एक ही कोटि के हैं। नारद आडम्बर हीन एवं ईर्षालु व्यक्ति के कट्टर बिरोधी हैं। उन्हें किसी भी व्यक्ति की परवाह नहीं क्योंकि स्वयं स्पष्ट एवं सत्य व्यक्ता हैं। इन्द्र-सभा से चलते समय उन्होंने इंद्र को सचेत करते हुए कहा था— 'याद रहे, अधिकार पाकर कष्ट देना यह बड़ों की शोभा नहीं, सुख देना शोभा है'। वस्तुतः कलहप्रियता की भावना को त्याग कर एक साधु की दृष्टि से इनका चरित्र अत्यंत ही सुंदर उतर पड़ा है।



सत्यहरिश्चन्द्र नाटक की कथा का आधार

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सत्य हरिश्चन्द्र की रचना सम्वत् १९३२ में की थी। यह सर्व प्रथम 'काशी पत्रिका' में प्रकाशित हुआ था। श्रीयुत बालेश्वर प्रसाद जी के अनुरोध पर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने बालकोपयोगी नाटक 'सत्य हरिश्चन्द्र' की रचना की।

यों तो 'सत्यहरिश्चन्द्र' नाटक की गणना मौलिक नाटकों में की जाती है परन्तु विद्वानों ने यह प्रमाणित कर दिखाया है कि यह नाटक आर्य क्षेमीश्वर के 'चण्ड कौशिक' नामक संस्कृत नाटक के आधार पर लिखा गया है। भारतेन्दुजी ने नाटक के आरंभ में उपक्रम लिखा है जिसमें उन्होंने यह बतलाया है कि राजा महिपाल के समय में आर्य क्षेमीश्वर का बनाया हुआ चण्डकौशिक नामक नाटक है पर यह नहीं बतलाया है कि प्रस्तुत नाटक की रचना इसी चण्डकौशिक' के आधार पर की गई है। उन्होंने एक जगह कें 'फुटनोट्स' में सिर्फ यह लिखा है कि इसमें जितने भी श्लोक हैं, वे सब के सब आर्य क्षेमीश्वर के बनाये 'चण्डकौशिक' से उद्धृत किए गए है'। इतना लिख देने से कोई भी व्यक्ति यह नहीं समझ सकता है कि यह नाटक उसी के आधार पर लिखा गया है। लेकिन दोनों नाटकों को मिलाकर देखा जाय तो यह साफ-साफ जाहिर हो जायगा कि प्रस्तुत नाटक उसी संस्कृत नाटक पर आधारित है। इसका यह तात्पर्य्य नहीं है कि सम्पूर्ण नाटक उसी 'चण्डकौशिक' का अनुवाद है बल्कि यहाँ पर यह दिखलाया जाता है कि इसका कितना अंश मौलिक और कितना उसका अनुवाद है।

'सत्यहरिश्चन्द्र' की समस्त कथा आर्य क्षेमीश्वरकृत 'चण्डकौशिक' से ही ली गई है, पर कहीं-कहीं परिवर्तन भी कर दिया गया है। इस नाटक के आरंभ में प्रस्तावना तथा प्रथमांक भारतेन्दु की कल्पना का परिणाम है। इसके दूसरे अंक की कथा चण्ड-कौशिक नाटक पर आधारित है लेकिन उसमें बहुत बड़ा अदल-

बदल कर दिया गया है। 'चण्डकौशिक' में राजा हरिश्चन्द्र महाविद्याओं की पुकार सुन कर उनकी विश्वामित्र से रक्षा करते हैं। इससे विश्वामित्र क्रुद्ध हो उठते हैं और पृथ्वी का दान लेकर उन्हें क्षमा करते हैं परन्तु भारतेन्दु कृत नाटक में राजा हरिश्चन्द्र स्वप्न में मह विद्याओं की रक्षा करते हैं और विश्वामित्र को पृथ्वी दान करने की प्रतिज्ञा करत हैं। इससे कथा में एक चमत्कार आ जाता है वह यह कि राजा इतना सत्यवादी है कि वह स्वप्न में कही हुई बात को भी झूठा नहीं होने देता है। यह एक उच्चकोटि का आदर्श है। कथा की दृष्टि से दोनों में यही अन्तर है। इसमें "जातिस्वयं ग्रहण" तथा "अन्नत्रयादिषु" श्लोक चण्डकौशिक नाटक के हैं। इसके अलावे, इस अंक के कुछ स्थलों की पंक्तियां चण्डकौशिक' नाटक की पंक्तियों के अनुवाद हैं। "वेचिदेहि दारा………" दाहा भी आधारित ही है। अन्य बातों के सजाने में कथा-वस्तु के परिवर्तन के कारण कल्पना से काम लिया गया है। 'भैरव राग' में प्रभात का वर्णन भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की कल्पना का परिणाम है।

'अंकावतार' भी 'चण्डकौशिक' नाटक के तृतीयांक के 'प्रवेशक' का अनुकरण ही है। 'चण्डकौशिक' में 'पाप पुरुष' और 'भंगीगण' हैं तो 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक में 'पाप' और 'भैरव' नाम के दो पात्र हैं। 'प्रवेशक' में जिन-जिन बातों का उल्लेख है वे ही इसमें भी हैं, सिर्फ शब्दावली एवं भावों में परिवर्तन किया गया है। इसकी कुछ पंक्तियाँ भी अनुवादित हैं।

तृतीयांक तो ज्यादातर अनुवाद ही है। इस अंक की कथा के आरंभिक अंश कुछ नाटककार के लिखे हुए हैं, नहीं तो सभी अनुवाद मात्र हैं। इसके संवाद में कहीं-कहीं परिवर्तन भी हुआ है और पदों का अनुवाद गद्य मे कर दिया गया है ।

इसके बाद 'चण्डकौशिक' में दो अंक और है (याने ४ और ५) परन्तु इसमें सिर्फ चार अंक हैं। इसमें दोनों अंकों की सामग्री का उपयोग किया गया है। नाटक के अंत में सिर्फ उन्होंने अपनी कल्पना का सहारा लेकर जहाँ तहाँ कुछ पद्य और गद्य बढ़ाया है। इस अंक के लिखने में भारतेन्दु की कल्पना की मात्रा अधिक है। इस बढ़ाये हुए अंशों में 'सोई मुख' वाला पद, पिशाचिनियों का कौतूहल, शैव्या का विलाप आदि है। इसके अलावे और भी स्थानों में परिवर्तन कर दिखाये गए हैं।

अतएव कहने का तात्पर्य यह है कि प्रस्तुत नाटक आर्य क्षेमीश्वर कृत 'चण्डकौशिक' के आधार पर ही लिखा गया है। ऊपर यह दिखला दिया गया है कि इसका कितना अंश अनुवाद है और कितना अंश मौलिक है ;

'चण्डकौशिक' के अलावे भी उन्होंने 'प्रबन्ध शतक' 'देवी भागवत महापुराण के सप्तम स्कन्ध' आदि की भी सहायता ली है। भले ही आप इस नाटक को मौलिक न कहे फिर भी तत्कालीन परिस्थिति को देखते हुए हमें कहना पड़ेगा कि जिस जमाने में लोग यह भी नहीं जानते थे कि नाटक किस चिड़िया का नाम है उस समय इतना सुन्दर नाटक प्रस्तुत कर भारतेन्दु ने अपनी प्रतिभा का सुन्दर परिचय दिया।

यह हमने स्वीकार किया है कि उनके इस नाटक पर बहुतों की छाया है फिर भी 'सत्य हरिश्चन्द्र' कलाहीन नहीं हो पाया।

'सत्यहरिश्चन्द्र' की नाट्यकला

भारतेन्दु के समय से ही मौलिक नाटकों का श्री गणेश होता है। यों तो उनके पूर्व देव के 'देवमाया प्रपंच', नेवाज कृत 'शकुन्तला नाटक'; उनके पिता गिरिधर दास लिखित 'नहुष' नाटक आदि प्रकाशित हो चुके थे, फिर भी उन नाटकों में मौलिकता नाम की चीज थी ही नहीं, वे तो अनुवाद मात्र ही थे। कहने का तात्पर्य्य है कि वे कहने के लिए नाटक थे। उन नाटकों में नाटकीय तत्वों का नितान्त अभाव था। भारतेन्दु की प्रेरणा से बहुत लोगों ने नाटकों का प्रणयन करना आरंभ कर दिया और बहुतों ने लिखा भी। भारतेन्दु के संबंध में ये जो बातें कही गई हैं, वे बहुत अंशो में सत्य हैं। रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण' के 'चन्द्रकला', 'भानुकुमार' या बदरी नारायण चौधरी 'प्रेम घन' के भारत-सौभाग्य जैसे बड़े नाटकों का तो एक-दो दिन में अभिनय होना बिल्कुल ही असंभव था। केशवराम भट्ट और तोता राम आदि के नाटकों की भी दशा कुछ ऐसी ही रही। इन सब नाटकों में असंभव दृश्यों की योजना काफी तौर से रही। भारतेन्दु-युग

के लिखित नाटकों में निवासदास का 'रणधीर' और 'प्रेममोहिनी' तथा राधाकृष्ण दास का 'महाराणा प्रताप' सफल अधिक रहा फिर भी दोषों का जमघट रहा ही। सत्य पूछा जाय तो भारतेन्दु ने नाटक के तत्वों का एक अलग सिद्धान्त रक्खा और उसे निभाने की चेष्टा की। यह उनके प्रत्येक नाटक में देखने को मिलेगा।

भारतेन्दु को नाट्यशास्त्र का समुचित ज्ञान था और उन्होंने उसका उपयोग भी किया। भारतीय नाट्यशास्त्र के नियमों के पालन में वे सर्वदा दत्तचित्त रहे और किया भी। इसका यह मतलब नहीं कि उन्होंने पाश्चात्य सिद्धान्तों की अवहेलना की। भारतेन्दु ने नाट्य रचना के संबंध में जो कुछ लिखा है, वह ध्यान देने योग्य है—

'नाट्य कला-कौशल दिखाने को देश-काल और पात्र-गण के प्रति विशेष रूप से दृष्टि रखनी उचित है। पूर्व काल में लोकातीत असंभव कार्य की अवतारणा सभ्यगण को जैसी हृदयग्राहिणी होती थी, वर्तमान काल में नहीं होती। अब नाटकादि दृश्य काव्य में अस्वाभाविक सामग्री परिपोषक काव्य सहृदय सभ्य मण्डली को नितान्त अरुचिकर है। इसलिये स्वाभाविक रचना ही इस काल के सभ्यगण को हृदयग्राहिणी है। इसमें अब अलौकिक विषय का आश्रय करके नाटकादि दृश्य काव्य प्रणयन करना उचित नहीं है। अब नाटक में कहीं 'आशी' प्रभृति नाटयालंकार, कहीं 'प्रकरी, कहीं 'विलोचन, कहीं 'संफेट'; कहीं 'पंचसंधि' आदि ऐसे ही अन्य विषयों की कोई आवश्यकता नहीं रही। संस्कृत नाटक की भांति हिन्दी नाटक में इनका अनुसंधान करना, या

किसी नाटकांग में इसको यत्नपूर्वक भरकर हिन्दी नाटक लिखना व्यर्थ है'।

वस्तुतः भारतेन्दुजी द्वारा कही गई बात यथार्थ है और यह स्वीकार करना पड़ता है कि भारतीय प्राचीन पद्धति के अध्ययन एव मनन से आज के युग में भी श्रेष्ठ नाटक के प्रणयन में अधिक सहायता हस्तगत होती है।

भारतेन्दु ने बाह्य रूप पर ही अपना अधिक ध्यान दिया क्योंकि नाटक साहित्य का आरंभ उसी समय से हुआ था।

भारतवर्ष में नाट्यशास्त्र पर सबसे पहला प्राचीनतम प्राप्त ग्रन्थ भरतमुनि का है, यद्यपि पाणिनि के व्याकरण में नाट्यशास्त्र के दो आचार्यों—शिलालिन्द और कृशाश्व का नाम आया है, परन्तु उनका कोई भी ग्रन्थ प्राप्त नहीं है। इस दृश्य काव्य को अर्थात नाटक को प्राचीन आचार्यों ने रूपक की संज्ञा प्रदान की है। उसके दो भेद हैं—रूपक और उपरूपक। रूपक के दस भेद हैं और उपरूपक के अठारह। ये जो भेद किये गये हैं वे तीन आधारों पर अवलम्बित हैं और वे त्रिशेष अंग हैं—वस्तु, नायक और रस। भारतीय नाट्यकला के कुछ विशेष सिद्धान्त हैं, जिसके आधार पर भारतीय आचार्यों ने अपने नाटकों का निर्माण किया है। 'साहित्य दर्पण' के अनुसार नाटक के निम्न लक्षण हैं—

नाटक की कथावस्तु प्रख्यात (Traditional) होनी चाहिये। इसमें पांच सन्धियां रहनी चाहिये और वे हैं—मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण। इसमें विलास, समृद्धि आदि गुणों और अनेक प्रकार के ऐश्वर्य का वर्णन हो। इसमें सुख दुःख की

उत्पत्ति दिखलायी जाय और प्रत्येक रस से अन्वित हो। इसमें पांच से लेकर दस अंक हो। नाटक का नायक एक ऐसा व्यक्ति हो, जो दिव्य अथवा दिव्यादिव (अर्थात् जो दिव्य होने पर भी अपने को मानव ही समझे जैसे श्री रामचन्द्रजी) अथवा नामांकित वंश का कोई गुणवान धीरोदात्त राजर्षि हो। नाटक में वीर या शृंगार रस की प्रधानता हो और अन्य रस गौण हों पर निर्वहण सन्धि सद्भुत रस होना चाहिये। कार्य-व्यापार की सिद्धि के लिए चार या पाँच पात्र मुख्यतः चेष्टाशील रहें और नाटक के अंक उत्तरोत्तर 'गोपुच्छाग्र' की भांति छोटे होते जायँ। ❀

इस प्रकार प्रत्येक रूपक के तीन आवश्यक तत्व कथावस्तु, नायक-नायकादि पात्रगण तथा रस माने गए हैं। नाट्य-कला पर पश्चिम का सर्वप्रथम ग्रन्थ यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तू कृत 'पोइटिक्स' (Poetics) है। अरस्तू ने नाटक के छः तत्व माने हैं और ये हैं—कथावस्तु, पात्र, कथोपकथन, भावावेग, साज-सज्जा और संगीत। ❀यहाँ पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि जिस प्रकार भरतमुनि ने वस्तु, नेता और रस की प्रधानता दी है उसी प्रकार अरस्तू ने भी वस्तु (Plot) पात्र (Character) भावावेग अर्थात् रस (Thought) इन्हीं तीनों को मुख्य माना है। +

❀ नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात्पञ्चसंधिसमन्वितम्।
विलासर्द्ध्यादिगुणवद्युक्तं नाना विभूतिभिः॥
सुखदुःखसमुद्भूति नाना रसनिरन्तरम्।
पञ्चादिका दशपरास्तत्रांङ्काः परिकीर्तिताः॥

नाटक के आख्यान को वस्तु कहते हैं जो आधिकारिक और प्रासंगिक दो प्रकार की होती है ; मूल कथा को आधिकारिक एवं गौण कथा को प्रासंगिक कहते हैं। आधिकारिक कथा वह है जिसमें प्रधान पात्रों से सम्बन्ध रखने वाली कथा का मुख्य विषय हो। १—प्रासंगिक कथावस्तु का उद्देश्य आधिकारिक कथावस्तु की सौंदर्यवृद्धि करना और उसकी गति बढ़ाने में सहायता करना होता है। २ कथावस्तु को अपने अभीष्ट तक पहुँचाने वाले चमत्कार पूर्ण अंशों (Elements of Plot) को अर्थ-प्रकृति कहते हैं और वे हैं (क) बीज ३ में आरंभ पाते हैं, (ख) विन्दु ४ में बीज का अंकुर पाते हैं, (ग) पताका ५ जो

प्रख्यात वंशो राजर्षिर्धीरोदात्तः प्रतापवान् ।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान्नायकोमतः ॥
एक एव भवेदङ्गी श्रृंगारो वीर एव वा ।
अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुतः ॥
चत्वारः पञ्च वा मुख्याः कार्यव्यापृत पूरुषाः ।
गोपुच्छाग्र समाग्रं तु बन्धनं तस्य कीर्तितम् ॥

(साहित्य दर्पण—६-७-११)

❀ Every tragedy, therefore, must have six parts, which parts, determine its qual!ty—namely, plot, character Diction, Thought, Spectacle, Song,

The plot is, then, the first principle and' as it were, the soue of tragedy, character holds the second place. The third in order is thought.

—Poetics, page 25.

अधिकारिक के विकास में सहायता या बाधा देते हुए बराबर कभी कभी अंत तक चलती रहती है (घ) प्रकरी ६ जो साधारण तथा थोड़े समय के लिए काम में लाई जाती है और जिसका मुख्य पात्रों से कोई सम्बन्ध नहीं रहता, और (ङ) कार्य ७ जिसकी सिद्धि के लिए सब उपाय किए गए हों। इन्हीं के अनुरूप नाटक में व्यापार-शृंखला की पांच अवस्थाएँ (Stages of deveeopment) होती हैं (क) आरंभ ८ जिसमें फल प्राप्ति की उत्कंठा होती है (ख) प्रयत्न ९ जिसमें फलप्राप्ति के लिए कुछ उद्योग होता है। (ग) प्राप्त्याशा प्राप्ति संभव १० जिसमें सफलता की संभावना या आशा हो यद्यपि साथ ही विफलता की आशंका भी बनी रहती है। (घ) नियताप्ति ११ जिसमें संभावना या आशा निश्चय में बदल जाती है। और (ङ) फलागम १२ जिसमें सफलता प्राप्त हो जाती है। योरोपीय समीक्षा शास्त्र में भी इसी प्रकार की पाँच अवस्थाएँ मानी गई हैं। वे है—(क) व्याख्या (Exposition or Initial incident) (ख) विकास (Grouth or Rising action) (ग) चरम सीमा (Climax) (घ) निर्वहण अथवा निगति (Denouncement)

१ अधिकारः फलस्वाम्यमधिकारोच तत्-प्रभुः
तन्निवर्त्यमभिव्यापि वृत्तं स्यादधिकारिकं।

२ प्रासंगिकं परार्थस्य स्वार्थो यस्य प्रसंगतः।

३ स्वल्प मात्रं समुत्सृष्टं बहुधा यद्विसर्पति, फलावसानं।

४ प्रयोजनानां विच्छेदे यदविच्छेदकारणम्। यावत्समाप्तिर्बन्धस्य॥

५-६ सानुबन्धं पताकाख्यं प्रकरी च प्रदेशभाक्।

७ यावदधिकारिकं वृत्त तदर्थोपसमारं भ॥

और (ङ) परिणाम (Catastrophe)। ऊपर निवेदित पाँच अवस्थाएँ जब विकासोन्मुख रहती हैं तब कथानक के प्रधान एवं गौण अंशों का मेल मिलाने के लिए संधियाँ होती हैं, जो अवस्थाओं के अनुसार पाँच हैं-(क) मुख (ख) प्रतिमुख (ग) गर्भ (घ) विमर्श या अवमर्श (ङ) निर्वहण या उपसंहार। ये सन्धियाँ एक एक अवस्था की समाप्ति तक चलती हैं और उनके अनुकूल अर्थप्रकृतियों से योग कराती हैं। अभिनय की दृष्टि से समस्त वस्तु के दो विभाग हैं—(क) दृश्य, जो बातें रसादिसंयुक्त मधुर हों, वे अभिनय के समय रंगमंच पर प्रदर्शित किए जायँ (ख) सूच्य जो अंस नीरस एवं किसी कारण अनुचित हो जैसे युद्ध, बध, मृत्यु आदि, उसकी सिर्फ सूचना मात्र दे दी जाए। अभिनय में नायक या नायिका की मृत्यु का दिखलाना या सूचना देना बिल्कुल निषेध है।

नाटक में प्रायः पाँच से दस अंक तक रहा करते हैं। जहाँ तक हो सके, प्रत्येक अंक एक ही दिन की घटना तक परिमित रहे और वह भी एक ही कृत्य के सम्बन्ध में। एक घटना से दूसरी घटना का संबन्ध होना अनिवार्य है। अंकों को इतना सम्बद्ध होना चाहिये कि जिसमें एक घटना दूसरी घटना से साधारणतः

---

८ औत्सुक्य मात्रामारंभो फललाभय भूयस।

९ प्रयत्नस्तु तदप्राप्ती व्यापारोऽतत्वरान्वितः।

१० उपायापायशङ्काभ्यां प्राप्त्याशा प्राप्ति संभवः।

११ अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिः सुनिश्चिता।

१२ [illegible]

निकलती हुई जान पड़े। अंको में वस्तु विन्यास सम्यक् रीति से होना चाहिये। एक अंक दूसरे अंक के ऐसे पूरक हों कि उनके बीच के समय की घटनाओं का उल्लेख ही न हो। नाटककार इसमें कुशल रहे कि उसे यह बतलाने की आवश्यकता प्रतीत न हो कि बीच में कितना समय बीता है। प्रायः दो अंकों के मध्य में एक वर्ष तक का समय अन्तर्हित रहता है। अगर उसके बीच समय का अंतर हो तो उसकी सूचना देने के लिए पाँच प्रकार के दृश्यों का विधान किया है जिसे अर्थोपक्षेपक कहते हैं और वे हैं--विष्कम्भक, प्रवेशक, चूलिका, अंकास्य, और अंकावतार।

नाटक की कथावस्तु कथोपकथन अथवा संवाद के रूप में रहती है और इसी के आधार पर उसके तीन विभाग किए गए हैं-(१) श्राव्य (जो सब सुन सकते हैं) (२) अश्राव्य (जो दूसरे पात्रों को सुनने के लिए न हो, जिसे Soliloque कहते हैं) और (३) नियत श्राव्य (जो कुछ पात्रों के सुनने के लिए हो और कुछ के लिए न हो, जिसे Aside कहते हैं)। नियत श्राव्य के भी दो भेद होते हैं—(i) अपवारित और (ii) जनांतिक। अपवारित छिपी हुई बात का नाम हैं और जनांतिक दो पात्रों का गुप्त संभाषण।

किसी नाटक का अभिनय आरंभ करने के पहले कुछ कृत्य किये जाने का शास्त्रीय विधान है, उसी को पूर्वरंग या प्रस्तावना (Preliminary or prologue) कहते हैं। नगाड़ा बजाकर अभिनय के आरंभ होने की सूचना दी जाती थी और नान्दी-पाठ होता है। इसके अनन्तर सूत्रधार आकर मंगल का श्लोक

पढ़ता है और प्रस्तावना में परिपार्श्वक, विदुषक या नट से बात-चित कर नाटक और नाटककार का परिचय देकर नाटक आरंभ कराता है। प्रस्तावना पाँच प्रकार की है—कथोद्धात, प्रवर्तक, उद्धात्यक, प्रयोगातिशय और अवगलित।

कथावस्तु के सम्बंध में अरस्तू ने लिखा है कि—

'नाटक मनुष्य का नहीं, किंतु उसके जीवन की कृति का अनुकरण है। जीवन कृतिमय है। जीवन का अंतिम ध्येय उसकी विशेष प्रकार की कृति हैं, न कि उसका गुण। मानव-चरित्र उसके गुणों से बनता है, परन्तु मनुष्य का सुख-दुःख उसकी कृति पर निर्भर है। अतः नाटक चरित्र का अनुकरण करने के लिये कृति का अनुकरण नहीं करता, परन्तु कृति के अनुकरण के अन्तर्गत चरित्र का अनुकरण आ जाता है। इस प्रकार नाटक का अंतिम ध्येय कृति एवं कथानक है और अंतिम ध्येय यही महत्व की बात हैं'।

इस प्रकार हमलोग देखते हैं कि भारतीय एवं पश्चिमी नाटकों के सिद्धांतों में बहुत बड़ा साम्य है और इन दोनों के बीच जो अंतर है, वह यह कि भारतीय नाटकों का एक मात्र उद्देश्य है—आनंद की प्राप्ति और यूरोपीय नाटकों के मूल में संघर्ष है, इसीलिए वहां के नाटक प्रायः दुखांत होते हैं।

कथावस्तु और उसका विश्लेषण—

भारतेन्दु के सत्य हरिश्चंद्र नाटक की समीक्षा करने के पूर्व उनके सिद्धांतों को दृष्टिपथ में रखना अत्यावश्यक है। उन्होंने न तो संस्कृत के नाट्यशास्त्र के सिद्धांतों पर और न पाश्चात्य-

नाट्य-सिद्धांत के आधार पर प्रस्तुत नाटक की रचना की बल्कि उनका यह नाटक स्वतंत्र-पद्धति पर लिखा गया है। वे नाटकीय तत्वों से पूर्णतया परिचित थे परंतु अपनी विवेचना-शक्ति के अधार पर नाटक का प्रणयन किया। उनका यह नाटक आर्य-संस्कृति का परिचायक है। इसमें सत्य हरिश्चन्द्र के तत्कालीन समाज का वास्तविक चित्र खींचा गया है। इस नाटक का विषय है—सत्यपालन। इस सत्यपालन का आर्य संस्कृति मेंबहुत बड़ा महत्व है। इसके साथ ही साथ, इसमें नारी आदर्श का एक जीता-जागता उदाहरण प्रस्तुत किया है। उस नारी-आदर्श की प्रतिभा है—रानी शैव्या। वह एक सम्राज्ञी है फिर भी उस में पातिव्रत्य, वात्सल्य एवं कर्त्तव्य की त्रिवेणी है।

हमने यह प्रमाणित कर दिखाया है कि 'सत्यहरिश्चन्द्र' नाटक की रचना का मूलाधार प्रमेश्वर कृत 'चण्ड कौशिक' है, फिर इस में मौलिकता नाम की चीज विद्यमान है। 'चण्ड कौशिक' में जो निरर्थक स्थल आए हैं, उन्हें नाटककार भारतेन्दु ने अपने नाटक से निकाल रखा है। इन निरर्थक स्थलों में—बनेचर द्वारा सूअर का गुणगान राजा और सूत के द्वारा आश्रम का वर्णन हरिश्चन्द्र के पथप्रदर्शक के रूप में दो चाण्डालों का वर्णन और विदूषक आदि हैं। इन स्थलों के हटाने के अनन्तर भारतेन्दु ने कुछ स्थल अपनी ओर से भी जोड़े हैं। जिनमें इन्दर सभा की बातें और महाविद्याओं आदि का वर्णन है। इन सब दृष्टियों से नाटक में मौलिकता आ गई है।

इस नाटक की कथा प्रागैतिहासिक है। इसका वर्णन विषय सामाजिक और सांस्कृतिक। इस नाटक के संगठन

में नाटककार ने अपनी बुद्धि का सहारा लिया है। यह नाटक अङ्कों में विभक्त होने के बाद दृश्यों में विभक्त नहीं है। अगर हम शास्त्रीय दृष्टि से इसको परखने की चेष्टा करें तो निराश होना पड़ेगा। इसमें आरंभ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम को खोज निकालना बिल्कुल असंभव है।

इसका आरंभ मंगलाचरण से होता है। इसके पश्चात् सूत्रधार और नटी का प्रवेश है। रंगमंच पर से उसके चले जाने के बाद प्रस्तावना की समाप्ति होती है। नाटक के प्रथम अंक में नारद और इन्द्र का संवाद है। इस संवाद में ही बीज अन्तर्निहित है। इससे राजा हरिश्चन्द्र के गुणों का वर्णन होता है जिसे सुन कर इन्द्र का हृदय ईर्षालु हो जाता है इसी ईर्ष्या के कारण वह क्रोधी विश्वामित्र के हृदय में चिनगारियाँ पैदा करता है। वे हरिश्चन्द्र के सत्य पथ से भ्रष्ट करने के लिए प्रण करते हैं। इस तरह नाटक के पहले अंक में ही कथानक की गति का आभास मिल जाता है। दूसरे अंक में भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं का पता स्वप्नों के द्वारा मिलता है। रानी ने 'महाराज को सारे अंग में भस्म लगाए देखा है और अपने को बालखोले, और रोहिताश्व को देखा है कि साँप काट गया है।' यह स्वप्न झूठा नहीं होकर सच्चा ही निकलता है और राजा हरिचन्द्र ने भी एक स्वप्न 'देखा है कि एक ब्राह्मण विद्या-साधन करने को सभी दिव्य महाविद्याओं को खींचता है।' राजा उन्हें बचाने के लिए जाते हैं। ब्राह्मण क्रोध से भर जाता है और राजा उसे प्रसन्न करने के लिए अपना समस्त राज्य सौंप देते हैं। यह भी स्वप्न सत्य बन जाता

है और घटनाएँ राजा के स्वप्न की तरह घटती हैं। तीसरे अंक में राजा हरिश्चन्द्र अपने सत्यपथ पर अविचल रूप से खड़े रहने की चेष्टा करते हैं। अपनी स्त्री तथा अपने आप को बेचकर दक्षिणा चुकाते हैं। चौथे अंक में राजा हरिश्चन्द्र की अन्तिम परीक्षा होती है। रानी शैव्या अपने मृतक पुत्र को लेकर श्मशान पर पहुँचती है। उसके हृदय-विदार रूदन से पेड़ के पत्ते तक भी अश्रुधारा बहाते हैं तो राजा हरिश्चन्द्र का दुःखी होना बिल्कुल स्वाभाविक है। फिर भी वे अपने कर्त्तव्य को नहीं भूलते हैं। शैव्या से राजा हरिश्चन्द्र कफन माँगते हैं और वह भी मृतक पुत्र के कफन से। अंत में वे अपने कर्त्तव्य पर खरे उतरते हैं और नाटक की समाप्ति सुखमय होती है।

वस्तुतः नाटक की घटनाओं का विकास क्रमशः होता गया है। यह ठीक है कि वे नाट्यशास्त्र के अनुकूल भले ही न हो पर इनकी घटनामयी कलियाँ शृंखलाबद्ध हैं।

'सत्यहरिश्चन्द्र' नाटक के अंत उत्तरोत्तर बड़े होते गए हैं। यह एक दोष है फिर भी यह दोष नाटक की रोचकता के कारण छिप जाता है। भारतेन्दु का यह नाटक मनोरंजक, प्रभावोत्पादक और रसपूर्ण है।

चरित्र-चित्रण—

नाटक के पात्रों के चरित्र-चित्रण के लिए उपयुक्त कथनोपकथन एवं घटनाओं का होना बहुत जरूरी है। भारतेन्दु ने पात्रों के चरित्रांकन के लिए मुख्यतया कथनोपकथन का आश्रय ग्रहण किया

हैं और घटनाओं को गौण समझा है। इस नाटक के प्रथम अंक में नारद और इन्द्र के कथनोपकथन द्वारा राजा हरिश्चन्द्र के चरित्र पर आलोक डाला है। इससे राजा हरिश्चन्द्र का चरित्र उभर आया है और उसमें सजीवता भी आ गई है। इसके अनन्तर घटनाओं के कारण उनके चरित्र का स्वच्छ रूप दर्शकों के सम्मुख उपस्थित होता है। नाटक के अंत तक राजा का परीक्षा होती है फिर भी वह सफल होता जाता है। राजा का चरित्र उत्तरोतर चमकता ही गया है। नाटककार अपनी लेखनी रूपी छेनी के द्वारा पात्रों की प्रतिमा हम दर्शकों के सामने ला खड़ा करता है जिसका प्रभाव मानव-मस्तिष्क पर अमिट रहता है। ठीक वही बात इस नाटक के साथ लागू होती है।

भारतेन्दु के नाटक के पात्र परिवर्तनशील नहीं है बल्कि स्थिर (static) है। यह एक दोष है। जिस रूप में नाटककार आरंभ में अपने पात्रों को ले चलता है, वे उसी दशा में अंत तक रहते हैं। उदाहरण स्वरूप—राजा हरिश्चन्द्र को लीजिए। वह पहले एक सत्य प्रिय व्यक्ति और दानवीर के रूप में रहा है और पीछे भी। इसमें कोई भी परिवर्तन नहीं। इससे ऐसा जाहिर होता है कि नाटककार द्वारा निर्मित पात्र एक निश्चित लीक पर चल कर अपने गंतव्य स्थान पर पहुँच जाते हैं। हाँ, इस नाटक में विश्वामित्र ही एक ऐसे पात्र हैं जिनकी विचार धाराएँ घटनाओं के प्रवाह में बहती और बदलती हैं।

भारतेन्दु की चरित्रांकन-शैली में सजीवता और स्वाभाविकता कार्य करती रहती है। नाटककार द्वारा निर्मित पात्र जीते जागते

हैं परन्तु इस नाटक के राजा हरिश्चन्द्र मानवता की सामान्य भूमि से कुछ ऊपर उठे हैं। यह कुछ असाधारण पात्र है फिर भी वह अस्वाभाविक नहीं होने पाया है। 'आदर्श सत्यवीर सम्राट के सभी कार्य आदर्श हैं। अपने को दान में असमर्थ पाकर उस दानवीर को कितनी मार्मिक पीड़ा होती है यह एक ही वाक्य में कितनी सुन्दरता के साथ दिखला दिया गया हैं। जब रोहिताश्व काल के गाल में जा बैठता है तब उनके हृदय में वेदना, निराश एवं क्षोभ का तूफान उठ खड़ा होता है, जो बिल्कुल स्वाभाविक है। यथा—

"आह! मुझसे बढ़कर और कौन मंदभाग्य होगा। राज्य गया, धन जन कुटुम्ब सब छूटा, उस पर भी यह दारुण पुत्रशोक उपस्थित हुआ। भला अब क्या मुँह दिखाऊँ? निस्सदेह मुझसे अधिक अभागा और कौन होगा? न जाने हमारे किस जन्म के पाप उदय हुए हैं। जो कुछ हमने आज तक किया, वह यदि पुण्य होता, तो हमें यह दुःख देखना न पड़ता। हमारा धर्म का का अभिमान सब झूठा था, क्योंकि कलियुग नहीं है कि अच्छा करते बुरा फल मिले। निस्संदेह मैं महाअभागा और बड़ा पापी हूँ।"

कुछ लोगों का विचार है कि चरित्र-चित्र की दृष्टि से संस्कृत नाटककारों में जो गुण हैं; वही भारतेन्दुजी में भी (वह भी विशेषकर राजा हरिश्चन्द्र के चरित्र-चित्रण में)। सजीवता, स्वाभाविकता तथा पूर्णता की दृष्टि से विश्वामित्र का चरित्र सुन्दर बन पड़ा है।

चरित्र-चित्रण के लिए नाटककार प्रायः चार नाटकीय उपादानों का सहारा लेता है, वे हैं—

क—पात्रों की उक्तियाँ।

ख—अन्य पात्रों के कथोपकथन और स्वगतोक्तियाँ।

ग—उनका स्वगत-भाषण

घ—निजी कार्य-व्यापार।

इन सभी उपादानों के द्वारा नाटककार भारतेन्दु ने अपने पात्रों का चरित्र-चित्रण किया है। नारद और इन्द्र के कथनोपकथन द्वारा राजा हरिश्चन्द्र के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है। इन्द्र ने अपने हृदय की भावनाओं की अभिव्यक्ति स्वगत-कथन (Soliloquies) द्वारा की है। विश्वामित्र ने भी स्वगतोक्तियों के द्वारा अपना वास्तविक रूप दर्शकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है। आकाश-भाषित के सहारे राजा ने काशी के बाजार में अपनी मनोगत भावनाओं की अभिव्यक्ति की है—

"हरिश्चन्द्र—भला किसी तरह मुनि से प्राण बचे। अब चलें अपना शरीर बेचकर दक्षिणा देने का उपाय सोंचे……(ऊपर देखकर) क्या कहा? "क्यों तुम ऐसा दुष्ट कर्म करते हो?" आर्य यह मत पूछो, यह सब कर्म की गति है। (ऊपर देखकर) तुम क्या कर सकते हो, क्या समझते हो और किस तरह रहोगे?" इसका क्या पूछना है। स्वामी जो कहेगा वही करेंगे, समझते सब कुछ हैं, पर इस अवसर पर समझना कुछ काम नहीं आता, और जैसे स्वामी रखेगा वैसे रहेंगे।……"

पात्रों में सजीवता एवं स्वाभिकता रखने के लिए नाटककार भारतेन्दु ने पात्रोचित भाषा का भी काफी प्रयोग किया है। 'सत्यहरिश्चन्द्र' नाटक में बालक रोहिताश्व ने 'भी' को 'बी' और 'ह' को 'ल' कि कहा है—इससे नाटक में स्वाभाविकता आ गई है।

कथोपकथन

नाटककार कथोपकथन के सहारे ही पात्रों के चरित्र की गूढ़ मनोवृत्तियों का उद्घाटन करता है। नाटक की रोचकता इसी पर अवलंवित रहती हैं। 'सत्यहरिश्चन्द्र' एक इति वृत्तात्मक नाटक है। इसमें पात्रों में राजा हरिश्चन्द्र, रानी शैव्या और विश्वामित्र हैं परन्तु इन सभी पात्रों के चरित्र में आदि से अंत तक सरसता है। कोई परिवर्तन नही। सिर्फ विश्वामित्र का चरित्र घटनाओं पर परिवर्तित होता गया है। 'सत्यहरिश्चन्द्र' नाटक में कथोपकथन से चरित्र-चित्रण में कोई विशेष उल्लेखनीय सहायता नही मिली है।

नाटककार भारतेन्दु ने पात्रों के स्वभाव के अनुकूल कथनोपकथन रखा है। अगर पात्र दुष्ट है तो उसका कथनोपकथन भी उसी प्रकार है और सज्जन है तो उसमें सज्जनता की गंध है। उदाहरण स्वरूप विश्वामित्र और राजा हरिश्चन्द्र का कथनोपकथन देखिये—

"हरि—(आदरपूर्वक आगे से लेकर और प्रणाम करके) महाराज! पधारिये, यह आसन है।

विश्वा—बैठ! बैठें चुके, बोल अभी तैंने मुझे पहिचाना कि नहीं?

हरि--महाराज पूर्वपरिचित तो आप ज्ञात होते हैं।

विश्वा--(क्रोध से) सच है रे क्षत्रियाधम! तू काहे को पहिचानेगा। सच है रे सूर्यकुल कलंक! तू क्यों पहिचानेगा; धिक्कार है तेरे मिथ्या धर्माभिमान को, ऐसे ही लोग पृथ्वी को अपने बोझ से दबाते हैं। अरे दुष्ट! तैं भूल गया, कल पृथ्वी किसको दान दी थी? जानता नहीं कि मैं कौन हूँ?"

इस नाटक का चतुर्थ अंक श्मशान-वर्णन और हरिश्चन्द्र प्रलाप से भरा हुआ है—इससे दर्शक का मन ऊब जाता है। इसमें स्थान-स्थान पर उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपकों का लटका लगा हुआ है। लोग का मन इसे सुनकर ऊब जाता है। नाटक में गंगा का वर्णन भी अस्वाभाविक और अरोचक हैं। आकाशभाषित का प्रयोग इसी लिए होता है कि नाटक में पात्रों की संख्या नहीं बढ़ जाय। इस नाटक में भी आकाशभाषित है।

भारतेन्दु के कथनोपकथन में रस-संचार की अद्भुत शक्ति है। रस के अनुसार ही वे पात्रों का सृजन करते हैं। इसमें करुण-रस की प्रधानता है। रोहिताश्व की मृत्यु के अनन्तर राजा हरिश्चन्द्र और शैव्या का विलाप हृदय-विदारक है। वस्तुतः यह विलाप बड़ा ही करुण है।

देश-काल

नाटक में देश-काल का निर्वाह होना बहुत ही जरूरी है। इससे नाटक में एक जान आ जाती है। भारतेन्दु ने अपने नाटकों के लिए उस समाज का चित्र उपस्थित किया जिस समाज से वे

पूर्णतया परिचित थे। उनमें पर्य वेक्षण-शक्ति अधिक थी। इसीलिए अपने नाटक के अनुकूल समाज के आचार-विचार, उनकी रीति-नीति की बारीकियों से वे परिचय अवश्य प्राप्त कर लिया करते थे।

'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक एक पौराणिक आख्यान है। नाटक के प्रणयन-काल में उन्होंने उसकी पौराणिकता के निर्वाह के लिए स्तुत्य प्रयास किया उदाहरण स्वरूप हम देखते हैं कि "हरिश्चन्द्र काशी के बाजार में बिकते समय अपने मस्तक पर तृण धारण करते हैं, क्योंकि उक्त काल में जब कोई दास्य स्वीकार करता था तो उसे सिर पर तृण रखना पड़ता था। विश्वामित्र के द्वारा विश्वदेवा को शाप दिलाकर भी तत्कालीन वातावरण को कायम रखने की कोशिश की गई है। शिवजी के कील के हट जाने का कथन भी सम्भवतः इसी अभिप्राय से हुआ है।"

भारतेन्दु के नाटकों के देश-काल दोष-पर विचार करते हुए यह कहा जा सकता है कि "भारतेन्दु जी साहित्य के रूढ़ि-ग्रस्त प्राचीन और प्रगतिवादी अर्वाचीन युग के सन्धि-प्रहर में आविर्भूत हुए थे। उनके सामने प्राचीनता के उपासक और थियेट्रिकल ढंग के हल्के खेल-कौतुक से प्रभावित दर्शक दोनों मौजूद थे। पौराणिक तथा प्राचीन पात्रों को यथा संभव आधुनिक वस्त्र पहिनता तथा उनकी रंगभूमि को आधुनिक रंग में रंग कर और अर्वाचीन नाटकों में यथा संभव परम्परागत अलौकिकता का समावेश कर भारतेन्दुजी ने अपने समय के दर्शकों की दोनों मण्डलियों को एक ही साथ संतुष्ट करना चाहा। किन्तु यदि हम भारतेन्दु के

भक्त होते हुए भी भक्त की अतिशयोक्ति पूर्ण भावुकता के प्रवाह में न बहें', तो हमें यह मानना पड़ेगा कि यदपि इन प्रयासों के कारण भारतेन्दुजी दर्शकों के बीच में खूब प्रसिद्ध और प्रशंसित हुए, तथापि इन्हीं प्रयत्नों के कारण उनकी कला में देश-काल-दोष के कुछ काले धब्बे भी आ गए हैं। 'सत्यहरिश्चन्द्र' के पौराणिक वायुमण्डल में आज की काशी बसाई गई है, उसके पार्श्व में गंगा की धारा बहाई गयी है। नाटककार को यह पुराण प्रसिद्ध बात याद ही न रही कि हरिश्चन्द्र के बाद उन्हीं के वंशज भगीरथ गंगा को पृथ्वी पर लाये थे और इसीलिए उसका नाम भगीरथी पड़ा। फिर हरिश्चन्द्र के समय में काशी की पार्श्ववर्ती गंगा कहाँ से आई ? इतिहास की इस भूल के कारण 'सत्यहरिश्चन्द्र' का यह स्थल अनैतिहासिकता के दोष(Historical Mochronit)) से आक्रान्त हो गया हैं, किन्तु प्राचीन काल में चण्डालों की कुल देवी चण्डकात्यायनी थीं फलमती तो इस काल में उनकी कुलदेवी हैं। अब जरा परिधान की परीक्षा लीजिए। इन्द्र 'जामा' पहिने हैं, द्वारपाल छुज्जेद, पगड़ी, चपकन, छेरदार पा जामा पहने और कमर बन्द कसे हैं, हरिश्चन्द्र जामा, पाजामा, कमरबन्द, पहने और दुशाला या कोई चमकता रूमाल ओढ़े आते हैं और राजा के परिकर में प्रथम मंत्री नीमा, पाजामा, कमरबन्द, दुशाला, पगड़ी, सिरपेच सजे हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानों मुसलमानी दरबार शाही तैयारी की जा रही हो। पुराण-युग के पुरुषों को इस रूप में खड़ा करना वास्तव में देशकाल की अनुचित उपेक्षा करना है"। २

१-२—भारतेन्दु और उनके नाटक, पृ०सं० ७१। ७५-६

भाषा-शैली

भारतेन्दु के पहले गद्य की भाषा स्थिर नहीं हुई थी। उनके सम्मुख दो भाषाएँ खड़ी थी—एक संस्कृत की क्लिष्ट पदावलियों से भरी भाषाएँ और दूसरी अरबी-फारसी के अप्रचलित शब्दों से। परन्तु भारतेन्दु ने उन दोनों से एक न्यारी भाषा को गद्य के व्यवहार के लिए लाया, वह थी जनसाधारण की भाषा। इसी जन-भाषा पर उनकी भाषा-शैली अवलम्बित है। भारतेन्दु की भाषा में माधुर्य और कोमलता है। उन्होंने अपनी रचनाओं में तत्सम् शब्दों को त्यागकर तद्भव शब्दों का प्रयोग अधिक किया है। इतना ही नहीं, देशज शब्द भी उनकी कृतियों में आए हैं। उनके नाटक में मुहावरों एवं लोकोक्तियों की चटपटाहट नहीं मिलेगी परन्तु इसका यह तात्पर्य्य नहीं कि उनकी भाषा लचड़ और कमजोर है बल्कि तत्कालीन काल को दृष्टिपथ में रखते हुए हमें कहना पड़ता है कि उनकी भाषा प्रौढ़ है।

नाटककार तो भारतेन्दु थे ही, पर साथ-साथ वे एक अच्छे कवि भी। जब उनके हृदय में भावों का तूफान उठता था तब कविता बोलने लगती थी तुरत ही रचनाओं में एक रस उमड़ आता था। भावों की प्रबलता के कारण उनकी शैली शक्तिपूर्ण बन जाती थी; जैसे—

"अहा! स्थिरता किसी की भी नहीं है। जो सूर्य उदय होते ही पद्मिनीबल्लभ और लौकिक वैदिक दोनों कर्म का प्रवर्तक था, जो दो पहर तक अपना प्रचण्ड प्रताप क्षण-क्षण बढ़ाता गया,

जो गगनांगन का दीपक और काल-सर्प का सिखामणि था वह इस समय पर कटे गिद्ध की भाँति अपना सब तेज गवां कर देखो समुद्र में गिरा चाहता है।"

भावों के अनुरूप उनकी पद-योजना भी रहा करती है, इसका दृष्टान्त विश्वामित्र के कथन में है—

"सच है रे क्षत्रियाधम! तू काहे को पहिचानेगा, सच है रे सूर्यकुल कलंक! तू क्यों पहिचानेगा, धिक्कार है तेरे मिथ्या-धर्म्माभिमान को, ऐसे ही लोग पृथ्वी को अपने बोझ से दबाते हैं। अरे दुष्ट, मैं कौन हूँ ?"

भारतेन्दु की शैली में सादगी तो है ही, पर वह सरस भी है। जनता की शैली होने के कारण वह नाटक रचना के लिए बिल्कुल उपयुक्त है। भारतेन्दु की भाषा पर व्रजभाषा की छाप है, इसके साथ-साथ उसमें अशुद्धियां भी हैं। "छापे की और लेखक की भी। पूर्वी भाषा के क्षेत्र में रहने के कारण बनारसी लेखक पश्चिमी खड़ी बोली कहीं-कहीं अशुद्ध लिख दिया करते हैं, ऐसा अब भी होता है, भारतेन्दु जी जिस समय हुए, उस समय उन्हें भाषा को परिष्कृत करना था उन्होंने भाषा को जो रूप दिया वही क्या कम है, उसमें यदि कहीं त्रुटियाँ मिलती भी हैं तो नगण्य हैं"।

उद्देश्य—

प्रत्येक कलाकार अपनी रचनाओं के द्वारा पाठक को संदेश देता है, एक सीख सिखाता है। भारतेन्दु ने भी अपने नाटक

के द्वारा एक संदेश दिया है, एक आदर्श प्रस्तुत किया है। नाटककार भारतेन्दु ने 'नाटक' शीर्षक निबन्ध में लिखा है कि—

"आजकल की सभ्यता के अनुसार नाटक-रचना में उद्देश्य-फल निकालना बहुत आवश्यक है। यह न होने से सभ्य शिष्टगण ग्रन्थ का तादृश आदर नहीं करते, अर्थात् नाटक पढ़ने या देखने से कोई शिक्षा मिले, जैसे सत्यहरिश्चन्द्र देखने से आर्य जाति की सत्य प्रतिज्ञा नीलदेवी से देश-स्नेह इत्यादि की शिक्षा मिलती है।.......नाटक के परिणाम से दर्शक और पाठक कोई उत्तम शिक्षा अवश्य पावें।"

भारतेन्दु भारतीय थे, इसलिए भारतीय-आदर्श को जीवित रखने के लिए सर्वदा प्रयत्नशील रहा करते थे। "चाहे जैसा भी अवसर हो और चाहे जिस प्रकार की रचना की आवश्यकता हो, भारतेन्दुजी अपने देश को नहीं भूलते, घूम फिर कर उन्हें उसके गौरव, वर्त्तमान हीनावस्था और भविष्य का ध्यान आ ही जाता है और ये तत्संबंधी अपने उद्गारों को रोक नहीं सकते।" इसीलिए उन्होंने इस नाटक के द्वारा हमारे सम्मुख एक संदेश भेजा है, वह यह कि जो इन्सान है, उसे सत्यपथ पर अटल रहना चाहिए, चाहे उस पर कितनी ही विपत्तियों का पहाड़ लद जाय।

रस—

यों तो शास्त्रीय दृष्टि से नाटक में शृंगार या वीर रस का होना अत्यन्त ही आवश्यक है। यह मानी हुई बात है कि प्रत्येक

नाटक में कोई न कोई रस अवश्य रहता है। "रस-प्रधानता के विचार से नाटक में करुण रस मुख्य रस के समकक्ष हो गया है। करुण-रस वीर रस का सहायक है चाहे उसकी व्यंजना कितने ही आधिक्य से क्यों न हुई हो। इस दृष्टि से नाटक प्रशंसनीय है।" इसमें हास्य रस का नितान्त अभाव है।

उपसंहार—

नाटक भले ही किसी प्राचीन नाटक पर आधारित हो, फिर भी मौलिकता टपकती ही है। इस नाटक की रचना का एक-मात्र कारण यह है कि उन्होंने बाबू बालेश्वर प्रसाद जी के अनुरोध पर बालोपयोगी नाटक लिख डाला, जो पूर्णतया यथार्थ है।



व्याख्या खण्ड

प्रस्तावना

(१) सत्यासक्त दयाल ।..........नृप कवि हरिश्चन्द्र (पृ० स० १)

प्रस्तुत दोहा सत्य हरिश्चन्द्र नाटक के मङ्गलाचरण से लिया गया है। मङ्गला पाठ में कवि प्रार्थना भी करता है। इसके शब्द शिलष्ट हैं इसलिये इसके पाँच अर्थ हैं। शिवजी राजा हरिश्चन्द्र, श्री कृष्ण, चन्द्रमा और कवि बाबू हरिश्चन्द्र इन पांचों का वर्णन कवि ने इस एक दोहे में कर दिया है।

शिवजी के पक्ष में—पार्वती के अनन्य प्रेमी दयालु और चन्द्रमा को चाहने वाले शिवजी हैं। ये पाप को दूर करने वाले, सुखों को प्रदान करने वाले, मनुष्यों की भलाई के लिये लक्ष्मी को त्याग करने वाले हैं। ऐसे शिवजी की जय हो। शिवजी के मस्तक पर चन्द्रमा की कला शोभती रहती है, ये आशुतोष हैं, वरदान देने में कोई देवता इनकी समता नहीं कर सकते, समुद्र से निकली लक्ष्मी को न लेकर संसार को दुख देने वाले विष का पान मनुष्यों की भलाई के लिये करना इन्हीं का काम था।

राजा हरिश्चन्द्र के पक्ष में—राजा हरिश्चन्द्र सत्य में लगे हुए हैं। ये दयालु और पाप या अधर्म को हरनेवाले हैं। राजा

मनुष्यों को सुख देने वाले और ब्राह्मण को प्रसन्न करने वाले हैं। ऐसे प्रजा की भलाई करने वाले, राज-पाट, धन-धान्य सब कुछ छोड़ने वाले दानी राजा हरिश्चन्द्र की जय हो।

श्री कृष्ण पक्ष में—श्री कृष्ण जी सत्यभामा में अनुरक्त हैं। ये दयालु और ब्राह्मणों की भलाई करने वाले हैं। ये संसार में लोगों के सुख का कारण और अघहर हैं। भक्तों के लिये ये राज-श्री त्याग करने वाले हैं। अर्थात् उग्रसेन को भगवान् ने कंस को मार कर मथुरा का राज्य दे दिया था। ऐसे श्री कृष्ण की जय हो।

चन्द्रमा के पक्ष में—चन्द्रमा सती अर्थात् रोहिनी (या गुरु पत्नी तारा) में आसक्त हैं। संसार के जीवों को अपनी शीतल रश्मियों से शीतल करते हैं यह उनकी दया है। ये द्विजराज हैं, फिर ब्राह्मणों के प्यारे क्यों न हों? चन्द्रमा पाप को नाश करने वाले हैं, संसारी जीवों के सुख की मूलभित्ती हैं। अपनी प्यारी चांदनी को छिटकाकर लोगों की भलाई करने वाले ऐसे चन्द्रमा की जय हो।

कवि पक्ष में—कवि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के पक्ष वाला अर्थ भी राजा के पक्ष वाले अर्थ से बड़ी समता रखता है। कवि भी राजा हरिश्चन्द्र की तरह अपनी सारी सम्पत्ति लोगों की भलाई में स्वाहा करने में सुख मानता है। ऐसे गुण और स्वभाववाले कवि की जय हो।

अलंकार—इस दोहे के सत्यासक्त, 'द्विज प्रिय' 'जनहित कमलातजन' शब्द के अधिक अर्थ हैं। इसलिये इस दोहे में श्लेषालङ्कार हुआ।

(२) धन्य है विद्या का प्रकाश..................गाल बजाना आता है। (पृ० स० १—२)

प्रस्तुत पंक्तियों में नाटककार ने सूत्रधार को रंगमंच पर लाकर उसके कथन के द्वारा दो बातों पर आलोक डाला है, वे हैं—नाटक की ओर तत्कालीन जनसाधारण की अरुचि तथा अंध-परम्परा में फँसे रहने के कारण सच्चे कलाकारों के प्रति उनकी उदासीनता।

कहने का तात्पर्य्य यह है कि भारतेन्दु-काल से ही साहित्य का वास्तविक आरंभ हुआ है। उनके पूर्व हिन्दी भाषा एवं उसके साहित्य की रेखाऐं धुंधली थीं। साहित्य को भारतेन्दु के उदय से एक नया प्रकाश मिला। उसके जन्म पहले लोग कला और रस से अनभिज्ञ थे। यथार्थ तो यह है कि उस समय की जनता 'नाटक' से बिल्कुल परिचित नहीं थी बल्कि भारतेन्दु के आगमन से लोग यह जानने लगे कि नाटक भी कोई चीज है भारतेन्दु के पहले नाटक का जन्म हुआ था अवश्य पर लोग जानते नहीं थे। भारतेन्दु ने ही इस चीज को जनता के सामने प्रस्तुत किया। उन्होंने बतलाया कि हिन्दी का सर्वप्रथम नाटक 'नहुष' है जिसे उनके पिता बाबू गोपालचन्दजी ने लिखा था। साहित्य का यह अंग (नाटक) उपेक्षित था, पर भारतेन्दु ने इस अभाव को पूरा किया। उनके प्रशंसनीय प्रयास के कारण ही नाटक जनता के बीच आ सका और वे देखने को उत्सुक हो गए। पहले वे ही लोग थे, जो 'नाटक' नाम की चीज से बिल्कुल अनभिज्ञ थे, पर आज रंगमंच पर नाटक देखने के लिए दर्शकों

की भीड़ जमा होने लगी। फिर भी दुःख की बात यह है कि जो लोग इस कला को विकास के पथ पर ले जा सकते थे, वे अंध-परम्परा में बुरी तरह से फँसे हुए थे। ये अभिमानी और बेपरवाह थे। वे सच्चे कलाकारों के प्रति उदासीन थे। उनकी दृष्टि में उनका कोई महत्व तथा गौरव नहीं था जो लोग उनकी, झूठी खुशामद या दिखावटी गुणगान किया करते, वे ही उनकी दृष्टि में योग्य व्यक्ति थे। उनके यहाँ ऐसे ही व्यक्तियों का मान और गौरव था।

(३) हाँ ! प्यारे हरिश्चंद्र·············कहानी रहजायगी
(पृ० स० ३)

ये पंक्तियाँ सत्य हरिश्चन्द्र नाटक के प्रस्तावना खण्ड से ली गई हैं। सूत्रधार ने आये दिन जनता को नाटक की रुचि का वर्णन किया है। फिर नटी सत्य - हरिश्चन्द्र नाटक खेलने के लिये कहती है। सूत्रधार बड़ी प्रसन्नता से इस नाटक का करुणापूर्ण और नवीनता को प्रकट करता है। इसका नाटककार भी कोई अदना आदमी नहीं है। नटी की श्रद्धा बाबू हरिश्चन्द्र पर अधिक है। केवल प्रसंग वस इनका नाम आ जाने पर नटी आहें भरने लगती है। संसार किसी वस्तु का असली मूल निर्धारित नहीं करता है। संसार ने इस अनोखे प्रतिभा वाले और अगाध प्रेमी जीव के गुण और रूप को समुचित पहिचाना ही नहीं। फिर इसकी कदर क्या करे? हरिश्चन्द्र की केवल कथा रह जायगी। लोग अगर आज उनको न पहिचान सकें तो आँखों में आँसू भर पीछे पछितायेंगे ही। बात भी यही हुई, नटी की बातें

अक्षरशः सत्य हुई। आज हिन्दी जगत् इस ३३ वर्षीय कवि की मृत्यु पर रोता है। केवल हरिश्चन्द्र की कहानी रह गई है।

(४)सब सज्जन के मान को.........कारन नित हरिश्चन्द्र।
(पृ०स०३)

यह दोहा सत्य-हरिश्चन्द्र के प्रस्तावना खण्ड से लिया गया है। नटी कवि हरिश्चन्द्र का नाम आने पर आहें भरती है। हरिश्चन्द्र को आज लोग भले ही नहीं पहिचानें पर पीछे उनको दुःख होगा। इसकी केवल कहानी मात्र रह जायगी। इस पर सूत्रधार काशी के पण्डितों की कही बातों को दुहराता है। जैसे दिन और रात होने का सहज कारण सूर्य और चन्द्रमा हैं वैसे ही सब सज्जनों के नित्य सम्मान का कारण एक हरिश्चन्द्र है। अर्थात् हरिश्चन्द्र के कारण से ही सब सज्जनों का यश और मान चारों ओर फैला है। कवि का इतना बड़ा व्यक्तित्व है।

अलंकार—

इस दोहे में 'हरिश्चन्द्र' शब्द में श्लेष है, इसलिए इस दोहे में श्लेषालंकार है। इसमें 'दृष्टान्त अलंकार' भी है क्योंकि सूय और चंद्रमा के दृष्टान्त द्वारा हरिश्चन्द्र की उत्कृष्टता बतलाई गई है।

(५) जो गुन नृप हरिश्चन्द्र......प्रतच्छ सुजान। (पृ० स० ४)

इस दोहे में सूत्रधार ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की तुलना दानी सम्राट हरिश्चन्द्र से की है। इसका अर्थ यह है कि संसार के

परोपकार के लिए जो अच्छे गुण राजा हरिश्चन्द्र में विद्यमान हैं, वे ही सब गुण भारतेन्दु हरिश्चन्द्र में भी हैं। राजा हरिश्चन्द्र के गुणों को तो हमलोग अपने कानों के द्वारा ही सुनते हैं। परन्तु हे सज्जनों। वे सब गुण भारतेन्दु हरिश्चन्द्र में प्रत्यक्ष ही देखे जाते हैं।

अलंकार—

इसमें 'प्रतीमालंकार' है क्योंकि इस दोह में उपमान और उपमेय की समता दिखलाई गई है।

(६) यहां सत्य भय……इन्द्र उर शोक। (पृ० स० ४)

प्रस्तुत दोहा नेपथ्य में कहा गया है। जब इस पृथ्वी पर अर्थात् इस संसार में किसी व्यक्ति की पुण्य-पताका लहराने लगती है तब इन्द्र का हृदय द्वेष से जर्जर होने लगता है। उसका हृदय अशान्त हो उठता है। वह भयभीत हो जाता है क्यों कि उसे अन्य सम्राटों की तरह यह भय बना रहता है कि कोई व्यक्ति अपने तपोबल द्वारा कहीं उसका राज्य-सिंहासन न छीन ले। अतएव जैसे ही सूत्रधार ने कवि हरिश्चन्द्र के गुणों की तुलना राजा हरिश्चन्द्र से की वैसे ही इन्द्र का हृदय उफनता हुआ सागर बन गया। उसमें भय का ज्वार-भाटा उठने लगा। इस दोहे का अर्थ यह है कि एक के (राजा हरिश्चन्द्र) सत्य के डर से समस्त देवलोक काँप उठा है तो भला यह दूसरा हरिश्चन्द्र कौन है, जो इन्द्र के हृदय में भय और शोक उत्पन्न कर रहा है।



प्रथम अंक

(७) सत्य की तो मानों"""हीनावस्था को प्राप्त होगी (पृ०स०७)

नारद के मुँह से राजा हरिश्चन्द्र की प्रशंसा सुनकर इन्द्र के हृदय में जलन पैदा हुई। वे मन ही मन इसका कारण सोचने लगे। नारद का कथन है कि इस पृथ्वी पर हरिश्चन्द्र के समान दूसरा कोई नहीं है। वह सत्य-प्रतिज्ञ है, सत्य की अप्रतिम प्रतिमा है। जब भारतवर्ष परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़े रहने के कारण हीनावस्था को पहुँच जायगा, उस समय भी हरिश्चन्द्र के समान महान पुरुषों के स्मरण से भी देश का गौरव कम नहीं होगा। नाटककार इस ओर संकेत करता है कि आज भी हमारा देश परतंत्र है जिसके कारण इसकी दशा दिनों-दिन बिगड़ती चली जा रही है फिर भी हरिश्चन्द्र जैसे महापुरुषों की जन्मभूमि होने के कारण अन्य देशों के समक्ष भारतवर्ष का गौरव अधिक है।

(८) अहा ! हृदय भी ईश्वर"""सम्पत्ति और कीर्ति। (पृ० स० ७)

ये पंक्तियाँ सत्य हरिश्चन्द्र नाटक के प्रथम अंक से ली गई हैं। इन्द्र को हरिश्चन्द्र की सत्यपरायणता और दानशीलता सता रही थी। उस पर नारद जी भी उसका ही गुणगान करते आ गये। छेड़ने पर तो राजा हरिश्चन्द्र के गुणों के वर्णन का तांता लग गया। नारद की बातें झूठ भी नहीं कही जा सकतीं। कारण ? ये संसार में कोने-कोने में घूमने वाले योगी हैं। इस पर इन्द्र मन-मसोसकर रह जाते हैं। वे आप-ही-आप कुछ

कहने लगते हैं। इन्द्र सचमुच बड़े हैं, उनका हृदय भी बड़ा है। परन्तु बड़े हृदय में ईर्ष्या भी बड़ी होती है। यद्यपि हृदय दूसरे के गुणों पर स्वभावतः 'लट्टू हो जाता है तो भी दूसरे की बड़ी कीर्ति पर क्षुब्ध भी कम नहीं होता है। इसकी बनावट ही विचित्र मसाले की है। इन्द्र सरीखे बड़े-बड़े लोग शत्रु से उतने दुखी नहीं होते जितने दूसरों के वैभव और यश को देख कर। जो जितना बड़ा है उसका हृदय भी उतना ही पर-धन और पर-कीर्ति पर जलता रहता है। इन्द्र को अपने हृदय की कमजोरी पर खुद ही क्षोभ है। पर; चूँकि यह बड़ा है, इसके हृदय में बड़ी ईर्ष्या उत्पन्न सहज ही हो जायगी, इतना ही सोचकर अपने को समझा लेता है। यहां इन्द्र का चरित्र मनुष्योचित कमजोरियों का शिकार है।

(६) शरीर में चरित्र ही……इसमें कोई सन्देह नहीं है। (पृ०स०८)

संसार के कोने-कोने की धूल छानने वाला नारद तुरत ही इन्द्र के मन की बातें समझ जाता है। फिर उनके भाव ताड़ जाने पर भी अपनी चुटीली बातों का सिल-सिला जारी रखता है। इन्द्र के पूछने पर नारद जी राजा का गृह-चरित्र वर्णन करने में एक आदर्श-गृहस्थ की तस्वीर खींच देते हैं। राजा का गृह -चरित्र उदाहरणीय है। चरित्र ही मनुष्य शरीर का सर्वस्व है। बोलने में उपदेशक कोई भले ही बन जाय! कामों से भले ही किसी की धार्मिकता टपक रही हो! लेकिन चरित्र की कमी होने पर सब गुड़ गोबर हो जायगा। उसकी कोई नहीं सुनेगा। ऐसे चरित्र-हीन की बातें खोखली समझी

जायँगी। इसकी कोई वजह नहीं समझी जायगी। यही अन्तर तो अच्छे और बुरे लोगों में है। अच्छे के मन, वचन और काम एक होते हैं। वे अच्छा ही सोचते हैं, अच्छा ही बोलते और करते भी हैं। दुष्ट लोग कहते कुछ और हैं और करते कुछ और फिर उनकी सोचने की बात कौन चलावे। लेकिन राजा सफल गृहस्थ है। यह सचमुच ही विचार वाला है। इसके विचार वस्तुतः महान् हैं। इसमें संकीर्णता की जगह नहीं है। नारद जी ने राजा का चरित्र बड़े उदार भाव से कहा है। इनका यह वर्णन सुनकर इन्द्र का ईर्ष्यालु हृदय तिलमिला जाता है।

(१०) महात्मा और दुरात्मा······कोई सन्देह नहीं। (पृ०स०८)
व्याख्या—ऊपर अंश को पढ़ें।

(११) जिसका भीतर बाहर··············बातें सहज हैं (पृ०स० ८)
[P.u. 1936A]

ये पंक्तियाँ सत्य हरिश्चन्द्र से ली गयी हैं। नारद जी ने राजा हरिश्चन्द्र का गृह-चरित्र बड़ा ही आदर्श रूप का वर्णन किया। लगे हाथ नारद जी ने हरिश्चन्द्र को उदार और महाशय भी कह दिया। इस पर इन्द्र के पूछने पर महाशय और उदार की व्याख्या इनको करनी पड़ती है। नारदजी जी तोड़कर राजा का गुणगान करने में नहीं चुकते। राजा उदार महाशय हैं। राजा का भीतर-बाहर एक-सा है। जो इसके हृदय में रहता है वही वह प्रगट करता है। यह खुला दिल है। यह विद्या प्रेमी है। दूसरों की भलाई करने में इसको

आनन्द आता है। राजा राजा है। इस पदवी के पाने पर भी बड़ा क्षमाशील है। लड़ाई में गम्भीरता, धन रहने पर भी अभिमान का न होना और दुःख आने पर धीरता से काम लेना आदि गुण राजा में स्वभावतः हैं। ऐसा मनुष्य सचमुच ही ईश्वर की सृष्टि का एक मात्र जवाहर है। ऐसे मनुष्य को उत्पन्न करने वाली माता सचमुच ही धन्य है। वही माता पुत्रवाली माँ कही जायगी। राजा इन गुणों के कारण महाशय व उदार हैं। किसी भी मनुष्य में इन गुणों का समावेश होने पर वह महाशय व उदार की पदवी पाने का अधिकारी हो सकता है। हरिश्चन्द्र में ये सब गुण स्वाभाविक हैं, बनावटी नहीं।

(१२) जो अपने निर्मल चरित्र……कामना से धर्माचरण करते हैं? (पृ० स० ११)।

ये पंक्तियाँ सत्य हरिश्चन्द्र नाटक से ली गई हैं। नारदजी ने हरिश्चन्द्र का सहज सा अभिमान वचन इन्द्र को सुनाया। फिर इन्द्र के हृदय में ईर्ष्या की ज्वाला भड़क उठी। बड़ी होशियारी से इस गुप्त ज्वाला को प्रतिशोध की कामना से दबाया। इन्द्र के पूछने पर नारदजी ने कहा कि स्वर्ग पाने की कामना से राजा ऐसा आदर्श जीवन नहीं बिता रहा है। नारद को आश्चर्य होता है कि कोई सचमुच ही बड़ा आदमी इस कामना से धर्माचरण कर सकता है। ऐसे लोग तो स्वर्ग को धर्म के आगे स्वर्ग का मूल्य ही नहीं आँकते। जो मनुष्य चरित्रवान है और जिसका चरित्र चाँदनी सा साफ है। वह स्वयं ही अपने चरित्र से भरा रहता है। उसके

इस सन्तुष्ट जीवन के आगे स्वर्ग की क्या बिसात ? फिर भी नारद के आश्चर्य की सीमा नहीं रहती है कि कोई शुद्ध हृदय वाला और अस्वाभाविक हरकत वाला आदर्श बड़ाई और स्वर्ग की लालच से धम का काम करेगा। संसार का विरागी सब जगह की खबर रखने वाला नारद को इन्द्र एक विचित्र जीव मालूम पड़ता है। स्वर्ग का लोभ और मान बड़ाई की इच्छा से कोई धार्मिक आचरण कर सकता है यह नारद के लिए पहेली है। सचमुच ही धर्म करने वाले निष्काम रहते हैं। यह नारद की धारणा है।

(१३) जिनको अपने किये शुभ..........तो महातुच्छ है।
(पृ० स० १२)।

ये पंक्तियाँ सत्य-हरिश्चन्द्र के प्रथम अङ्क से ली गई हैं। नारदजी को ताजुब होता है कि कोई स्वर्ग की इच्छा रखकर धर्माचरण कर सकता है। इन्द्र के पूछने पर कि राजा क्या स्वर्ग की वासना से ऐसा आदर्श-जीवन व्यतीत कर रहा है! नारदजी बिना विराम के बोलने लगते हैं। वे कहते हैं सच-मुच धर्म करने वाले लोगों के आगे स्वर्ग कुछ मूल्य नहीं रखता। इन मनुष्यों को अपने किये कर्मों से ही बहुत संतोष प्राप्त होता है। 'सन्तोषं परमं सुखम्' कहा भी है। इन्द्र का स्वर्ग जिसके अमृतपान और अप्सरा के नृत्यगान पर इन्द्र को अभिमान है, एक मामूली से भी मामूली वस्तु है। निष्काम धर्म करने वाले हरिश्चन्द्र सरीखे मनुष्यों में अगाध संतोष है। उस सन्तोषजनित आनन्द के आगे इन्द्र का अमृत और अप्सरा की क्या हैसियत। मुकाबला ही व्यर्थ है।

(१४) अहा ! बड़ा पद मिलने.........वही आदरणीय है
(पृ० स० १२)

व्याख्या—प्रस्तुत संदर्भ में नारदजी ने राजा हरिश्चन्द्र और इंद्र के पारस्परिक गुणों को दृष्टिपथ में रखते हुए यह प्रमाणित करने की चेष्टा की है कि यों तो पद की दृष्टि से इन्द्र राजा हरिश्चन्द्र से उच्चतर हैं फिर भी राजा हरिश्चन्द्र इन्द्र से बड़े हैं क्योंकि राजा हरिश्चन्द्र का हृदय उदार है। सच बात तो यह है कि कोई भी व्यक्ति बड़े पद पर प्रतिष्ठित होने के कारण महान नहीं हो सकता है बल्कि उदार हृदय का व्यक्ति बड़े पद पर प्रतिष्ठित होने वाले व्यक्ति से महान है। पद का बड़ा बड़ा (महान) व्यक्ति नहीं है बल्कि जो व्यक्ति चित्त का बड़ा है, वह ही महान है। बड़े पद धारण करने वालों के पास अधिकार अधिक होते हैं—इसमें कोई सन्देह नहीं, लेकिन इसका यह तात्पर्य्य नहीं कि अधिकार ही संसार में सबसे महान है। अगर अधिकारी के चित्त में क्षुद्रता भरी हो तो सम्पूर्ण अधिकार व्यर्थ तथा निरर्थक है, उसे कोई भी स्पष्ट कहने वाला व्यक्ति बड़ा नहीं कह सकता। वह कभी भी आदरका पात्र नहीं हो सकता बल्कि एक निर्धन व्यक्ति आदरणीय हो सकता है अगर उसका चित्त उदार हो। अगर इस दृष्टि से हम दोनों के गुणों की तुलना करेंगे तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि राजा हरिश्चन्द्र इन्द्र से महान् है क्योंकि उनमें सभी सद्गुण सहज रूप से विद्यमान हैं।

दूसरा अंक

(१५) श्लोक--स्वस्त्यस्तु ते कुशलमस्तु.........हरिभक्तिरस्तु (पृ० स० १७)

अर्थ---आपका भला हो, आप दीर्घायु हों, गौ, घोड़ा, हाथी, धनधान्य की वृद्धि हो, ऐश्वर्य हो, विजय हो शत्रु का विनाश हो और संतान वृद्धि के साथ-ही (आप में) ईश्वर की भक्ति हो।

छन्द --बसन्त तिलक वर्णवृत है। हर एक चरण में चौदह अक्षर हैं।

(१६) श्लोक---देवास्त्वाम भिषिञ्चन्तु.........ब्राह्मण वचनास्त्वय्यस्तु॥ (पृ० स० १७)

अर्थ---ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवता आपका अभिषेक अर्थात् मंगल करें (अभिषेक-कर्म के अंत में शान्ति के लिए स्नान करना) गँधर्व, किन्नर, नाग हमेशा आपकी रक्षा करें। पितर, गूह्यक, यक्ष, देवियाँ, भूत, (सप्त) माताएँ सब आपका अभिषेक (मंगल) और हमेशा रक्षण करें। आपका कल्याण हो, मंगल हो और महा लक्ष्मी प्रसन्न हों (ऐश्वर्य-संपन्न हो)। हे सती! आप अपने पति-पुत्र के साथ सौ वर्ष जीवित रहें।

छन्द---हर एक चरण में आठ अक्षर हैं। अनुष्टुप छन्द है। जो कुछ पाप, रोग और अमंगल है वह दूर हो जाय अर्थात आप के पास न आ सके। जो मंगल, शुभ, सौभाग्य, धन, धान्य, आरोग्य, बहुपुत्रत्व आदि (शुभ लक्षण एवं गुण) हैं वे सब ईश्वर (महादेव) की कृपा से और ब्राह्मण के वचन से आपको प्राप्त हों।

(१७) प्रगटहु रवि-कुल-रवि निसि……जन-भय-तम उनमूले। (पृ० स० १८)।

व्याख्या—प्रस्तुत गीत सत्यहरिश्चन्द्र नाटक में नेपथ्य में वैतालिको द्वारा गाये गए हैं। वे सब प्रातः काल में नियम के अनुसार महाराज हरिश्चन्द्र को जागाने के लिए उनका यशोगान कर स्तुति करते हैं। वे राजा हरिश्चन्द्र को सम्बोधित कर कहते हैं—

हे सूर्यवंश के सूर्य (अर्थात् राजा हरिश्चन्द्र) अब जगकर दर्शन दीजिए क्योंकि रात बीत गई। प्रजारूपी कमल समूह फल रहे हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि आपकी प्रजा आपका दर्शन पाकर प्रसन्न हो रही है। आपके शत्रु-गण ताराओं की तरह फीके हो गए, मन्द पड़ गए अर्थात् आपके जगने से वे लोग भाग खड़े हुए। आपकी प्रजाओं का भय रूपी अन्धकार नष्ट हो गया। इस दो चरणों में राजा हरिचन्द्र में सूर्य का आरोप किया गया है। इस लिए इसमें 'रूपक अलङ्कार' है।

(१८) नमेचोर लम्पट……कल रोर मचाओ॥ (पृ० स० १८)

अर्थ—संसार में आपका प्रताप फैला हुआ देखकर चोर लम्पट और दुष्ट भाग गए और मगध, बन्दी और सूत (आदि मंगन गायक) रूपी पक्षियों के समूह ने मिलकर मधुर-ध्वनि करना आरंभ कर दिया है अर्थात् वे सब आपका यशगान कर रहे हैं। इस दो चरणों में मगध, बन्द और सूत आदि मंगलायक पर प्रातः कालीन कलरव करने वाले पक्षियों के रूप का आरोप किया गया है, इसलिए यहाँ पर भी 'रूपक अलङ्कार' हुआ।

(१६) तुव जस शीतल पौन .... अङ्कुरिन चट अलियाँ।

(पृ० स० १८)।

व्याख्या—यह पद्य सत्यहरिश्चन्द्र नाटक के दूसरे अङ्क से लिया गया है। कवि राजा का वर्णन प्रातःकालीन सूर्योदय वर्णन के मिस करता है। कुछ वैतालिक सब राजा को सूर्यकुल का सूर्य कह कर सम्बोधित कर जागने का अनुरोध करते हैं। प्रातःकाल हो गया है। सबेरे की सभी सहज होने वाली बातें होने लगी हैं। राजा यशस्वी हैं। इस यश की प्राप्ति आतंक के द्वारा नहीं हुई है। इस में इसलिए शीतलता है। इस शीतल यश की हवा के छू जाने पर गुलाब की कलियाँ चटक कर खिलने लगीं। ऐसा प्रतीत होता है मानो शीतल हवा से अत्यन्त प्रसन्न होकर कली रूपी सखियाँ चुटकी बजा-बजा कर आशीशें दे रही हैं। राजा का सुयश जो दान और धर्मपूर्वक प्रजा पालन से प्राप्त हो रहा है उसका अनुभव कर सहेलियाँ सुख पाती हैं और चुटकी बजाती हैं। फिर इस राजा को आशीर्वाद देने में क्यों चूकें। यहाँ रूपक अलङ्कार है।

(२०) भये धरम में तिथि .... चक्रवाक अनुरागे ॥

(पृ० स० १८)

व्याख्या—यह पद्य सत्य-हरिश्चन्द्र के दूसरे अंक से लिया गया है। प्रातःकाल के वर्णन की ओट में राजा का वर्णन कवि को अभिष्ट है। सवेरा हो गया है। चिड़ियाँ जाग कर कलरव कर रही हैं, ठण्ढी हवा चलने लगी है और गुलाब की कलियाँ खिलने लगी हैं। ब्रह्म मुहूर्त में ब्राह्मण लोग जाग जाते

हैं। फिर वे अपने धर्माचरण में रत होने लगे और लोग भी अपने-अपने कामों में लग गये। सूर्योदय होने पर कर्मण्यता सी सब जगह छा गई। राजा का तेज सूरज के तेज की तरह है। शत्रुओं की स्त्रियों का मुख-मण्डल रात को खिलने वाली कुमुद की भाँति है। दिनमणि के आगमण से उनका मुख-मण्डल मलिन पड़ गया। कहने का मतलब है कि राजा के तेज से शत्रुओं का तेज प्रतिहत हुआ। चक्रवाक दिन में प्रसन्न होते हैं। यह उनका स्वभाव है। प्रातः होने पर सब राजा के सेवक चक्रवाक की तरह प्रसन्न हुए हैं। इसे कविता में रूपक अलंकार है।

(२१) अरघ सरिस उपहार.........परसि कर पो खौ।

(पृ० स० १६)

अर्थ—मनुष्य अर्ध्य देता है और सूर्य अपनी किरणों के सहारे एक ही भाव से सभी का पालन करता है वैसे ही आपके (अधीनस्थ) राजागण अर्ध्य (पूजा की सामग्री) के समान लेकर भेंट करने के लिए खड़े हैं। उन्हें सन्तुष्ट कीजिये। आप न्याय रूपी कृपा से अच्छे और बुरे को समान समझ कर अपने कर (हाथ और किरण) से उनका स्पर्श कर पालन कीजिए। तात्पर्य यह है कि आप अपने अधीनस्थ राजाओं के उपहार को स्पर्श कर उनकी रक्षा का भार स्वीकार कीजिए। इसमें रूपक अलंकार है और छन्द सार है जिसे ललित पद भी कहते हैं।

(२२) प्रिये हरिश्चन्द्र की अर्द्धांगिनी.........कौन प्रमाण है।

(पृ० स० २१)

व्याख्या—ये पंक्तियां सत्य-हरिश्चन्द्र नाटक के दूसरे अंक से ली गई हैं। राजा ने स्वप्न में अपना सारा राज्य एक ब्राह्मण को दे दिया है। राजा ब्राह्मण की थाती सौंपना चाहते हैं। वह ब्राह्मण कहाँ और कैसे मिलेगा यही राजा की चिन्ता का विषय है। रानी राजा की उदासीनता देख कर; नारि उचित सहज स्वभाव के कारण कहती है कि क्या राजा स्वप्न में दिये हुए दान को वस्तुतः दान कहेंगे? क्या स्वप्न के कार्य में भी सत्यता रखते हैं? इस पर राजा हरिश्चन्द्र रानी को प्रेम से फटकारते हैं। इस फटकार में भी राजा का दाम्पत्य-प्रेम का प्रभाव फूट पड़ता है। शैव्या उनकी अर्द्धाङ्गिनी है। प्यारी शैव्या को राजा की छाया होनी चाहिये। सत्य की परिधि राजा के लिये बड़ी विस्तृत है। रानी को कभी भी इसके विरुद्ध आवाज उठानी नहीं चाहिये। राजा ने स्वप्न देखा है। स्वप्न भी अपनी खास स्थिति रखता है। इसका कोई प्रमाण नहीं कि अपने समय में स्वप्न निमूर्ल है। सपने की सचाई पर सवाल करना ठीक नहीं। जब तक इसके विरुद्ध कोई जबर्दस्त प्रमाण नहीं है तब तक इसकी सचाई राजा मानेंगे ही।

(२३) श्लोक—जातिस्वयं ग्रहण दुर्ललितैकविप्रं......कौशिकं माम्॥ (पृ० स० २२)

अर्थ—स्वयं (क्षत्रिय से ब्राह्मण) जाति ग्रहण करने वाले हठी स्वभाव के ब्राह्मण, वशिष्ठ के अभिमानी (सौ) पुत्ररूपी बन को जलाने वाली अग्नि (स्वरूप जलाने वाले, नाश करने वाले), नई सृष्टि उत्पन्न करने के कारण डरे हुए जगत् के लिए यम के

समान, चाण्डाल रूप त्रिशंकु को यज्ञ कराने वाले, मुक्त विश्वामित्र को नहीं जानता है।

छन्द और अलंकार—छन्द् बसन्ततिलका और अलंकार उल्लेख है।

(२४) श्लोक—अन्नत्ययादिषु.........निधिं न वेत्ति ॥
(पृ० स० २३)

अर्थ—दुर्भिक्ष के दिनों में उस प्रकार की आत्मवृत्ति (जीविका) धारण करने वाले (विश्वामित्र ने अकाल के समय चाण्डाल के घर में कुत्ते के मांस से ही पेट पाला था), राजाओं के दान लेने के विरुद्ध, आड़ी (वसिष्ठ) और बगुले (विश्वामित्र) के युद्ध द्वारा जीवलोक के कंपाने वाले, तेज और तप के भण्डार आप (विश्वामित्र) को कौन नहीं जानता है (अर्थात् जब कोई जान्ता है) ?

छन्द—बसन्ततिलका छन्द है।

(२५) सच है रे, पाप, पाषंड............ग्रहण किया चाहती है
(पृ०स०२३)

व्याख्या—अयोध्या के राजा हरिश्चन्द्र स्वप्न में पृथ्वीदान एक अज्ञान ब्राह्मण को कर चुके हैं कि विश्वामित्र एका-एक आ धमके। राजा उनके उग्र स्वभाव से परिचित नहीं थे। उन्होने उन्हें सिर्फ पूर्व-परिचित-सा होना बतलाया। इस पर विश्वामित्र का क्रोध सर पर सवार हो गया और राजा को तिरस्कृत बातें कहने लगे।

विश्वामित्र ने आते हुए अपने उग्र स्वाभाव का परिचय दिया और बतलाया कि वह ब्राह्मणों के नेता वशिष्ठमुनि की प्रतियोगिता करनेवाले, नयी सृष्टि का निर्माण करने वाला, ब्रह्मा-इन्द्र आदि देवों का गर्व चूर करने वाला, तप और तेज द्वारा ब्राह्मणत्व प्राप्त करनेवाला विश्वामित्र है। उसके नाम से सारा संसार परिचित है। विश्वामित्र ने राजा हरिश्चन्द्र को मिथ्या दान वीर कहा क्योंकि अभी तक उन्होंने उसे पृथ्वीदान नहीं दिया और आज नहीं पहचानने की बात कही है। इसपर राजा हरिश्चन्द्र ने उनका गुणगान करने के लिए उन्हें 'राज प्रति ग्रहपराड़ मुख कहा, पर विश्वामित्र ने उसका दूसरा अर्थ लगा लिया और राजा को कोसना आरंभ कर दिया। उन्होंने राजा को स्वार्थी, असत्यवादी और मिथ्या दानवीर कहा। इस पर विश्वामित्र उन्हें श्राप देने के लिए तत्पर होते है कि उनकी वायीं भुजा (जन्म से क्षत्रिय होने के कारण) राजा से युद्ध करने के लिए तलवार उठाने को फड़कने लगती है।

(२६) अरे ब्रह्मा! संभाल अपनी..........दूसरी सृष्टि बनाई।

(पृ०स० २३)

प्रस्तुत कथन विश्वामित्र का है। स्वप्न में उन्हें राजा हरिश्चन्द्र के द्वारा पृथ्वी दान के रूप में मिली थी। विश्वामित्र आ पहुँचे। वे उन्हें सर्व-प्रथम ठीक-ठीक न पहचान सके। उन्होंने सिर्फ इतनाहीं कहा कि आप पूर्व परिचित से ज्ञात होते हैं। इतना कहना था कि विश्वामित्र राजा हरिश्चन्द्र से आग बबूला होकर राजा को तिरस्कृत बातें कहना आरंभ कर दीं।

इन पंक्तियों में विश्वामित्र ने ब्रह्मा को संबोधन कर अपने क्रोध का भयंकर रूप प्रदर्शित किया है। आते ही उन्होंने राज्य की मांग पेश की और अभीष्ट के प्राप्ति के लिए अपने क्रोध का उग्र रूप दिखाकर मिथ्या दानवीर, पापीपाषंडी आदि कहकर उन्हें कर्त्तव्यपथ से च्युत करना चाहा। विश्वामित्र क्रोधी एवं अभिमानी थे क्योंकि उन्होंने अपनी तपस्या एवं साधना के द्वारा एक शक्ति प्राप्त की थी। इसीकारण उनमें क्रोध की मात्रा प्रतिक्षण उबल पड़ती थी। राजा हरिश्चन्द्र को भयभीत करने के उद्देश्य से ही उन्होंने ब्रह्मा को संबोधन करते हुए कहा कि हे ब्रह्मा! तू अपने करों-द्वारा निर्मित सृष्टि की रक्षा कर, नहीं तो (विश्वामित्र) अपने तेज और तप-बल से वधित असह्य क्रोध द्वारा तुम्हारी समस्त सृष्टि को नष्ट कर दूँगा। इस पर विश्वामित्र अपने कथन द्वारा यह कहते हैं कि सृष्टि के नष्ट हो जाने से ब्रह्मा को क्या? ब्रह्मा का अभिमान तो विश्वामित्र ने उसी समय चूर-चूर कर दिया था जब उसने एक नयी सृष्टि की रचना की थी। इसकी कथा 'कथा प्रसंग' शीर्षक निबन्ध में है।

(२७) जेहि पाली इक्ष्वाकु सो······· सु परवस जोय (पृ०स० २४)

यह पद्य सत्य-हरिश्चन्द्र नाटक के दूसरे अंक से लिया गया है। विश्वामित्र के आने पर राजा ने सहर्ष सारी पृथ्वी उन्हें दे दी। क्रोधी विश्वामित्र की बार-बार की बेकार फटकार सुनकर गम्भीर राजा का मन पर्वत की तरह डिगाहुआ था। फिर भी अपना अधिकार छोड़ देने पर इनका हृदय कुछ स्नेह से क्षुब्ध हो जाता है। स्नेह के बन्धन के कारण पृथ्वी की ओर देखकर बोलते हैं।

इक्ष्वाकु से लेकर आज तक सूर्यकुल में जितने राजा हुए सभी ने पृथ्वी का पालन किया। उस पृथ्वी को आज राजा हरिश्चन्द्र विश्वामित्र को दान दे रहे हैं। राजा हरिश्चन्द्र इस अपने कुल की पुश्तैनी सम्पत्ति को सत्य के पालन में व्यय-सा कर रहे हैं। राजा कहते हैं कि हे वसुधे! हमारे बाप-दादाओं ने बड़ी योग्यता से तुम्हारा पालन किया और तुमने उनकी छत्र-छाया में बड़ी मौज की। उस वसुधा को राजा लाचार होकर अलग कर रहे हैं। क्या करें? धर्म्म के बन्धन में पड़कर यह भी करना पड़ा। राजा बसुन्धरा से क्षमा की याचना करते हैं। राजा की परिस्थिति नाजुक हो गई थी। वे क्या करते? कोई बस न था। इसलिये पृथ्वी को विलग कर रहे हैं।

(२८) वेचि देहि दारा......अभिमानी हरिश्चन्द्र (पृ० स० २५)

यह दोहा सत्य-हरिश्चन्द्र नाटक के दूसरे अङ्क से लिया गया है। एक महीने में दक्षिणा न मिलने पर विश्वामित्र ने कठिन ब्रह्म-दण्ड गिराने की धमकी दी। राजा ब्रह्म-दण्ड से डरने वाले व्यक्ति न थे। वे सत्य-पथ से भ्रष्ट होने से डरते हैं। उन्होंने चलते-चलते विश्वामित्र को नम्रतापूर्वक सुना ही दिया। राजा ने कहा कि सत्यपालन में मुझको अभिमान है। अपनी बात निबाहने में कोई कोर-कसर नहीं रख सकता। राज्य चला गया, कोई पर-वाह नहीं। मैं दक्षिणा की मुद्रा पुत्र और स्त्री को वेचकर भर दूँगा मैं स्वयं इसको वसूल करने में नीचों का दास तक बन जाऊँगा। तात्पर्य यह है कि, दक्षिणा की मुद्रा की चिन्ता विश्वामित्र न करें। राजा पुत्र-स्त्री को वेचकर और खुद नीच की गुलामी कर मुद्रा इकट्ठी कर दक्षिणा चुका अपना मुँह उज्ज्वल कर लेगा।

तीसरे अङ्क में अङ्कावतार

(२६) रात-दिन शंख……एक साथ शीतल हो जाता है।

(पृ० स० २७)

प्रस्तुत अवतरण में पाप ने काशी के धर्माचरण का वर्णन किया है। यह कहा गया है कि जहाँ धर्म का आचरण होता है वहाँ पाप ठहर ही नही सकता और राजा हरिश्चन्द्र की पवित्र भूमि में तो पाप को ठहरने का स्थान मिल ही नहीं सकता है। धर्म स्थानों में अगर पाप पहुँच भी जाय तो उसे शान्ति नहीं मिल सकती। पाप काशी जा पहुँचता है पर वहाँ उसे आश्रय नहीं मिलता क्योंकि दिन रात पूजा पाट, स्नान, जप में लगे हुए जीवों के द्वारा शङ्ख और घंटे की ध्वनि फैलती रहती है। उस ध्वनि से ऐसा प्रतीत होता है कि मानो वहाँ धर्म की विजय मनायी जा रही है जो पाप का शत्रू है। पापी व्यक्ति भी वहाँ पहुँच जाता है तो गङ्गा के पवित्र जल कण युक्त ठंढी हवा के स्पर्श से उसका हृदय शीतल हो जाता है। कहने का तात्पर्य्य यह है कि पापी मनुष्य के हृदय का विकार दूर हो जाता है।

(३०) आज जब भगवान…………अलग-अलग हो गए।

(पृ० स० २८)

ये पंक्तियाँ तीसरे अङ्क के अङ्कावतार की हैं। परिस्थिति के प्रवाह में पड़ कर राजा हरिश्चन्द्र को काशी आना पड़ा है। सत्य की टेक थी। टेक को पूरी करनी है। भैरवजी राजा का यहाँ आने का उद्देश्य जानते हैं। शिवजी भी राजा की सत्य-परायणता पर मुग्ध हैं। पार्वती से राजा का गुण-गान करने में

भूतनाथ शिव का हृदय भर आया। उनकी तीनों आँखें आसुओं से भर गईं। शरीर के रोंगटे खड़े हो गए और रोमाञ्च होने के कारण शरीर पर की विभूति के कण-कण बिखर गए। भैरवजी ने यह सब बातें अपने आँखों से देखी थीं। सचमुच ही राजा हरिश्चन्द्र धन्य है और धन्य है उसकी सत्यनिष्ठा।

तीसरा अङ्क

(३१) चारहु आश्रम वर्न........सोहत कासिका । (पृ० २९)

काशी में ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास चारो आश्रम वाले तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्णवाले रहते हैं। यहां के घरों में मणि और सोने लगे हैं। इनसे आकाश उज्ज्वल हो रहा है। इसकी शोभा कही नहीं जा सकती; मानो ब्रह्मा ने इस काशी को सब शहरों की नाक-सी बनाई हो! याने यह सब नगरों में श्रेष्ठ है। गिरधर दास कहते हैं कि काशी गङ्गा के किनारे बसी हुई है और गङ्गा के पवित्र जल से यह खेल रही है। यह काशी पुण्य का प्रकाश करने वाली और पाप का नाश करने वाली है। हृदय को आनन्दित करने वाली यह काशी अच्छी शोभ रही है।

(३२) बसैं बिन्दुमाधव विसेसरादि.........लसी बारानसी है। (पृ० २९)

इस काशीपुरी में बिन्दुमाधव, विश्वनाथ आदि देवता रहते

हैं। इनके दर्शन से यम का भय मिट जाता है। यह काशी अनादि तीर्थ-स्थान है। यह पंचगंगा, मणिकर्णिका आदि पवित्र सात घेरों के बीच पुण्य-रूप से घुसी हुई है। गिरधरदास कवि का कहना है कि काशी के पास ही में गंगा बहती है। इस गंगा की धारा कर्म-रूपी रस्सी को बहुत जल्द तोड़ देती है। यह पवित्र काशी नगरी स्वच्छ चन्द्रमा के तुल्य यशस्वी असी और वरुणा नदियों के बीच में बसी हुई है। यह पाप-रूपी रस्सी के लिये तलवार सी शोभ रही है।

(३३) रजित प्रभासी·········ऐसी कासी है। (पृ० २६)

काशी के मकानों की बनी पंक्तियाँ कुवेर की नगरी-सी लगती है। मकानों के समूह इस प्रकार शोभते हैं मानों प्रकाश से ही बने हों। इन मकानों के ऊपरी हिस्सों में जवाहिरों के काम किये कँगूरे शोभते हैं। इस नगरी में दास-दासी, ब्राह्मण, गृहस्थ और संन्यासी लोग झुंड के झूंड घूम रहे हैं। ये गुणवान भी हैं। देवताओं की नगरी अमरावती भी इसकी समता नहीं कर सकती। कवि गिरधर दास कहते हैं कि इस नगरी की लक्ष्मी की हँसी-सी उज्जवल वर्ण की संसार को प्रसन्न करनेवाली कीर्ति आनन्द देने वाली है। यह नगरी पूर्णिमा की चाँदनी-सी विशेष रूप से प्रकाशमान है। यहाँ के रहने वाले सभी अविनाशी याने जीवन मुक्त हैं। यह काशी ऐसे-ऐसे महान गुणों से परिपूर्ण पाप को दूर करने वाली है। इसके रहने वाले स्वयं अविनाशी शंकर हैं।

(३४) जन की सब त्रास·····धारन धारन में। (पृ० ३०)

मुख से "गंगा-गंगा" कहने से यम का सारा डर हवा हो

जाता है। गंगा के जल के दर्शन मात्र से पाप का प्रताप दूर हो हो जाता है। बहुत थोड़ा गंगाजल मुँह में डालने से हे गंगे! तुम लोगों को कामदेव के शत्रु महादेव बना देती हो अर्थात् गंगाजल के पीने से मनुष्य शिव का रूप धारण करते हैं। कवि गिरिधर दास कहते हैं कि जो तुम्हारी धाराओं में स्नान करता है ऐसे कितने ही को तुमने विष्णु-पद दे दिया है याने विष्णु बना दिया है।

(३५) नव उज्जवल जलधार.........भय दूर मिटावत।
(पृ० ३०)

प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने राजा हरिश्चन्द्र के रूप में गंगा की छवि और महिमा का वर्णन किया है। गंगा की स्वच्छ और उज्ज्वल जल की धारा हीरे की माला के सदृश दिखलाई पड़ती है (क्योंकि हीरा श्वेत रंग का होता है और गंगा का जल भी उज्ज्वल है)। उस जल की धारा में जो बून्दें उछलती है वह इस प्रकार दिखलाई पड़ती हैं मानों हीरे के हार में मोती और मणियाँ गूँथी हुई हो। हवा के झोंके या बहने से चंचल चपल लहरें इस प्रकार एक दूसरे पर आरही है (और नष्ट हो रही हैं) जिस प्रकार मनुष्य के हृदय में अनेक प्रकार की भावनाएँ उठती और मिटती हैं।

गंगा स्वर्ग की सीढ़ियों की तरह सुशोभित हैं जो सबके मन को प्रसन्न या आह्लादित करती हैं। ये अपने दर्शन, स्नान और पान (पीने) से तीनों प्रकार के तापों (दैहिक, दैविक और भौतिक) के भय से नष्ट करने वाली हैं।

(३६) श्री हरिपद-नख-चन्द्रकान्त.........कठहार कल्ल।
(पृ० ३०)

यह पद्य सत्य-हरिश्चन्द्र नाटक के तीसरे खंड से लिया गया है। राजा हरिश्चन्द्र दक्षिणा का ऋण चुकाने के लिये काशीपुरी आ गये हैं। काशी की गंगा की छटा देख कर राजा मुग्ध हो जाते हैं। उन्हीं के मुग्ध हृदय का यह उद्गार है। गंगा की धारा और उसकी शोभा का वर्णन ही इस पद्य में लबालब भरा है। गंगा विष्णु भगवान के चरण नख-रूपी चंद्रकान्त मणि से निकली हुई अमृत रस है। गंगा का उद्गम विष्णु के नख से है। ब्रह्मा के कमंडल की गंगा शोभा है। वे संसार के दुख को हटानेवाली और देवगणों की सब कुछ हैं। पुराणों में यह कथा है कि पहले गंगा की उत्पत्ति विष्णु के नख से हुई। फिर ब्रह्मा के कमंडल में इनका बहुत दिनों तक निवास रहा। गंगाजी महादेवजी के सिर पर की सफेद मालती की माला सी हैं। भगीरथ के अत्यन्त पुण्य करने के फल स्वरूप संसार में अवतरित हुई हैं। गंगा पर्वतराज हिमालय से निकली हैं। ये मानो ऐरावत हाथी रूपी इस पर्वतराज हिमालय के गले का सुन्दर हार हैं। हिमालय से निकली हुई गंगा जो लम्बी-लम्बी फैली है यह माला सी सचमुच ही दीख पड़ती है। बर्फ से भरा हिमालय श्वेत ऐरावत की समता अवश्य ही करता है। यहाँ कवि रूपक और उत्प्रेक्षा द्वारा गंगा का वर्णन बड़ी चुटीली भाषा में करता है।

(३७) सगर-सुवन सठ.........अंकस लिपटाई (पृ० ३१)

गंगाजी की जलधारा राजा सगर के साठ हजार पुत्रों का उद्धार अपने जल के स्पर्शमात्र से करनेवाली हैं और असंख्य

धाराओं का रूप धारण कर समुद्र में जा मिलती है (समुद्र में मिलते समय गंगा की अनेक धाराएँ हो गई हैं)।

गंगा संसार में काशी को प्रिय समझ कर उत्साह पूर्वक दौड़ कर उसकी गोद से जा लिपटीं। आज तक स्वप्न में भी गंगाजी ने काशी को छोड़ने की कल्पना नहीं की और अंक में लिपटी रही।

विशेष—राजा सगर के साठ हजार पुत्रों को कपिल मुनि ने अपने शापसे भस्म कर दिया था। उन्हीं पुत्रों के उद्धार के लिए राजा भगीरथ ने गंगा को पृथ्वी पर लाया। गंगा के जल के स्पर्श मात्र से उन सबों को मुक्ति मिल गई।

(३८) कहुँ बँधे नव घाट.........ध्यान लगावत।

(पृ० ३१)

गंगा के किनारे काशी में कहीं-कहीं पर नए बँधे हुए घाट ऊँचे पर्वतों की तरह सुशोभित हैं। कहीं पर छतरी टँगी है तो कहीं मढ़ी बनी हुई है जो सिर्फ देखते ही मन को मोह लेती है।

चारों ओर सफेद मकान (मन्दिरभी कह सकते है) बने हुए हैं जिनके ऊपर झंडे और झंडियां फहरा रही हैं। घंटे की ध्वनि गंभीर नाद करती है। उच्च स्वर में नगाड़े बजते हैं जो काशी की कीर्ति की घोषणा करते हैं।

कहीं मधुर ध्वनि के साथ नौबत बज रही है और कहीं स्त्री-पुरुष गाते हैं और कहीं ब्राह्मण वेद-पाठ कर रहे हैं तो पर योगी ध्यानावस्थित हैं।

(३९) कहुँ सुन्दरी नहात..................मनु कमल मिटावत।
(पृ० ३१)

यह पद्य सत्य-हरिश्चन्द्र नाटक के तीसरे अङ्क से लिया गया है। राजा अपनी स्त्री सहित प्यारे रोहिताश्व को लेकर काशीपुरी में दक्षिणा चुकाने के लिए उपाय करने आये हैं। गङ्गा की छवि में उनका सात्विक स्वभाव आनन्द की लहरें लेने लगता है। कवि ने बड़ी ही सुकुमारता के साथ गंगा के दृश्य की तस्वीर खींच दी है। घाट पर स्त्रियां स्नान करने आई हैं। उनमें कितनी चन्द्रमुखी हैं, उनकी जलकेलि दर्शनीय है। सुन्दरी स्त्रियां नहा रही हैं। वे अपने दोनों हाथों से जल उछाल रही हैं। यहां का दृश्य ऐसा प्रतीत होता है मानो दो कमल मिल कर सफेद मोती के गुच्छे जल से निकाल रहे हैं; जल उछालने पर जल की उजली-उजली छोटी-बड़ी बूंदें मोती की तरह ऊपर उठकर नीचे गिर जाती हैं। हाथों की लुनाई और उनका सम्पुट कमल की नाईं हो जाता है। यहां उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

ये स्त्रियाँ दोनों हाथों से अपना मुँह धोती हैं। इनका इस तरह मुँह धोना इनकी शोभा को बढ़ा देता है। वे इस तरह बड़ी ही भली लगती हैं। ये चन्द्रमुखी है। इनके कमल रूपी हाथ मानों मुख-चन्द्र का कलङ्क मिटा रहा हो ऐसा प्रतीत होता है। यह काम कमल को अपने भाई चन्द के कलङ्क को दूर करने के लिए करता है। क्योंकि दोनों एक जगह से उत्पन्न हुए हैं। समुद्र के नाते कमल को यह करना फर्ज है। चन्द्रमा की उत्पत्ति भी समुद्र के जल से है और कमल तो जलज है ही, फिर दोनों का

भ्रातृत्व होना भायप के नाते जरूरी है। यहां भी उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

(४०) सुन्दरी ससि मुख·······बरनी नहिं जाई। (पृ० ३१)

चन्द्रमा के समान मुखवाली स्त्रियां जल के बीच इस प्रकार शोभती हैं जैसे कमलों की हरी-भरी लता अपने नए फूलों से मन को मोह लेती है। (कहने का तात्पर्य यह है कि काशी में गंगा के तट की शोभा देखने योग्य हैं) आँखे जिधर जाती हैं बरबस वहीं ठहर जाती हैं। हरिश्चन्द्र कवि कहते हैं कि गंगाजी की शोभा का वर्णन मुझसे तो नहीं की जा सकती।

(४१) हमारी विद्या सिद्ध हुई·········कुछ काम नहीं करता। (पृ० ३२)

यह विश्वामित्र का स्वगत भाषण है। इन्द्र के बहकावे में आकर विश्वामित्र ने हरिश्चन्द्र को सत्य-भ्रष्ट करने का प्रयत्न किया था। परन्तु अब उन्हें कुछ व्यक्तिगत बातों के कारण राजा हरिश्चन्द्र से बैर हो गया है। अपने तपोबल द्वारा उन्होंने महाविद्याओं को अपने अधिकार में कर रहे थे। सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र ने उनकी करुण-पुकार सुन कर उनकी रक्षा की थी। इसीलिए विश्वामित्र क्रोध में आ गए और राजा से सारा राज्य लेकर उन्हें राज्य-भ्रष्ट कर दिया। इतना करने के बाद भी उन्हें आत्म-संतोष नहीं मिला। अब वे उनका धर्म नष्ट करने में दत्तचित्त हैं परन्तु राजा अपने कर्त्तव्य पर अटल एवं अविचल है। उसकी सत्यवादिता, कर्त्तव्य निष्ठता दृढ़ता एवं उसके नम्र स्वभाव ने विश्वामित्र की सारी कोशिशें निस्फल कर दी हैं।

(४२) ऋण भी कैसी बुरी......नहीं देखी जाती है। (पृ०३४)

ये पंक्तियां सत्यहरिश्चन्द्र नाटक के तीसरे अङ्क से ली गई हैं। राजा दक्षिणा चुकाने के लिए काशी आए हैं। गङ्गा की तटस्थ काशी की छबि अलौकिक है। विश्वामित्र भी दक्षिणा वसूलने आ धमके। ये क्रोधी ब्राह्मण राजा को जलीकटी सुनाने लगे। सांझ तक दक्षिणा के रुपये को चुका देने की बात कहने पर मुनि कुछ थम्हे। शरीर को बेचने को राजा आगे बढ़ गए। परन्तु मुनि की जली-कटी बातें हृदय में अङ्कित हो गई थीं। इनका हृदय क्षुब्ध हो गया। वजह ? केवल ऋण का बोझ है। मुनि का ऋण है, इसलिए मुनि को इस तरह का बोलने का अधिकार है। इस संसार में वही मनुष्य धन्य है जो कर्जदार नहीं है। वह मनुष्य सचमुच भाग्यशाली है जिसको इन महाजनों की जली कटी सुनने का मौका नहीं होता। इस दुनियाँ में क्रोधी और दुष्ट कर्ज देने वाले महाजनों की तेवरियों के सहने का अवसर ही नहीं आता है। कर्ज़ बड़ी बुरी चीज है।

(४३) पर-पुरुष से संभाषण......ले ही लेंगे।
(पृ० स० ३६-३७)

ये पंक्तियाँ सत्य-हरिश्चन्द्र नाटक के तीसरे अंक से ली गई हैं। रानी शैव्या ने पहले बिकने का प्रस्ताव अपने पति से किया। हरिश्चन्द्र बड़े ही समझदार और समय को पहिचानने वाले व्यक्ति हैं। रानी की बात मान गये। रानी के खरीददार भी आने लगे और मोल-जोल होने लगी। अपने बिकने की एक शर्त रानी ने रखी है। रानी अपने खरीददार की सब सेवा करेगी। लेकिन दूसरे पुरुष से बोलचाल और जूठा भोजन

नहीं करेगा। शर्त तो मामूली है लेकिन इस पर खरीददारों की ओर से आवाज उठी "इतने मोल पर कौन लेगा"। रानी ने अपना विश्वास प्रकट किया। वह उसका विश्वास है कि कोई अच्छा आदमी अवश्य कृपया खरीद लेगा। साधु, ब्राह्मण और महात्मा का हृदय ही ऐसा होता है। वे स्वभाव से दयालु होते हैं। कोई न कोई ऐसे दयालु जीव रानी को जरूर खरीदने की कृपा करेंगे।

(३८) हम प्रतच्छ हरि रूप.........पितु-सुत-नारी।
(पृ०स०४३)

यह पद्य सत्य-हरिश्चन्द्र नाटक के तीसरे अंक से लिया गया है। काशी में आकर अपनी स्त्री को वेचकर दक्षिणा के लिये आधा रुपया तो इकट्ठा किया। विश्वामित्र ने आधा रुपया लेने से साफ इनकार कर दिया। राजा हरिश्चन्द्र ने अनुरोध किया कि राजा मुनि की सेवा दक्षिणा में करेंगे। लेकिन बड़ी क्रूरता से मुनि ने अपने पाषाण-हृदय का परिचय दिया। राजा ने फिर खरीददारों के लिये आवाज दी। एक ओर चांडाल वेष में धर्म आ गया। धर्म आप ही आप कहते हैं कि संसार धर्म ही के बल से चलता है। धर्म ही भगवान का प्रत्यक्ष रूप है। जल, स्थल और आकाश हमारे प्रभाव से स्थिर हैं। धर्म नियम को नहीं छोड़ता। धर्म ही मनुष्य का बन्धु और सदा सच्चा भलाई करने वाला है। जब पिता, बेटा और स्त्री सब आदमी को छोड़ देते हैं तब धर्म ही एक साथ जाता है। धर्म का आधार सत्य है। सत्य में ही धर्म नित्य स्थित रहता है। इसीके बल पर सारा

संसार जीता-जागता है। धर्म राजा की उसी सत्यपरायणता की जांच करने के लिये आज इस वेष में आया है।

(३६) ऋण छूटयो पूरयों.........मोहि दाप। [पृ०स० ४५]

यह दोहा सत्य-हरिश्चन्द्र नाटक के तीसरे अङ्क से लिया गया है। राजा हरिश्चन्द्र ने स्त्री और अपने को वेचकर मुनि की दक्षिणा चुका दी। समय पर दक्षिणा चुक जाने पर मुनि को श्राप देने का मौका न लगा। राजा को दक्षिणा चुका देने पर बड़ा आनन्द और संन्तोष हुआ। उन्होंने कर्ज वसूल कर दिया। राजा की टेक पूरी हुई और विश्वामित्र शाप भी नहीं दे सके। राजा को सत्यपालन करने में चांडाल के यहाँ बिकना पड़ा। इसका राजा को तनिक भी क्षोभ नहीं है। उल्टे ऋण वसूल करने पर राजा को गर्व है। आज चांडाल होकर भी राजा को घमंड है।

चौथा अङ्क

(४०) जातिदास चाण्डाल......एक समान। (पृ० ४७)

चाण्डाल जाति का मैं नौकर हूँ। मेरा घर भयंकर श्मशान है और कफन की परीक्षा करना मेरा काम है। ये सभी बातें एक समान हैं।

(४१) हम क्या सोंचे......इस चाण्डालपने को? (पृ० ४७)

भाग्य ने उलटा खाया, इसीलिए राजा हरिश्चन्द्र को डोम

का नीच काम भी स्वीकार करना पड़ा। श्मशान पर चक्कर काटते हैं पर उनका मस्तिष्क चिन्ताओं का घर बना हुआ है। वे इस तथ्य से परिचित नहीं हो पाए हैं कि वे किस-किस व्यक्ति को याद करें और किसे-किसे भूल जाएँ। कभी अयोध्या की प्रजाओं की याद उनके हृदय को सता जाती है, कभी अपने परिवार वालों की दशा से उनका हृदय व्यग्र हो उठता है। राजा की इस दुर्गति के कारण सिर्फ उन्हें नहीं, उनके परिवार को नहीं बल्कि उनके सेवकों को भी दुःख पहुँचा है। जब उनकी स्मृति में रानी शैव्या और बालक रोहिताश्व का रूप आ खड़ा होता है तब वे अपने को सचमुच चाण्डाल समझने लगते हैं। इस विषम परिस्थिति में भी राजा को अपने परिजनों की अधिक चिन्ता सता रही है।

(४२) अरे! यह असमय में······हम सावधान हो जायँ।

(पृ० ४८)

श्मशान पर राजा हरिश्चन्द्र अपनी स्त्री और अपने पुत्र के कष्ट को विचार कर मोह-ग्रस्त होने के साथ चिन्तित भी हैं। लेकिन जैसे ही आकाश से पुष्प-वृष्टि होती है, वैसे ही सचेत हो जाते हैं। इस पुष्प वृष्टि का कारण वे समझ नहीं पाते हैं। फिर वे विचार करने लगते हैं कि इस शोक-समय में पुष्प-वृष्टि कैसी हुई है। परन्तु उसके मन में यह बात समा जाती है कि शायद् किसी पुण्यात्मा का शव आया होगा। कदाचित यही पुष्प-वृष्टि का कारण है। अंत में, वे सचेत होकर अपने काम में लग जाते हैं।

(४३) हाय-हाय कैसा भयंकर......सियार कैसे रोते हैं।

(पृ०४८)

प्रस्तुत संदर्भ में हरिश्चन्द्र ने श्मशान के भयानक रूप का दृश्य उपस्थित किया है। वहाँ पर की सभी वस्तुएँ हृदय को भयभीत कर देने वाली है। माँस-भक्षण के लिए दूर से चक्कर काटकर पंख फैलाए हुए मुँह बाकर इस तरह टूटते हैं जैसे कंगालों का दल अन्न पर टूटता है। ये माँस-भक्षण के लिए आपस में लड़ते-झगड़ते हैं। दूसरी ओर श्मशान भूमि में सियार एक के बाद दूसरा स्वर मिला कर इस तरह का शब्द करते हैं जैसे नगाड़े पर एक के बाद दूसरी चोट। वहाँ के शान्त बातावरण में उनका शब्द कानों को ऐसा कठोर मालूम पड़ता है जैसे अमंगल की सूचना देने वाले नगाड़ा का शब्द अप्रिय मालूम देता है।

(४४) मरनो भलो विदेश को..........महोच्छव होय।

(पृ० ४६)

यह पद्य सत्य-हरिश्चन्द्र नाटक के चौथं अंक से लिया गया है। राजा हरिश्चद्र दक्षिणा दे चुके। अब श्मशान में कफन वसूल करने के लिये गश्ती लगा रहे हैं। उनके सामने उनके अतीत-जीवन की घटनायें सिनेमा की तस्वीर सी आती और चली जाती हैं। यहां पर शव की गति को देखकर इनके मन में विराग सा हो जाता है। मनुष्य-शरीर को सियार, गिद्ध छक-छक कर खा रहे हैं। इनके उत्सव का आधार मनुष्य-शरीर है। राजा का परोपकारी हृदय कह उठता है कि मनुष्य की मृत्यु जब अपने देश से अलग हो तो अच्छी बात है। अपना कोई रहने से शव को जलाकर राख कर देते हैं और इस शरीर से औरों के

उपकार होने की आखिरी सम्भावना भी जाती रहती है। इसलिये जहाँ अपना सगा सम्बन्धी न हो वहाँ मरना अच्छा है। ऐसी जगह में मरने से यह शरीर यों ही फेंक देने पर इन जीवों का उपकार हो जाता है। इस शरीर को और-और जानवर खाकर बड़ा उत्सव करते हैं। उन जानवरों को इस क्षुद्र शरीर के द्वारा बड़ा आनन्द प्राप्त होता है।

(४५) सिर पर बैठ्यो काग·········भिखारिन कहँ दियो।

(पृ० ४६)

सिर पर कौआ बैठकर दोनों आँख निकाल कर खाता है। सियार जीभ खींच लेता है और प्रसन्न होता है। गिद्ध जाँघ को खोद-खोद कर माँस निकालता है और कुत्ता अंगुलियों को काट-काट करके खाने का विचार करता है। बहुत-सी चीलें चमड़ा नोच-नोच कर ले जाती है और सब का हृदय आनन्द से भरा रहता है। वह ऐसा मालूम पड़ता मानों किसी यजमान ने कंगालों को भोज दिया है।

(४६) सोई मुख सोई उदर·········मरे मनसु के होय।

(पृ० ४६)

वही मुँख है, वही पेट है, हाथ और पैर दोनों के दोनों वही हैं। लेकिन आजकी बात दूसरी है। कोई शव को नहीं छूता है। हाड़, मांस, लार, लोहू, चमड़ा आदि सब के सब मरने के बाद दुर्गन्ध से भर जाते हैं। वह सड़-सड़ कर बदबू करने लगते हैं। मरने के बाद यही होता है।

(४७) कादर जेहि लखि.........वासना साज। (पृ० ४६)

यह पद्य सत्य-हरिश्चन्द्र नाटक के चौथे अंक से लिया गया है। श्मशान के बीभत्स व्यापार को देखकर राजा के हृदय में एक विराग-सा उत्पन्न हो जाता है। कहीं सियार मांस नोच-नोच कर खा रहे हैं, कहीं गिद्ध मांस खोद रहे हैं, कहीं चील मांस नोच कर खा रही हैं। श्मशान का यह सहज व्यापार है। इधर-उधर फैले हुए हाड़-मांस की दुर्गन्ध अवर्णनीय हैं। मनुष्य-शरीर की यह आखिरी हालत बड़ी ही दयनीय है और भयंकर भी। इस दृश्य को देखकर डरपोक लोगों का हृदय भय से व्याकुल हो जाता है। लेकिन बुद्धिमानों को इसकी क्षुद्रता पर लज्जा आती है। संसार के भोग-विलास की साम-ग्रियाँ व्यर्थ हैं। राजा को बड़ा आश्चर्य होता है कि जिस शरीर को इतनी मेहनत और इतनी सेवा से सँभाल रखते हैं उस शरीर की यह दयनीय दशा हो जाती है। ठीक है, दुनियाँ बेकार है; इसका ऐश-मौज का सामान बे मतलब है।

(४८) सोई मुख जेहि चन्द.........नारि जुड़ानी। (पृ० ४६)

कवि हरिश्चन्द्र ने इन पंक्तियों में मनुष्य की जीवित और मृत अवस्थाओं की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। राजा हरिश्चन्द्र श्मशान पर हैं। वे मनुष्य की मृत अवस्था को देखकर व्यग्र एवं विह्वल हो उठते हैं। उनके हृदय में विराग की भावना उठती है और कहते हैं—

यह वही मुख है जिसे (हम) चन्द्रमा कह कर वर्णन करते थे। ये वे ही अंग हैं जो प्यारे समझे जाते थे। ये वे ही

बाहें हैं जो प्रिय के गलों में डाली जाती थी। ये वे ही भुजाएं है जो पराक्रमी व्यक्ति को भी मार गिराती थी। ये वे ही पांव हैं जिन्हें सेवक छू कर बन्दना करते थे। यह वही सुन्दरता है जिसे देखकर सभी व्यक्ति प्रसन्न होते थे। यह वही जीभ है जिसमें अमृत के समान मधुर वाणी रहती थी और जिसे सुनकर स्त्री का हृदय शीतल हो जाया करता था।

(४९) सोई हृदय जँह भाव.......सबै मिलि दाहत ।

(पृ० ५०)

प्रसंग उपर्युक्त ही है। यह वही हृदय है जहाँ अनेक भाव विद्यमान रहते थे, यह वही मस्तक है जिसमें अपने वचन पालने की टेक थी। यह वही शोभामय सुन्दर शरीर है परन्तु आज प्राण के उड़ जाने के कारण वही शरीर पृथ्वी पर शोभ रही है। वह सौन्दर्य कहाँ गया जिसे देख कर जीवितावस्था में सभी का मन आकृष्ट हो उठता था, जिसे लोग अपने प्राणों से भी बढ़कर मानते थे, उसीको लोग आज अग्नि में जला रहे हैं।

(५०) फूल बोझहू जिन न सहारे.........भोज विचारत ।

(पृ० ५०)

जो व्यक्ति फूल के हलके बोझ को भी सँभालने में असमर्थ था उसी के ऊपर आज लकड़ियों के बोझ डाले जा रहे हैं। जिस व्यक्ति को सिर की पीड़ा भी असह्य थी उन्हीं को लोग आज बाँस से पीट-पीट कर जला रहे हैं। जो अपने सगे-सम्बन्धियों से पल भर के लिए भी अलग नहीं होते थे, वे उन्हें छोड़कर भी चले गए। जिन आंखों को राजागण देखते थे, उसे आज कौआ अपना भोजन समझ रहा है।

(५१) भुजबल जे नहिं भुवन.........ही ग्रन्थन माहीं।
(पृ० ५०)

जिनकी भुजाओं का बल पृथ्वी में नहीं समा सकता था, वे अपने मुख को कफन में छिपाये देखे जाते हैं। काल राजा और प्रजा के भेद किये बिना सबको एक ही समान गिनता है। सुन्दर और कुरूप, अमृतमय और विषमय आज ये सबके सब एक ही भाव बिक गए। पुरु और दधीचि (ऐसे प्रतापी) भी आज नहीं हैं, मृत्यु के गर्भ में समा गये। उनका नाम सिर्फ ग्रन्थों में रह गया है।

(५२) अहा! देखो वही सिर.........भी घिन करते हैं।
(पृ० ५१)

ये पंक्तियाँ सत्य-हरिश्चन्द्र नाटक के चौथे अंक से ली गई हैं। श्मशान की भयंकरता विचित्र है। शरीर की आखिरी हालत को देख कर राजा दाँतों तले अँगुली दबाये बिना नहीं रहते। यह श्मशानभूमि बड़ी ही साम्यवादी है। वीर, कायर, सुन्दर, कुरूप, मूर्ख, पंडित यहां सब की एक गति है। सामने देखने में आता है एक मस्तक को पिशाच गेंद की तरह मार-मार कर लुढ़का रहे हैं। यह कोई साधारण मस्तक नहीं। यह वही मस्तक है जिसको मन्त्रपूत जल से स्नान हुआ था और जवाहिरातों का मुकुट रखा गया था। इस मस्तक का इतना दर्प था कि इन्द्र को भी क्षुद्र गिनता था। इसमें बड़े राज्य वश में करने का अरमान भरा पड़ा था। लेकिन आज उसी मस्तक की हालत क्या है? श्मशान के डरावने निवासी पिशाच उसी से फुटबॉल खेल रहे हैं और लोग उसका स्पर्श करने में घिनाते

हैं। कहाँ उसकी वैसी बात कहाँ इसकी यह दुर्गति। राजा का मनुष्य-हृदय निराश हो जाता है, साथ ही आश्चर्य भी कम नहीं होता।

(५३) स्थिरता किसी को भी नहीं..........चाहता है।
(पृ० ५२)

ये पंक्तियां सत्यहरिश्चन्द्र नाटक के चौथे अङ्क से ली गई हैं। श्मशान की भयङ्करता और घिनौने व्यापार को देख कर राजा के हृदय में विराग सा उत्पन्न हो जाता है। श्मशान देवी को कैसे यह स्थान और यहाँ का घृणास्पद-व्यापार प्रिय है यह सोच कर राजा को आश्चर्य होता है। देवी प्रसन्न होकर राजा को साधु-वाद देती चली जाती है। राजा हरिश्चन्द्र देखते हैं कि संध्या हो चली। दुनियाँ में कोई एक तरह से नहीं रह सका। परिवर्तन होना यहां का अखण्ड नियम है। सूर्य के उदय होते दुनियांदारी के कामों में लोग लग जाते हैं। ब्राह्मणादि पूजादि में लीन होने लगते हैं। कमलों को खिलाने वाला सूर्य लौकिक और वैदिक कार्यों का शुरू करने वाला है। दो पहर तक इसकी तेजी बराबर बढ़ती जाती है। यह सूर्य उस समय आकाश का उज्ज्वल दिया और काल रूपी साँप के मस्तक का रत्न था। लेकिन समय के फेर में पड़कर यह भी अपना हतगौरव होकर पर कटे हुये गिद्ध की तरह पश्चिम में डूबने चला। कहने का मतलब यह है कि सन्ध्या समय में सूर्य की प्रचंड किरणों में प्रखरता कम हो जाती है और यह हत तेज होकर पच्छिम आकाश में डूब जाता है। राजा को संसार की सभी वस्तुओं में उन्नति और अवनति की अमिट-

छाप नजर आती है। कोई भी इस परिवर्तन से बरी नहीं है। स्थिरता किसी में क्यों आने लगी। सभी इस उलट-फेर में पड़ जाते हैं।

(५४) सांझ सोई पट लाल.........कपालिक नाच रह्यो है।
(पृ० ५१)

यह पद्य सत्य-हरिश्चन्द्र नाटक के चौथे अंक से लिया गया है। सन्ध्या हो चली है और पश्चिम गगन में कुछ-कुछ ललाई छा गई। सूर्य की आखिरी किरणें सिमटने लगीं। राजा को प्रतीत हुआ मानो सूर्य पर कटे गिद्ध की तरह पश्चिम समुद्र में गिरा चाहता है। यहाँ कवि-काल को कापालिक मानकर उत्प्रेक्षा करता है। संध्या समय आकाश का रंग लाल हो जाता है। साँझ ही उस कापालिक का लाल कपड़ा है। वह इस कपड़े को कमर में कसे हुये है और सूर्य रूपी खप्पड़ हाथ में लिए हुए है। यह कापालिक जीवों के उच्चाटन मन्त्र पढ़ रहा है। पक्षियों का सायंकालीन कलरव ही मानो यह मन्त्र है। शराब से भरी खोपड़ी ही मानो अभी का उगा चन्द्रमा का नया बिम्ब है! उस कापालिक ने उसे दौड़ कर ले लिया है। और प्राणियों के चैतन्य रूपी पशुओं को काट काट कर यह काल रूपी कापालिक मस्त होकर नाच रहा है। हाथों में नया चन्द्रमा रूपी मद्य से भरी खोपड़ी है। कमर में संध्या रूपी लाल वस्त्र कसा है और मुख में पक्षी का कलरव रूपी उच्चा-टन मन्त्र है। फिर यह काल-कापालिक में मस्ती क्यों न आवे? फिर मस्ती आने पर यह क्यों नहीं मस्त होकर नाच उठे? यहाँ रूपक और उत्प्रेक्षा का अलंकार है।

(५५) सूरज धूम बिना की चिता..........सो साँझ बनाई है।

(पृ० ५२)

यह पद्य सत्य हरिश्चन्द्र नाटक का है। यहाँ राजा हरिश्चन्द्र श्मशान की रखवाली कर रहे हैं। श्मशान को भयंकर तस्वीर उनके सामने है। सूरज डूबने में देर नहीं है। कवि इस सवैये में साँझ को श्मशान मानकर उत्प्रेक्षा करता है। सूर्य सांझ में पश्चिम समुद्र में डूब जाता है और बिना धुएँ की चिता को भी अन्त में जल में प्रवाह कर दिया जाता है। यहाँ सूर्य बिना धुएँ की चिता है, उसे आखिर में लेकर जल में प्रवाह कर दिया गया है। किनारे पर बहुत घने पेड़ उगे हैं। संध्या समय उस पर बैठकर पक्षी कोलाहल कर रहे हैं मानो मरघट में आये हुए स्त्री-पुरुष मृतक के वियोग में धाढ़-मार कर रो-पीट रहे हों। संध्याकालीन अन्धकार ही है धुआं, चन्द्रमा ही खोपड़ी और इधर आकाश में फैले हुए तारागण ही हड्डियां हैं। श्मशान में वध किये गये मनुष्य के खून के इधर-उधर लाल धब्बे हैं, यही मानो पच्छिम गगन की लालिमा है। रात में घूमनेवालों के आनन्द के लिए मानों समय ने इस संध्याकाल को श्मशान के रंग में रङ्ग दिया। सचमुच ही सन्ध्या क्या है, श्मशान का प्रतिरूप है।

(५६) रूरूआ चहुँदिसि.........रर तुमुल मचावई।

(पृ० ५३)

चारों ओर रूरूआ (एक प्रकार का उल्लू) शोर मचा रहा है जिसकी आवाज सुनकर स्त्री-पुरुष भयभीत हो उठते हैं। उल्लू

भी अपने दोनो पंखों को फट.फटा कर तेज आवाज में बोल रहा है। चारो ओर अंधियाला है जिसके कारण (मांस लेने के लिए) कौए और चीलें (एक दूसरे पर) गिरती हैं और शब्द करती हैं। पास में ही (चिता की) भयङ्कर अग्नि को देख कर गिद्ध, गरुड़ और हड़गिन्न भाग खड़े होते हैं (माँस लेने के लिए नहीं झुकते हैं)। सियार रोते हैं, नदी (की धारा में गरज है) गरजती है, कुत्ते भूँक कर भयभीत करते हैं। इनके साथ मेढ़क और झींगुरों का रोना (यानें झुनझुनाहट) एक साथ मिल जाता है तब एक तीखा कोलाहल हो जाता है (अर्थात् बड़ा शोर उत्पन्न हो जाता है)।

(५७) पिशाचों का क्रीड़ा-कौतुक……विहार कर रही है।
(पृ० ५४-५५)

प्रस्तुत संदर्भ में सत्यवादी हरिश्चन्द्र ने श्मशान का भयानक दृश्य अंकित किया है। वहाँ भूत-प्रेत, पिशाचिनी, डाकिनी आदि सभी परस्पर आमोद करते और गाते-बजाते हैं। वास्तुतः वहाँ पर उन सबों की क्रीड़ाएँ भी देखने योग्य हैं। इनके बड़े-बड़े बिखरे हुए बाल इस तरह खड़े हैं जैसे कोई काली-सी झाड़ी हो। इनके हाथ-पांव लम्बे, दांत भयंकर और जीभ लम्बी हैं। ये सब अपने बालों को बिखेरों, लम्बे दाँतों और लम्बी जीभों को निकाल कर इधर-उधर दौड़ते हैं और किलकारियाँ मारते हैं। इन सबों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि साक्षात् भयानक रस अपनी सेनाओं के संग घूम रहा है। वास्तव में उस समय का दृश्य अत्यन्त ही भयानक है।

(५८) टूट टाट घर.........सुख के लूट। (पृ० ५६)

यह पद्य सत्य-हरिश्चन्द्र नाटक के चौथे अङ्क से लिया गया है। राजा हरिश्चन्द्र श्मशान में गस्ती लगा रहे हैं। बरसात का दिन है। पिशाचों की विकराल सूरत भय उपजाने वाली है। उनकी डरावनी चाल और कुढंगे आचरण को देख कर राजा का हृदय कुढ़ जाता है। लेकिन कर्त्तव्य पर सब कुछ उत्सर्ग करने वाले राजा के सामने ये सब कुछ मूल्य नहीं रखते। फिर इस दुःख की दशा में अपनी प्यारी शैव्या की याद हो जाती है। दुःख के दिनों में अपनी प्यारी पास रहे तो दुःख की ज्वाला बहुत कुछ कम लगती है। कहा भी है कि सुख के सभी साधन की कमी होने पर अपने प्रियतम के पास रहने से सुख है। घर का छप्पर टूटा हो, घर चू रहा हो और खाट भी टूटी हो कुछ परवाह नहीं। इतने पर भी यदि प्यारी की बाँह रूपी तकिया पर शिर रख सोने पर जो सुख मिलता है वह सुख अन्यत्र तकिया पर नहीं मिल सकता। यहाँ सुख की लूट सी मच जाती है।

(५९) चपला की चमक चहुँधा.........मसान बनि आयो है। (पृ० ५६)

बिजली की चमक ही मानो चारों ओर में इधर-उधर जलने वाली चिता है। चिता से चिनगारियां निकलती हैं। जगमगाती हुई जुगनू समूह उसकी फैलती हुई चिनगारियां हैं। श्मशान में फैली हुई हड्डियां ही मानों वर्षा की मौसिम में इधर-उधर उड़ने वाले बगुलों की कतारें हैं। श्मशान की काली भूमि बरसात के काले २ बादल से हैं और वीरवधूटी का लाल कीड़ा ही श्मशान

की लहू की बूंदें हैं। ये जमीन में इधर-उधर सटी है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कहते हैं वर्षा के जल की धारा ही वहाँ आंसू सी बह रही है और श्मशान में दुखियों का रोना पीटना है वही मानों बरसात के मेढ़कों का शोर है। मरे हुए मनुष्यों को जो वियोग से दुखी हैं जनाने के लिये यह पापी बरसात श्मशान बनकर आया है।

(६०) इन्द्र काज हूँ सरिस..................प्रतिभट ताको होय
(पृ० ५७)

इन्द्र और काल के समान वीर भी मेरी आज्ञा का उल्लंघन करें याने कफन बिना दिये मुर्दा जला लें तो यह मेरी बलवाली बाँहें उससे युद्ध किये बिना न रहें। याने बलपूर्वक बिना कफन दिये मुर्दा जलाने वाले से लड़ने के लिये मैं कटिबद्ध हूँ।

(६१) सहत विविध दुःख.................बच टारत नाहिं।
(पृ० ५८)

यह पद्य सत्यहरिश्चन्द्र से लिया गया है। धर्म कपालिक के वेश में श्मशान में आता है। राजा की दर्दनाक दशा को देख कर वह आश्चर्य चकित होता है। उसका निष्कर्ष है कि महात्याओं का स्वभाव ही ऐसा रहता है। जो सच्चे हैं वे लोग तरह-तरह की तकलीफें सहने पर भी अपने सत्यपथ से भ्रष्ट नहीं होते। अनेकों दुःखों को झेलने पर भी सचाई की अपनी टेव नहीं छोड़ते। इसमें हो सकता है प्राणोत्सर्ग करना पड़े। लेकिन महानुभाव तनिक भी विचलित नहीं होते। संसार में अनहोनी बातें होनें लगें लेकिन सत्यवीर लोग अपनी बात से

अलग नहीं होते। यह सम्भव है कि सूरज भूलकर पूर्व दिशा में उगने के बजाय पच्छिम में उग जाय और विन्ध्याचल ऐसा महान पर्वत पानी पर तैरने लगे, परन्तु सत्य-वीर सत्यपथ नहीं छोड़ सकते।

(६२) वा चकई को भयो..............पिशाचिनी प्राची।
(पृ० ६४)

यह पद्य सत्यहरिश्चन्द्र नाटक के चौथे अंक से लिया गया है। श्मशान की रखवाली करते-करते राजा ने सारी रात बिता दी। राजा को डिगाने के लिये बहुत बातें हुईं लेकिन राजा सभी में सफल खेलाड़ी की तरह साफ निकलता गया। सूर्य निकलने को है। राजा को उसकी लालिमा में पूर्व दिशा के क्रोध की लाली नजर आती है। इस पद्य में सुबह की बड़ी ही अच्छी सीनरी खींची गई है।

रात भर चकवा-चकई दोनों अलग रहे, भोर होते ही दोनों के मिलने का समय आया। सामने वृक्ष पर बैठी चकई का चितचाहा हुआ। वह चारों ओर देखकर खुशी-खुशी नाचने लगी। चन्द्रमा की चाँदनी मन्द हो गई। रात की ज्योति को मानो यम ने माँग लिया है याने रात का अन्त हो गया। देव कवि का कथन है—बैरिन चिड़ियां चहचहाने लगीं। संयोगिनी नारियों की सम्पत्ति कच्ची हो गई अर्थात् उनके संयोग-सुख का शेष सा हो गया। अब संयोगिनी स्त्रियाँ वियोगिनी बन गईं। पूर्व दिशा पिशाचिनी-सी है। इसने मानो वियोगिनी स्त्रियों का लहू पीकर ही अपना मुख लाल कर लिया है। उषा की ललाई जो

प्रातःकाल में पूर्व दिशा में फैल जाती है उसी पर कवि की अनोखी उत्प्रेक्षा है।

(६३) जेहि सहसन परिचारिका……भोगत कष्ट अनेक।

(पृ० ६५)

यह पद्य सत्यहरिश्चन्द्र नाटक के चौथे अङ्क से लिया गया है। रात बीत चली है। पूर्व से उषा की लालिमा फैल आई है। राजा अपनी गस्ती में बरसात की भयावनी रात काट सके। परन्तु उनके कल्पना-संसार के सामने रानी और रोहिताश्व की बरसात की रात का चित्र भयानक है। रानी रो-रोकर दिन बिताती होगी। निरीह बालक भी बिना बिके दास बना है। जिस बालक रोहिताश्व को दाई-लौंड़िया हाथों-हाथ रखती थीं, दाई लौंड़ियाँ बे-शुमार इस पर रहती थीं, आज वही गुलामों के बच्चों के साथ धूल में लोटता है। जिसकी आज्ञा संसार के राजा लोग सिर पर धारण करते थे याने जिसकी आज्ञा का पालन फौरन करते थे, आज ब्राह्मण विद्यार्थी उस पर हुकूमत करते हैं। ईश्वर सच-मुच ही बड़ा कठोर है। फिर राजा के मुख से बरबस निकल आया कि रोहिताश्व बिना बेचे, बिना यों ही दिये और संसार का ज्ञान न रखते हुए दैव-रूपी सर्प से दंशित हुआ। इस तरह वह बहुत कष्ट सह रहा है। अर्थात् घटना चक्र में पड़ कर रोहिताश्व बिना संसार के ज्ञान रखे निरीह होने पर भी तकलीफ में पड़ गया है।

(६४) अरे, इस लड़के में………अनाथ किया है। (पृ० ७०)

यह राजा हरिश्चन्द्र की उक्ति है। रानी शैव्या अपने मृत पुत्र रोहिताश्व का शव लेकर श्मशान पर करुण-विलाप कर रही है। इस समय तक राजा हरिश्चन्द्र को यह ज्ञात नहीं है कि यह शव उनके पुत्र रोहिताश्व का है। शव को देखकर राजा-हरिश्चन्द्र कहते हैं कि यह बालक तो कहीं का सम्राट होने योग्य था क्योंकि उनके प्रत्येक लक्षण इसमें विद्यमान हैं। वस्तुतः यह किसी ऊँचे घराने का चिराग था। इसकी मृत्यु हो जाने से उसके घर की रोशनी हमेशा के लिए गायब हो गई है। जिस शहर में इसका जन्म हुआ होगा, वह आज अनाथ एवं शून्य सा दृष्टि गत होता होगा। कहने का तात्पर्य यह है कि उसकी आकृति इस बात का परिचायक है कि यह बालक अवश्य ही किसी राज घराने का युवराज रहा होगा।

(६५) जो कुछ हमने आज·········करते बुरा फल मिले

(पृ० ७१)

रानी शैव्या की उक्ति 'भगवान विश्वामित्र! आज तुम्हारे सब मनोरथ पूरे हुए'—को सुनकर सत्यवादी हरिश्चन्द्र चौंक उठे और अब दोनों विलाप करने लगते हैं। सत्यधर्म पालन के हेतु ही आज उन्हें यह दृश्य देखना पड़ा। सत्यहरिश्चन्द्र को जब बात मालूम होती है तब वे अपने झूठे गर्व पर रोने लगते हैं। वे इस बात का अनुभव करते हैं कि यह सब उनके पापमय कर्मों का फल है। उन्हें अपने सत्यधर्म पर अटल रहने के कारण आत्मग्लानि होती है, वे फाँसी लगाकर आत्महत्या करने को उतारू हो जाते हैं। यो तो अपनी बुद्धि-बल के अनुरूप उन्होंने हमेशा सत्यधर्म

का पालन किया लेकिन उन्हें बुरा फल मिला। उनकी दृष्टि में उनका सत्यधर्म पाप मालूम पड़ता है। परन्तु राजा हरिश्चन्द्र सत्ययुग के व्यक्ति ठहरे, जो धर्म युग समझा जाता था। अच्छे कर्म का बुरा परिणाम होना उस युग के प्राकृतिक नियम के विरुद्ध था। आज के कलयुग में भी अच्छे कर्म का अच्छा ही परिणाम होता है और बुरे का बुरा। वस्तुतः इसीलिए ,कलियुग 'कर-युग' समझा जाता है। नाटककार ने यह बतलाया है कि यह कलियुग नहीं है कि अच्छे कर्मों के करने पर भी मनुष्य को बुरे फल की प्राप्ति हो—यह प्रामाणिक नहीं

(६६) हा ! सूर्य-कुल आलबाल......कि पुत्र शोक देखा (पृ० ७२)

प्रस्तुत अवतरण में रोहिताश्व की मृत्यु के पश्चात् राजा हरिश्चन्द्र के करुण-विलाप का रूप प्रदर्शित किया गया है। रोहिताश्व को पहचान कर उसके वियोग से फटते हुए कलेजे को थाम कर विलाप करने लगते हैं। उस समय भी उनका सत्य अटल एवं अविचल रहा। वे अपने पुत्र को सम्बोधित कर कहते हैं कि हे बेटा ! अब तक तुम सूर्यवंश की क्यारी के नये पौधे थे, इस हरिश्चन्द्र के हृदय में उसके लिए आनन्द था और रानी शैव्या के तुम एकमात्र आधार थे। तुम्हारे माँ-बाप पर विपत्ति का पहाड़ आया पर उस समय तुम विपत्ति का साथी बनकर अपने कुल का अमूल्य रत्न बने रहे। हा ! पुत्र रोहिताश्व; तुम्हें क्या हो गया है। तुम अपने माता-पिता को इस दशा में छोड़कर निर्मम हृदय बनाकर क्यों चल बसे। दुनियाँ कहती है कि डोम के यहाँ

बिकजाने पर मैंने चाण्डाल-वृत्ति ग्रहण करली। आज मेरे मुख से यह निकलता है कि वस्तुतः तुम्हारे माँ-बाप चाण्डाल हैं, नहीं तो पुत्र-शोक देखने का अवसर नहीं मिलता। जो चाण्डाल-सा दुष्कर्म करता है। उसे ही पुत्र-शोक देखने को बदा रहता है। मैं बहुत बड़ा पापी हूँ। अब मैं इस संसार में अपना मुख कैसे दिखाऊगाँ।

(६७) तनहि वेचि दासी.........सपने सुख नाहीं

(पृ० ७४)

पुत्रशोक से रानी पागल होकर इधर-उधर दौड़ लगाती है। वह गंगा में कूदकर आत्महत्या करना चाहती है तब आड़ से राजा हरिश्चन्द्र उसे सावधान करते हुए कहते हैं कि तुम तो अपने शरीर को दूसरे के हाथ में वेच कर दासी बनी हो। बिना अपने स्वामी (मालिक) की आज्ञा के आत्महत्या करोगी। पाप कर्म नहीं करो। यह तुम्हारा धर्म नहीं है। इसे अपने मन में विचार करो। जो व्यक्ति दूसरे के अधिकार में रहता है उसे स्वप्न में भी सुख की उपलब्धि नहीं होती इसलिये तुम्हें विपत्ति में भी धैर्य नहीं खोना चाहिये।

(६८) अहो धैर्यमहो सत्यमहो......लोकोत्तरं कृतम्।

(पृ० ७५)

यह धैर्य धन्य है, धन्य है यह सत्य, धन्य है यह दान और बल! हे राजा हरिश्चन्द्र! तुमने तो सब कुछ अलौकिक कर डाला।

(६९) हाय! इस कुसमय में.......ब्राह्मणों का पाखण्ड है।

(पृ० ७५)

राजा हरिश्चन्द्र चाण्डाल के दास हैं और उनका काम कफन माँगना है। राजा रानी शैव्या से कफन मांगते हैं। इस धर्म-पालन को देख देवतागण उनके धैर्य की प्रशंसा करने लगते हैं। उनकी प्रशंसामय श्लोक को सुनकर शैव्या कुछ समय के लिए चकित होती है और वह सोचती है कि ऐसे बुरे समय में भी उसके स्वामी की कौन प्रशंसा कर रहा है ? फिर भी सभी कर्त्तव्यों के पालन करने पर भी उसे ऐसी विकट परिस्थिति का सामना करना पड़ता है, उसकी स्तुति से उसे कुछ लाभ नहीं। शैव्या की दृष्टि में शास्त्र में वर्णित नियम सिर्फ देवताओं तथा ब्राह्मणों की चालाकी है, पाखण्ड है। उनका कोई भी अच्छा परिणाम नहीं मिलता।

(७०) प्रिय ! धीरज धरो……कम्बल हमको दो। (पृ० ७६)

रानी शैव्या अपने स्वामी को पहचानती है और उनके कफन माँगने पर अपनी विवशता प्रकट करती है। पर कर्त्तव्य-निष्ठ राजा अपने पथ से एक पग भी पीछे नहीं हटते हैं। वे उसे धैर्य सहन करने का प्रवचन देते हैं। शीघ्र ही आधा कम्बल फाड़ कर देने को कहते हैं। उनका कहना है कि अगर प्रातःकाल में कोई हम दोनों को देख लेगा तो जान जायगा कि यही राजा हरिश्चन्द्र हैं तो हम अपने को छिपाकर भी अपनी लज्जा बचा नहीं सकते। इसलिए कलेजा पर पत्थर रखकर सभी कामों को नियमित रूप से करना ही पड़ेगा।

(७१) जिस हरिश्चन्द्र ने उदय……आधा कपड़ा फाड़ दो। (पृ० ७६)

यह राजा हरिश्चन्द्र की उक्ति है। उनका राज्य सारी पृथ्वी पर था जहां सूर्य उदय होकर अस्त नहीं होता था। इतना बड़ा राज्य एक ब्राह्मण को दान रूप में दे देने में तो उन्हें कोई दुःख न हुआ। आज शैव्या कफन के फाड़ देने से पुत्र के नंगे हो जाने के रूप की ओर राजा हरिश्चन्द्र को आकृष्ट करती है तो राजा को एक विकट परिस्थिति का सामना करना पड़ता है। राजा नौ-छौ गिनने लगते हैं। परन्तु वे यह नहीं चाहते कि आधे गज कपड़े के लिए उनका धर्म उनसे छूट जाय। इसलिए वे इस छोटी सी वस्तु के लिए अधर्म का पल्ला नहीं थामने को कहते हैं और आधा गज कफन फाड़ कर देने को कहते हैं।

(७२) भगवान ! मेरे वास्ते.......सच्चिदानन्दघन साक्षात् आप।
(पृ० ७७)

यह राजा हरिश्चन्द्र की उक्ति है। सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र पर विपत्ति के पहाड़ की अन्तिम सीमा को आते देखकर पृथ्वी कांपने लगती है। चारो ओर तोप छूटने का-सा बड़ा शब्द और बिजली का-सा उजाला होता है। नेपथ्य में बाजे बजने लगते हैं। जय जय की ध्वनि होने लगती है। फूल बरसते हैं। स्वयं भगवान पृथ्वी पर साक्षात् आ खड़े होते हैं। उन्हें राजा हरिश्चन्द्र को उद्धार करना पड़ता है। परन्तु इसके लिए राजा को रंचमात्र भी गर्व नहीं है क्योंकि उनके द्वारा सम्पादित कार्य सिर्फ कर्त्तव्य की प्रेरणा के कारण सफलीभूत हुआ। यह तो उनका पावन-कर्त्तव्य था। श्मशान भूमि और वह भी मृत्युलोक पर भगवान का दर्शन सिर्फ एक मनुष्य को उद्धार करने के लिए होता

है। वस्तुतः परब्रह्म सच्चिदानन्द का पृथ्वी पर आगमन राजा हरिश्चन्द्र के लिए एक आश्चर्य की बात है।

(७३) खल गनन सों सज्जन......अमृतवाणी सब कहै। (पृ० ८०)

यह पद्य सत्य हरिश्चन्द्र नाटक के चौथे अङ्क से लिया गया है। यह पद्य नाटक के अन्त का भरत वाक्य है। सत्य का सफल खेलाड़ी राजा हरिश्चन्द्र सत्य-पालन में साफ निकल आया। भगवान् ने वर मांगने के लिये राजा को मजबूर किया। सत्य और कर्त्तव्य पालन में सन्तोष करने वाला अखण्ड सन्तोषी राजा क्या माँगे? फिर भी निष्काम राजा न भरत वाक्य को सफल होना माँगा। "दुष्ट लोगों से अच्छे लोग भी दुःखी न हों। ईश्वर में लोगों की भक्ति हो जाय। दूसरे धर्म से लोगों का पिण्ड छूटे। भारतवर्ष अपना बल अथवा अधिकार प्राप्त करे। देश से टैक्स का दुःख मिट जाय। विद्वान लोग ईर्ष्या छोड़ दें। नारियां पुरुषों के समान गुणवती हों। सारा संसार सुखी हो। सब लोग ग्राम्य कविता को छोड़ कर सुकवियों की अमृत मयी कविता का रसास्वादन करें।" यह इच्छा राजा ने प्रकट की। भगवान ने प्रार्थना स्वीकार की।



समालोचनात्मक प्रश्नोत्तर

[१] प्रश्न—काव्य का विभाजन कर यह बतलाइये कि श्रव्य काव्य की अपेक्षा दृश्य काव्य को महत्व अधिक क्यों दिया गया है?

उत्तर—टीका-भाग की पृष्ठ संख्या १ से ३ तक पढ़िये।

[२] प्रश्न—नाटक का नाम 'रूपक' क्यों पड़ा? समझाईये।

उत्तर—टीका-भाग की पृष्ठ संख्या ३ पढें।

[३] प्रश्न—दृश्यकाव्य से क्या समझते हैं? उसके भेद और प्रभेद को लिखें।

उत्तर—टीका-भाग पृष्ठ संख्या २ और ४।

[४] प्रश्न—भारतीय और पाश्चात्य नाट्यशास्त्रियों के अनुसार नाटक के कितने तत्व हैं? भारतीय आचार्यों द्वारा मान्य-तत्वों का विवेचन करें।

उत्तर—देखिये पेज ४ से ८ तक।

[५] प्रश्न—नाटक सुखान्त है या दुखान्त, इसका पता आप कैसे लगायेंगे।

उत्तर—देखिये पेज ८-६।

[६] प्रश्न—नायक कितने तरह के हैं? लिखें।

उत्तर—देखिये पेज ८।

[७] प्रश्न—नाटक की कथावस्तु के लिए किन-किन तत्वों की जरूरत होती है—उसका विवेचन करें।

उत्तर—देखिये पेज ४ से ७।

[८] प्रश्न—नाटक में किस रस की मुख्यता दी गई है और

किसको त्याज्य समझा गया है।

उत्तर—देखिये पृष्ठ संख्या ८।

[९] प्रश्न—हिन्दी नाट्यसाहित्य के उद्भव और विकास पर एक निबन्ध लिखिये।

उत्तर—पेज १५ से २८।

[१०] प्रश्न—भारतेन्दु-कालीन नाटकों की विशेषताएं क्या थीं और उस समय के नाटककारों में मुख्य-मुख्य कौन थे एवं उनकी रचनाओं का नाम लिखें।

उत्तर—पेज २०-२१ पढ़ें।

[११] प्रश्न—भारतेन्दुजी का जीवन-चरित्र संक्षेप में लिखें (P.U. 1935)

उत्तर—टीका-भाग पेज २६ से ३१ तक पढें।

[१२] प्रश्न—भारतेन्दु की रचनाओं का एक सूचीपत्र प्रस्तुत करें।

उत्तर—देखिये पेज ३१

[१३] प्रश्न—भारतेन्दु की काव्य-साधना पर एक छोटा-सा निबन्ध लिखें।

उत्तर—देखिये पेज ३२ से ३४ तक।

[१४] प्रश्न—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की साहित्य सेवा की आलोचना करें (P.U. 1933 A)

उत्तर—'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' शीर्षक निबन्ध को पढ़ें।

[१५] प्रश्न—नाटक की रचना किस उद्देश्य से की गई है—यह बतलाते हुए सत्य हरिश्चन्द्र नाटक की कथा संक्षेप

में लिखे और बतलावें कि इससे हमें कौन-सा संदेश मिलता है, (P.U. 1929 A; 1931 A)

उत्तर—(i) उद्देश्य और संदेश के संबंध में देखिये पेज– ।
(ii) नाटक की कथा के लिए पढ़ें पेज ।

[१६] प्रश्न—यह बतलाओ कि हिन्दी संसार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का ऋणी क्यों है ? (P.U. 1934 A & S)

उत्तर—'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' शीर्षक निबन्ध पढ़ें ।

[१७] प्रश्न—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की हिन्दी सेवाओं तथा काव्य-प्रतिभा का संक्षिप्त परिचय दीजिये(P.U. 1936 S)

उत्तर—पृष्ठ संख्या २६ से ३६ तक ।

[१८] प्रश्न—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी की सेवा किस प्रकार की है । उन के समय से हिन्दी साहित्य का नया-युग किस प्रकार आरंभ होता है । (P.U. 1941 S)

[१६] प्रश्न—(i) नारद ने इन्द्र से हरिश्चन्द्र के गुणों का जो वर्णन किया है उसे संक्षेप में लिखें । (P-U. 1930 S)

(ii) इन्द्र–नारद-संवाद में नारद ने हरिश्चन्द्र की स्तुति में जो कुछ कहा उसका सारांश अपने शब्दों में लिखें (P.U. 1945 S)

(iii) नारद ने इन्द्र से हरिश्चन्द्र के विषय में जो बातें कही है उसे संक्षेप में लिखिये । (P.U. 1938 A)

उत्तर—इन्द्र का हृदय हरिश्चन्द्र की ख्याति सुनकर पहले ही से क्षुब्ध है। इसी अवसर पर नारद जो संसार में घूमने वाले और जगह-जगह की खबर रखने वाले हैं, उनके पास आ गये। इन्द्र के शिष्टाचार से नारद उतने सन्तुष्ट नहीं होते। कारण, इन्द्र के शिष्टाचार में कुछ बनावट की बू है। नारद जी ने कहा मैं अयोध्या से आ रहा हूँ, राजा हरिश्चन्द्र धन्य हैं'। लगे हाथों नारद जी ने हरिश्चन्द्र की खासी तारीफ की। इन्द्र के अभिमानी हृदय को चुप-चाप सुनना पड़ता है। इन्द्र अपने मन को अपनी इस अयोग्य कृति पर किसी तरह समझा लेते हैं। नारद जी इन्द्र की आकृति देखकर इन्द्र के मन की बातें भाँप जाते हैं। संसार की सैर करने वाला रमता योगी नारद जान कर इन्द्र के सामने राजा हरिश्चन्द्र की धार्मिकता, गृहचातुर्य, कर्त्तव्य-परायणता, अतिथि-सत्कार आदि गुणों का वर्णन करते जाते हैं। इन्द्र के पूछने पर वे कहते हैं कि राजा का गृह-चरित्र दूसरे के लिऐ उदाहरण बनाने के योग्य है। फिर नारदजी इनके चरित्र की मानो व्याख्या-सी करने लगते हैं। राजा हरिश्चन्द्र उदार हैं, महाशय हैं और उनके गुण उनमें सहज हैं। राजा के गुण-गान में नारदजी को एक खासा मजा सा मिल रहा है। ये हरिश्चन्द्र की दान-शीलता का वर्णन भी खास तौर पर कर देते हैं। ये हरिश्चन्द्र के गुणों पर लट्टू हैं। हरिश्चन्द्र की ईश्वर-भक्ति-विपत्ति में धैर्य्य, सम्पत्ति में निराभिमान और समय का सम्यक् उपयोग आदि गुण अनुकरणीय हैं। इन्द्र के कहने पर क्या हरिश्चन्द्र सच-मुच एक नम्बर का दानी है, नारदजी ने हरिश्चन्द्र का सहज-सा अभिमान वचन कह सुनाया।

चन्द टरै सूरज टरै, टरै जगत व्योहार।
पै दृढ़ श्री हरिचन्द के, टरै न सत्य विचार॥

इतना सुनकर इन्द्र ने मन में हरिश्चन्द्र को सत्य-भ्रष्ट करने की ठान ली। हालाँ कि नारद के कहने मुताबिक राजा को स्वर्ग की इच्छा नहीं है। परन्तु इन्द्र को राजा के गुणों के कारण बहुत खटका है। जब नारद से इन्द्र ने राजा की सत्य-परीक्षा करने की बात पेश की तो नारद से भड़क गये। नारदजी ने इन्द्र को उपदेश देना शुरू किया। इन्द्र की बात बेकार हुई। इन्द्र ने अपनी बात को फेर लिया। इसी समय द्वारपाल विश्वामित्र के आने की खबर देता है। नारदजी उठ चुके ही थे। उनके आने पर चल खड़े हुए।

[१६] प्रश्न—'सत्य-हरिश्चन्द्र' नाटक में समाविष्ट गंगा की छटा का वर्णन अपने शब्दों में करें। (P. U- 1943 A)

उत्तर—हरिश्चन्द्र अपने दुःख के दिनों में काशी आये हैं। मकानों की अनुपम सज-धज और गङ्गा की छटा बरबस उनको लोट-पोट कर देती है। दृश्य इतने लुभावने और हृदय को शान्ति देने वाले हैं कि राजा भूले से हो जाते हैं। महादेव की काशी गङ्गा के कारण धन्य हो गई है। उस पर, उसके घाटों की छवि, गगन-चुम्बी आलीशान मकानों की शान, दूध, की धोई सी उजली दिवालें और गंगा की पवित्र तरंगें किसी भी सहृदय को कवि की आँखें दे सकती हैं। गंगा के घाट पर झुण्ड के झुण्ड नर-नारी स्नान के लिए जुट जाते हैं। लोल लहरियां राजा को गंगा का इतिहास सामने रख देती है। घाट पर

क्या है, लोग कैसे स्नान कर रहे हैं और गंगा और काशी हिन्दू जगत को कैसी प्यारी है इस दृश्य में सभी साफ सिनेमा की तस्वीर की तरह आंखों के सामने आती है और मन को मुग्ध करती है। स्नान करने के बाद श्रद्धालु मन्दिरों में पूजा करते हैं। फिर घंटे की ध्वनि सुनकर लौटते हैं। स्त्रियाँ जल में प्रेमपूर्वक स्नान करती हैं। उनका सात्त्विक जल-विहार भी यहीं मिलेगा। 'बिहारी' की नायिकाओं की जलकेलि कुछ और है। लेकिन हरिश्चन्द्र का यह जल-बिहार बड़ा मार्मिक है।

[२०] प्रश्न—सत्य हरिश्चन्द्र नाटक के अनुसार श्मशान घाट का संक्षेप में वर्णन करें? (P. U. 1936S, 1934A, 1937A)

उत्तर - राजा हरिश्चन्द्र डोम के हाथ बिके हैं। उन्हें श्मशान घाट की रखवारी करने को मिला है। वे कम्बल ओढ़े और एक मोटा लट्ठ लिए हुए दिखाई पड़ते हैं। श्मशान घाट के हृदय विदारक दृश्य उनके नेत्रों के सामने नाच रहे हैं। कैसे भयंकर दृश्य हैं। कहीं तो मुर्दों पर चोंच बाए गिद्ध मड़रा रहे हैं। कहीं चट-चट आवाज करती हुई चिताएं धधक रही हैं। उनसे चिराईन सी गंध निकल रही है। उनसे चरबी पिघल-पिघल कर बह रही है। कहीं तो सियार गले में गला मिला कर रो रहे हैं। न जाने वे किसकी लाश पर आँसू बहा रहे हैं। उनकी आवाज कर्ण-कटुसी मालूम हो रही है। कहीं तो किसी शव पर बैठ कर कौए आँखें निकाल रहे हैं। किसी लाश को सियार खींच रहा है, किसी लाश को गिद्ध और चिल्ह नोच-नोच कर खा रहे हैं।

यहाँ पर धनी और गरीब में कोई भेद नहीं दीख पड़ता। हरिश्चन्द्र के परोपकारी हृदय में यह भाव उठता है कि इन शवों से इन पशु-पक्षियों का तो पेट भर रहा है। क्या इतना थोड़ा है। मनुष्य के शव की भयङ्कर गति देखने पर संसार से विराग सा हो जाता है। वही शरीर क्या रहता है और फिर क्या हो जाता है। मृत्यु बड़ी ही साम्यवादी है। श्मशान देवी को यहाँ का दृश्य प्रिय है। इनकी सजावट भी बड़ी ही विचित्र और डर उपजाने वाली है। यह सचमुच ही बीभत्स उपचार चाहने वाली है। सन्ध्या समय का श्मशान दिन के श्मशान से और ही डरावना रूप धारण करता है। काली रात का आगमन, वर्षा की नदी की तेज धारा, पीपल पर बैठे कौओं का काँव-कांव, मंडूकों और अन्य पशु-पक्षियों का डरावना शब्द, हृदय में भय का संचार कर देते हैं। फिर पिशाचों और डाकिनी गण का कुढङ्गा नाच भयङ्करता को बहुत बढ़ा देता है। कवि ने इन पिशाचों और डाकिनियों का यहां चित्र बड़ा ही डरावना खींचा है। उनका व्यापार भी बेहद घृणा और डर देने वाला है। श्मशान का दृश्य कवि के मानस की उपज है। श्मशान के वर्णन पढ़ने से पाठक के हृदय में मनुष्य जीनव की फिलौसफी नजर आती है। इसकी दुर्गन्ध-मय हवा, सड़ी-गली वस्तु और वहां के डरावने व्यापार सभी पाठक को मुग्ध करते हैं। यहाँ श्मशान वर्णन बड़ा ही रोचक और हू-बहू हुआ है।

[२१] प्रश्न—हरिश्चन्द्र नाटक में करुणा रस की प्रधानता तथा दृश्य कौन हैं? और क्यों?

उत्तर—ऐसे तो सत्य हरिश्चन्द्र नाटक में सभी रसों का कुछ-न-कुछ समावेश अवश्य है, मगर करुणा रस की प्रधानता है। बाबू साहब जी ने करुणा जनके दृश्यों का खाका खींचने में कमाल का काम किया है। "हरिश्चन्द्र सा चक्रवर्ती राजा चन्द रुपयों के लिए दर-दर फिरता है। क्या यह दुःखोद्घाटक तथा करुणा-जनक दृश्य नहीं है? कौन ऐसा सहृदय होगा जिसके नेत्रों से आंसू की धारा न बह निकलेगी। शैव्या सी प्यारी और अनु-गामिनी स्त्री बिक रही। रोहिताश्व सा दुलारा बेटा छुट रहा है। बस यही! देखो, करुणा रस का लबालब प्याला। ऐसे दृश्य से पत्थर तो भी पसीज सकता है। तो मानव हृदय का क्या कहना है। राजा हरिश्चन्द्र एक डोम के हाथ बिक रहे हैं। उन्हें श्मशान घाट की रखवाली मिलती है। कैसा नीच काम है। एक राजा एक डोम का नौकर बने; वह भी श्मशानघाट की रखवाली के लिए। धन्य है परमात्मा तेरी अद्भुत लीला। यह दृश्य क्या कम हृदय विदारक है?

अध्यापक के घर शैव्या को तरह-तरह की यातनाएँ सहनी पड़ती हैं। मामूली-मामूली चीजों के लिए रोहिताश्व सा प्यारा बेटा ललच रहा है। माता का कलेजा काढ़ रहा है। माता दिल मसोस कर रह जाती है। रोहिताश्व को शर्प डश लेता है रोहि-ताश्व मर जाता है। शैव्या के सामन एकलौता पुत्र की लाश पड़ी है। शैव्या छाती फाड़-फाड़ कर क्रंदन कर रही है। चारो ओर सन्नाटा छा गया है। पेड़-पौधे भी आंसू बहा रहे हैं। हवाएँ भी 'हाय-हाय' का शब्द कर रही हैं। इधर देखो! दर्शकों के नेत्रों से

भी आंसू की झड़ी लगी है। ऊँह, कैसा करुणाजनक दृश्य है। कलेजा टुकड़ा-टुकड़ा हुआ जा रहा है।

क्यां! शैव्या लाश उठा रही है! क्या करेगी! श्मशानघाट पर ले जा रही है। किस लिए! क्या जलाने के लिए? तो कफन कहाँ है? बिना कफन के? ऊँह! राजा का लड़का! और बिना कफन के जलाया जाय। बस रहने दो अब नहीं सहा जाता है। कलेजे! तुम टुकड़े-टुकड़े क्यों नहीं हो जाते? तुम में कितनी सहने की हिम्मत है।

लाश के साथ शैव्या श्मशानघाट पर पहुँचती है। हरिश्चन्द्र घाट के रखवाले हैं। कफन वसूल करते हैं। शैव्या लाश को लिए चली आ रही है। उसकी आंखों में पावस की घटा छाई है। आंसू की वर्षा हो रही है। हरिश्चन्द्र शैव्या को पहचानते हैं। अपने प्यारे पुत्र की मृत्यु पर शोक प्रकट करते हैं। उस समय का दृश्य देखकर जिसका वज्र सा भी दिल होगा वह भी आँसू बिना बहाए नहीं रह सकता है। यही दृश्य सबसे करुणाजनक है। मगर हरिश्चन्द्र साधारण मनुष्य के दुःख में पड़ कर किंकर्त्तव्य बिमूढ़ नहीं बनते। ऐसे समय में भी उन्हें अपने कर्त्तव्य का खेयाल है। शैव्या से मृतक शरीर को जलाने का अनुरोध करते हैं। मगर शैव्या के पास कफन नहीं है। लाश जलाई जाय तो कैसे? शैव्या लाश जलाने की कोशीश करती है। हरिश्चन्द्र बिना आधा कफन लिए लाश को नहीं जलाने देते हैं। देखो! शैव्या की आंखों में करुणा की दरिया उमड़ रही है। उसकी धार आँसू के रूप में निकल रही है। हरिश्चन्द्र का कैसा कलेजा है।

जरा भी नहीं पसीजता है। धन्य है राजा हरिश्चन्द्र और उनकी अटल प्रतिज्ञा तथा कर्त्तव्य परायणता।

जिस समय हरिश्चन्द्र शैव्या से कफन मांगते हैं और शैव्या लाचार होकर आधी आँचल फाड़ कर देती है, यही दृश्य सब से करुणाजनक हैं। इसका असर दर्शकों पर बहुत गहरा पड़ता है। दर्शकों के नेत्रों से आंसू बह निकलते हैं। किसी-किसी के मुँह से तो इस कठोरता के लिए राजा हरिश्चन्द्र के प्रति अपशब्द भी निकल आते हैं। इसी वजह से यह दृश्य सबसे करुणाजनक समझा जाता है।

[२२] प्रश्न—राजा हरिश्चन्द्र को सत्य-पालन में क्या-क्या झेलने पड़े? प्रकाश डालिये।

उत्तर—राजा हरिश्चन्द्र अयोध्या के राजा थे। उनकी टेक थी—

चन्द टरै सूरज टरै, टरै जगत व्यवहार।
पै दृढ़ श्री हरिश्चन्द्र को टरै न सत्य विचार।

और उन्होंने अपनी इस टेक की रक्षा जीवन-पर्यन्त की। स्वप्न में उन्होंने अपने समस्त राज्य का दान एक अज्ञात नाम ब्राह्मण को दिया और जब वहीं ब्राह्मण सत्यवादी, कर्त्तव्य-निष्ठ राजा हरिश्चन्द्र के समक्ष दान लेने को आया तब उन्होंने सहर्ष उसे दे दिया। उस समय भी उनके मस्तक की पेशानी पर बल नहीं आया। दान तो दिया जरूर, पर दक्षिणा उन्होंने नहीं दी थी। दान के साथ दक्षिणा का होना अनिवार्य है। विश्वामित्र ने दक्षिणा भी मांगा और उन्होंने उसे देने को वचन भी दे दिया। उनका धर्म था-सत्य पालन। यही उनकी टेक थी, यह

उनके जीवन का उद्देश्य था। राज्य तो चला ही गया, उसके साथ राज्यकोष भी। इसीलिए 'वेचि देहि दारा सुवन, होइ दासहू मन्द' उन्होंने दक्षिणा चुका देने का बीड़ा उठाया। दक्षिणा चुकाने के कारण उन्हें अपने आप को एक डोम के हाथ और दार-पुत्र को एक ब्राह्मण के हाथ वेच डाला। वे डोम के सेवक थे, उनका काम था श्मशान पर पहरा देना और मुर्दे जलाने वाले से आधा कफन माँगना। वस्तुतः कफन वसूलने का गर्हित कर्म था। पर करना क्या था? लाचारी थी क्योंकि एक डोम के सेवक थे। इस कार्य को न्यस्त करने के हेतु उन्हें मानसिक और शारीरिक दोनों कष्ट उठाने पड़ते थे। अपनी स्त्री शैव्या और पुत्र रोहिताश्व से बिछुड़ देने के कारण उनके हृदय में एक दर्द था, एक कसक थी फिर डोम-सरदार की आज्ञा शिरोधार्य थी। उनकी आज्ञा का पालन करना उनका परम कर्त्तव्य था। कर्त्तव्य पालन में उन्होंने ढिलाई नहीं दिखाई। उनका पुत्र रोहिताश्व ब्राह्मण के यहाँ तो था ही पर उसे सर्प ने डस डाला। उसके प्राण–पंखेरू उड़ गए। शैव्या के सामने उसके एकलौते पुत्र की लाश पड़ी हुई है। शैव्या अपने पुत्र के शव के साथ श्मशान पर पहुँचती है। हरिश्चन्द्र घाट के रखवाले हैं। वे कफन वसूल करने का काम करते हैं। शैव्या की आँखों में पावस की घटा छाई हुई है! आंसू की वर्षा हो रही है। राजा हरिश्चन्द्र शैव्या को पहचानते हैं। शोक का सागर उमड़ पड़ा। दोनों के हृदय में करुण-विलाप होने लगे। हरिश्चन्द्र का हृदय टूट-टूक होने लगा। कफन वसूल करना उनका कर्त्तव्य था। वे एक

विषम परिस्थिति में फंस गए। उनके सामने एक विकट समस्या आ खड़ी हुई। मगर राजा हरिश्चन्द्र साधारण मनुष्य के समान दुःख में पड़ कर किंकर्त्तव्य-विमूढ़ नहीं बनते। ऐसे समय में भी उन्हें अपने कर्त्तव्य का ज्ञान था। शैव्या से मृतक शव को जलाने का अनुरोध किया परन्तु उसके पास कफन नहीं। लाश जलाई जाय तो कैसे, वह उसे जलाने की चेष्टा की पर राजा हरिश्चन्द्र ने कफन माँगा ही। शैव्या ने अपनी मजबूरी पेश की 'नाथ, शव को तो अंचल में लपेट लाई हूँ। आधा कफन फाड़ा जायगा तो शव उघार रह जायगा।' लेकिन इस करुण पुकार को सुनकर उन्होंने अनसुनी करदी क्योंकि कर्त्तव्य पुकार-पुकार कह रहा था—कफ़न वसूल करो। अंत में कफन के लिए हाथ पसार दिया। शैव्या कफन फाड़ कर देने को तैयार हुई ही कि पृथ्वी कांपने लगी और स्वयं परब्रह्म सच्चिदानन्द राजा के सारे कष्टों के निवारण के लिए पृथ्वी पर प्रकट हुए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आरंभ से अंत तक राजा हरिश्चन्द्र को सत्यधर्म के पालन के लिए अग्नि-परीक्षा देनी पड़ी और उस परीक्षा में सफल भी हुए। धन्य है—सत्यवादी, कर्त्तव्यनिष्ट, धर्मप्रिय राजा हरिश्चन्द्र।

[२३] प्रश्न—'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक के तीसरे अंक के पहले जो अंकावतार है, उसका क्या प्रयोजन है? उसमें किस घटना का उल्लेख है। (P. U. 1936)

उत्तर—किसी अंक के पहले ही होने वाले अभिनय की सूचना पूर्व अंक में दी जाती है। इसी

अंश को अंकावतार कहते हैं। अंकावतार में एक अंक की कथा दूसरे अंक में सर्वदा चलती रहती है, सिर्फ अंक के अंत में पात्र बाहर होकर दूसरे अंक के आरंभ में फिर प्रकट होते हैं।

तीसरे अंक के अंकावतार को नाटक में स्थान देने का नाटककार का उद्देश्य है—असहाय एवं निरासयी पाप के द्वारा काशी-वर्णन, वहाँ की सजावट वहाँ के धर्माचरण में प्रवृत व्यक्तियों का, भगवान भैरवानन्द के भयंकर भेष का और राजा हरिश्चन्द्र के विक्रयार्थ काशी-आगमन का दिग्दर्शन। वस्तुतः इन सभी बातों का वर्णन अच्छा हुआ है।

[२४] प्रश्न—सत्य हरिश्चन्द्र नाटक के तीसरे अंक में दिए हुए काशी वर्णन का सारांश लिखो। (P- U. 1936)

उत्तर—'येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः।'

वस्तुतः काशी एक तीर्थ स्थान के अतिरिक्त एक मनोरम स्थान भी है। यथार्थ में यह स्वर्ग है! इसके चारो ओर तीर्थों का आवरण-सा है। यहाँ देवी-देवताओं के अनेक स्थान देखने योग्य हैं! यह वरुणा तथा असी के संगम पर स्थित है। यह सर्वगुण सम्पन्न है। यहाँ सुन्दर-सुन्दर मकान हैं जिसकी शोभा का वर्णन करना कठिन है। वे स्वर्ग-रत्नों के सदृश्य चकमक-चकमक करते हैं। इसकी शोभा दर्शनीय एवं अनुपम है।

काशी में ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास चारो आश्रम वाले तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्ण-वाले रहते हैं। यहाँ के घरों में माणिक और सोने लगे हैं। इनसे

आकाश उज्ज्वल हो रहा है। इसकी शोभा कहीं नहीं जा सकती; मानो, ब्रह्मा ने इस काशी को सब शहरों की नाक-सी बनाई हो! याने यह सब नगरों में श्रेष्ठ है। गिरधर दास कहते हैं कि काशी गंगा के किनारे बसी हुई है और गंगा के पवित्र जल से यह खेल रही है। यह काशी पुण्य का प्रकाश करने वाली और पाप को नाश करने वाली है। हृदय को आनन्दित करने वाली यह काशी अच्छी शोभ रही है।

इस काशीपुरी में बिन्दुमाधव, विश्वनाथ आदि देवता रहते हैं। इनके दर्शन से यम का भय मिट जाता है। यह काशी अनादि तीर्थ-स्थान है। यह पंचगंगा, मणिकर्णिका आदि पवित्र सात घेरों के बीच पुण्य-रूप से घुसी हुई है। गिरधर दास कवि का कहना है कि काशी के पास ही में गंगा बहती है। इस गंगा की धारा कर्म-रूपी रस्सी को बहुत जल्द तोड़ देती है। यह पवित्र काशी नगरी स्वच्छ चन्द्रमा के तुल्य यशस्वी अस्सी और वरुणा नदियों के बीच में बसी हुई है। यह पाप-रूपी खस्सी के लिए तलवार सी शोभ रही है।

काशी के मकानों की बनी पंक्तियाँ कुवेर की नगरी-सी लगती है। मकानों के समूह इस प्रकार शोभते हैं मानों प्रकाश से ही बने हों। इन मकानों के ऊपरी हिस्सों में जवाहिरों के काम किये कँगूरे शोभते हैं। इस नगरी में दास-दासी, ब्राह्मण, गृहस्थ और संन्यासी लोग झुंड के झुंड घूम रहे हैं। ये गुण-वान भी हैं। देवताओं की नगरी अमरावती भी इसकी समता नहीं कर सकती। कवि गिरिधरदास कहते हैं कि इस नगरी की लक्ष्मी

की हँसी-सी उज्ज्वल वर्ण की संसार को प्रसन्न करने वाली कीर्ति आनन्द देने वाली है। यह नगरी पूर्णिमा की चाँदनी-सी विशेष रूप से प्रकाशमान है। यहाँ के रहने वाले सभी अविनाशी याने जीवन-मुक्त हैं। यह काशी ऐसे-ऐसे महान् गुणों से परिपूर्ण पाप को दूर करने वाली है। इसके रहने वाले स्वयं अविनाशी शंकर हैं।

मुख से "गंगा-गंगा" कहने से यम का सारा डर हवा हो जाता है। गङ्गा के जल के दर्शन मात्र से पाप का प्रताप दूर हो जाता है। बहुत थोड़ा गङ्गाजल मुँह में डालने से हे गंगे! तुम लोगों को कामदेव के शत्रु महादेव बना देती हो अर्थात् गंगाजल के पीने से मनुष्य शिव का रूप धारण करते हैं। कवि गिरिधर दास कहते हैं कि जो तुम्हारी धाराओं में स्नान करता है ऐसे कितने ही को तुमने विष्णु-पद दे दिया है याने विष्णु बना दिया है।

[२५] प्रश्न—नाटक के आधार पर गंगा-छवि का वर्णन कीजिये।

उत्तर—नव उज्ज्वल जलधार·········से लेकर·······कछु बरनी नहीं जाई तक की व्याख्या लिख दीजिए। यही उत्तर होगा

[२६] प्रश्न—'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक में चित्रित राजा हरिश्चन्द्र के चरित्र के आधार पर उनका चरित्रांकन करो। (P.U. 1925 S)

उत्तर—'राजा हरिश्चन्द्र' का चरित्र-चित्रण देख लीजिए।

[२७] प्रश्न—हरिश्चन्द्र नाटक के अंतिम दृश्य का वर्णन कीजिए। (P.U. 1926 A 1929 S)

उत्तर—अंतिम दृश्य चौथाअंक है। चौथे अंक में श्मशान का वर्णन है। अतः प्रश्न संख्या बीस में जो उत्तर है, उसको लिख दीजिए।

[२८] प्रश्न—'आप ही आप' स्वगत-भाषण और नेपथ्य से क्या समझते हैं ? (P.U. 1927 A)

उत्तर—टीका भाग के आरंभ में पारिभाषिक शब्दों की परिभाषा जो बतलाई गई है, उसे लिखकर विस्तार पूर्वक बतलाइये।

[२९] प्रश्न—'नान्दी और अंकावतार' से क्या समझते हैं। (P. U. 1927 S)

उत्तर—परिभाषिक शब्दों की परिभाषा को देखिये।

[३०] प्रश्न—नारद ने इन्द्र से हरिश्चन्द्र के गुणों का जो वर्णन किया है, उसे संक्षेप में लिखिये। (P. U. 1930 A & S)

उत्तर—प्रश्न संख्या १९ का उत्तर देखें।

[३१] प्रश्न—'सत्य हरिश्चन्द्र' के आधार पर अपने शब्दों में विश्वामित्र या शैव्या का चरित्र-चित्रण करें। (P. U. 1946 S)

उत्तर—पात्रों का चरित्र-चित्रण अंश पढ़िये।

[३२] प्रश्न—'सत्य पालन में हरिश्चन्द्र को शैव्या की बदौलत सफलता प्राप्त हुई है"—इस कथन की पुष्टि 'सत्य-

हरिश्चन्द्र' नाटक के आधार पर करें। (P. U. 1947 S)

उत्तर—रानी शैव्या का चरित्र नाटक में दो रूपों में विकसित हुआ है—एक नायिका के रूप में और दूसरा राजा हरिश्चन्द्र की अर्द्धांङ्गिनी के रूप में। इसका चरित्र सत्यवादी राजा के चरित्र के अनुकूल है। जिस प्रकार राजा समाज के लिए एक आदर्श व्यक्ति हैं उसी प्रकार शैव्या एक आदर्श पुरुष की आदर्श पत्नी है। नारी-समाज के लिए इसका चरित्र अनुकरणीय है। उसके प्रत्येक कार्यों में स्त्री-सुलभ-लज्जा, पति सेवा में दृढ़ विश्वास और निस्वार्थ सेवा का भाव प्रकट होता है। अगर राजा अपने वचन के पक्के थे तो रानी उससे कम नहीं। अगर राजा हरिश्चन्द्र की ऐसी पत्नी न होती तो शायद उनका कर्त्तव्य-पालन दूभर हो जाता।

रानी बुरा सपना देखती है जिसके शमन के लिए दान और धर्म का आश्रय ग्रहण करती है। वह स्वप्न की सच्चाई पर स्थान नहीं रखती है जिसके लिए उसे पति से क्षमा की भीख माँगनी पड़ती है। वस्तुतः साधुत्ता और सरलता उसके रग-रग में भरी हुई है।

सुख और दुःख में वह अपने पति का साथ देती है। राजा दक्षिणा चुकाने के हेतु काशी में बिकने के लिए आते हैं। वह भी उनके साथ बिकने के लिए आतुर होती है। जब बिक कर दासत्व-

वृत्ति (Slavery) स्वीकार करने का अवसर आता है तब वह स्वामी को ऋण मुक्त करने के लिये स्वयं आगे बढ़ जाती है। पहले स्वयं बिक जाना ही उसके लिए उचित मार्ग था। वह बिक जाने का सिर्फ विचार ही नहीं करती है। बल्कि उसे कार्य रूप में भी परिणत करती है। जब उपाध्याय यह पूछता है कि तुम कौन-सा काम करोगी। तब वह उत्तर देती है कि पर पुरुष-संभाषण और उच्छिष्ट (जूठा) भोजन के अतिरिक्त और सब कुछ कर सकती है। इस प्रकार वह बिक जाती है। जिसने कभी अपनी हाथों से काम नहीं किया है, वह एक दासी का काम करने को तैयार हो चली है। राजा तो शिकार भी करते थे, उन्हें कष्ट उठाने की आदत भी थी पर इस रानी को कहाँ। वस्तुतः रानी शैव्या का त्याग राजा के त्याग से अधिक महत्व रखता है।

बिक जाने के बाद जब अपने पुत्र को बटुक के द्वारा धक्का खाते देखती है तो उसका ममत्व जाग पड़ता है। पर बोलती नहीं क्योंकि पति का आदेश। वह सभी कष्टों को आनन्द समझ कर अपना लेती है। यही उसका धर्म था।

पुत्र मर जाता है। श्मशान पर आती है। राजा कफन माँगते हैं पर वह भी अपनी मजबूरियाँ दिखाती है पर राजा कहते हैं कि यह तो उसका कर्त्तव्य है। उस समय वह अपने पति के कर्त्तव्य पर अविश्वास नहीं करती है। ऐसी अवस्था में अपने पति की आज्ञा का उलंघन नहीं करती है और कफन देने को तैयार होती है। उसी समय भगवान स्वयं पृथ्वी पर आते हैं और उन सबों के कष्टों का निवारण करते हैं। अतः रानी शैव्या अपने

पति का साथ नहीं देती तो हो सकता था कि वे अपने पुत्र के कारण राजा अपने कर्त्तव्य से गिर जाते। अतः परीक्षा में राजा के सफल होने का सेहरा शैव्या ने ही दी।

पुस्तक-संबंधी व्याकरण

(क) सविग्रह समास

(१) सत्यासक्त=सत्य में आसक्त है जो (बहुव्रीहि समास)। (२) द्विज-प्रिय=द्विज का प्रिय (षष्टी तत्पुरुष); द्विज हैं प्रिय जिनको (बहुव्रीही समास)। (३) अघहर=अघ को जो हरता है (बहुव्रीहि समास)। (४) जन के हित=जन के हित (षष्टी तत्पुरुष)। (५) कमलातजन=कमला को तजा है जिसने (बहुव्रीहि समास)। (६) सुख कन्द=सुख के कन्द (ष० तत्पुरुष)। (७) अन्ध-परम्परा=अन्ध की परम्परा (तत्पुरुष समास)। (८) सत्यभय=सत्य का भय (तत्पुरुष समास)। (९) सूत्रधार=सूत्र को जो धरता है (उपपद समास)। (१०) बेपरवाह=बिना परवाह (अव्ययी भाव समास) (१०) सावधान=अवधान के साथ (अव्ययी भाव) (१२) करूणापूर्ण=करूणा से पूर्ण (तृ० तत्पुरुष) (१३) सज्जन=सत् जन (कर्मधारय समास) (१४) हरिश्चन्द्र=हरि और चन्द्र (द्वन्द्व समास) (१५) सुरलोक=सुरों का लोक (ष० तत्पुरुष)।

प्रथम अङ्क

(१६) द्वारपाल = द्वार को जो पालता है (उपपद समास)। (१७) गुणग्राही = गुण को ग्रहण करने वाला (द्वि० तत्पुरुष समास)। (१८) परोपकारी = परों का उपकारी (ष० तत्पुरुष)। (१९) धर्म-निष्ट = धर्म में निष्ठ (सप्तमी तत्पुरुष समास)। (२०) गृहस्थ = गृह में जो ठहरता है (उपपद)। (२१ शिष्टाचार = शिष्टों का आचार (षष्ठी तत्पुरुष)। (२२) निष्कपट = निर्गट है कपट जिससे वह (बहुव्रीहि समास)। (२३) अकृत्रिम = न कृत्रिम (नञ् समास)। (२४) निरसन्देह = निर्गत सन्देह जिसमें वह (बहुव्रीहि समास)। (२५) महाराज = महान राज (कर्म धारय)। (२६) पराधीन = पर के आधीन (सप्तमी तत्पुरुष)। (२७) हीनावस्था = हीन अवस्था (कर्म धारय)। (२८) सहज = सह (साथ) जो जन्मता है (उपपद)। (२९) महात्मा = महान आत्मा है जिसकी (बहुव्रीहि-समास)। (३०) दुरात्मा = दुष्ट आत्मा है जिसकी (बहुव्रीहि स०) (३१) महाशय = महान आशय है जिसका (बहुव्रीहि समास)। (३२) भीतर-बाहर = भीतर और बाहर (द्वन्द्व समास)। (३३) विद्यानुरागिता = विद्या अनुराग (सप्तमी तत्पुरुष समास)। (३४) अनाभिमान = बिना अभिमान के (अव्ययी भाव समास)। (३५) सृष्टिरत्न = सृष्टि का रत्न (षष्ठी तत्पुरुष)। (३६) महारम्भ = महान है आरंभ जिसका वह (बहुव्रीहि समास)। (३७) निर्मल = मल का अभाव (अव्ययी भाव)। (३८) चरणारविन्द = अरविन्द सदृश चरण (कर्म धारय)। (३९) धर्माचरण = धर्म में आचरण (सप्तमी तत्पुरुष)। (४०) परलोक = पर (दूसरा) लोक (कर्म-

धारय) लोक के परे (अव्ययी भाव) (४१) अयोग्य = न योग्य (नञ् समास)। (४२,शुद्राशयों = शुद्र है आसय जिनका (बहुव्रीहिसमास) जलकटी = जली और कटी (द्वन्द्वसमास) (४४) भ्रूभंग = भ्रू का भंग (ष० तत्पु०) (४५) अमृतपान = अमृत का पान (ष० तत्पुरुष) (४६) सत्य धर्म = सत्य ही धर्म (कर्मधारय) (४७) सत्यधर्म पालन = सत्य धर्म का पालन (ष० तत्पुरुष) (४८) तेजोभ्रष्ट = तेज से भ्रष्ट (पंचमी तत्पुरुष) (४९) सत्यवादी = सत्य बोलने वाला (द्वि० तत्पुरुष); सत्य को बोलने वाला है (उपपद)।

द्वितीय अंक

(५०) राजभवन = राजा का भवन (षष्टी तत्पुरुष)। (५१) पुण्य प्रताप = पुण्य के प्रताप (ष० तत्पुरुष)। (५२) युगयुग = युग पश्चायत् युग (अव्ययी भाव)। (५३) गंगा–यमुना = गङ्गा और यमुना (द्वन्द्व समास)। (५४) अचल = न चल (नञ्समास)। (५५) रक्षा-बन्धन = रक्षा का बन्धन (ष० तत्पुरुष)। (५६) रवि-कुल-रवि = रवि के कुल का रवि (षष्टी तत्पुरुष)। (५७) प्रजा-कमल-गन = प्रजा रूपी कमल (कर्म धारय) उसका गण (षष्टी-तत्पुरुष)। (५८) जन-भय-तम = जनभय रूपी तम (कर्मधारय-समास)। (५९) मागध-बन्दी-सुत--चिरैयन = मागध--बन्दी-सूत-रूपी चिरैयन (कर्मधारय समास)। (६०) रिपु-युवती = रिपुओं की युवती (ष० तत्पुरुष)। (६१) मुख-कुमुद = कुमुद सदृश्य मुख (कर्मधारय)। (६२) कर पोखो = करों से पोखो (तृतीयतत्पुरुष)। (६३) अरघ-सरिस = अरघ के सरिस (ष० तत्पुरुष)। (६४) यथा स्थान = स्थान के अनुसार (अव्ययी भाव)। (६५) मुख-

चन्द्र = मुख रूपी चन्द्र (रूपक)। (६६) दुःस्वप्न = दुःख पूर्ण स्वप्न (मध्य पदलोपी समास)। (६७) वीरकन्या = वीर की कन्या (ष० तत्पुरुष)। (६८) शुभाशुभ = शुभ और अशुभ (द्वन्द्वसमास)। (६९) विद्यासाधन = विद्या का साधन (ष० तत्पुरुष)। (७०) महाविद्याओं = विद्याओं में महान है जो (बहुव्रीहि समास)। (७१) मंगल-साधन = मंगल का साधन (ष० तत्पुरुष)। (७२) अर्द्धांगिनी = अधा अंग है जो (बहुव्रीहि समास)। (७३) असत्य = न सत्य (नञ समास)। (७४) व्याकुल = विशेष आकुल (कर्मध०)। (७५) धर्माचरण = धर्म का आचरण (ष० तत्पुरुष)। (७६) प्रत्यक्ष = अक्षि (आँख) के प्रति (सामने) (अव्ययी भाव)। (७७) आज्ञात-नाम-गोत्र = नाम और गोत्र आज्ञात है जिसका (बहुव्रीहि-समास)। (७८) कार्याधीशों = कार्य के अधीशों (ष० तत्पुरुष)। (७९) आज्ञापत्र = आज्ञा का पत्र (षष्टी तत्पुरुष)। (८०) क्षत्रियाधम = क्षत्रियों में अधम (सप्तमी तत्पुरुष)। (८१) सूर्यकुल-कलङ्क = सूर्यकुल का कलङ्क (ष० तत्पुरुष)। (८२) धर्माभिमान = धर्म का अभिमान (ष० तत्पुरुष)। (८३) जातिस्वयंग्रहण = जाति स्वयं ग्रहण किया है जिसने (बहुव्रीहि समास)। (८४) वशिष्ठ-सुत = वशिष्ठ के सुत (ष० तत्पुरुष)। (८५) वशिष्ठ-सुत-कानन = वशिष्ठ सुत रूपी कानन (कर्मधारय समास)। (८६) सर्गान्तर = अन्य सर्ग (अव्ययी भाव समास)। (८७) सर्गान्तराहरण भीत = सर्गान्तराहरण से भीत (तृतीय तत्पुरुष)। (८८) अन्नक्षय = अन्न का क्षय (ष० तत्पुरुष)। (८९) राजा प्रतिग्रह = राजा का प्रतिग्रह (ष० तत्पुरुष)। (९०) आड़ी-बक = आड़ी और बक

(द्वन्द्व समास)। (९१) आड़ंबिक प्रधन कम्पित=आड़िबक प्रधन से कम्पित (तृतीय तत्पुरुष)। (९२) जीवलोक=जीव का लोक (ष० तत्पुरुष)। (९३) पाप-पाखण्ड=पाप और पाखण्ड (द्वन्द्व समास)। (९४) दानवीर=दान में वीर (स० तत्पुरुष)। (९५) दीर्घतपोवर्द्धित=दीर्घतप से वर्द्धित (तृ० तत्पुरुष)। (९६) असत्य=न सत्य (नञ् समास)। (९७) तेजपुञ्ज=तेज का पुञ्ज। (ष० तत्पुरुप)। (९८) जाति स्मरण=जाति का स्मरण (ष०त०)। (९९) कुलांगार=कुल का अङ्गार (ष० तत्पुरुष)। (१००) विकुल-राज=विकुल के राजे (ष० तत्पुरुष)। (१०१) धरमबद्ध=धरमसे बद्ध (तृ० तत्पुरुष)। (१०२) परवस=पर के वस (ष० तत्पुरुष)। (१०३) सत्यभ्रष्ट=सत्य से भ्रष्ट (पञ्चम तत्पुरुष)। (१०४) स्वर्ण-मुद्रा=स्वर्ण के मुद्रा (ष० तत्पुरुष)। (१०५) सत्यदण्ड=सत्य का दण्ड (ष० तत्पुरुष)। (१०६) अनादर=न आदर (नञ् समास)। (१०७) जयध्वनि= जय की ध्वनि (ष० तत्पुरुष)।

तृतीय अंक

(१०८) आकाश-विभाषिका=आकाश को विभाषित करती है जो (वहुव्रीहि)। (१०९) देव-नदी=देवों की नदी (ष० तत्पुरुष)। (११०) गिरिधारण=गिरि को धारन करने वाला (वहुव्रीहि)। (१११) पुण्यप्रकाशिका=पुण्यकी प्रकाशिका (ष० तत्पुरुष)। (११३) पंचगंगा=पाँच गंगा (द्विगु)। (११२) जमसुख=जमका मुख (ष० तत्पुरुष)। (११४ मुक्तामणि=मुक्तारूपी मणि (रूपक समास)। (११५) शिव-सिर-मालती-माल=शिव के सिर पर मालती की माला के समान (ष० तत्पुरुष)। (११६) त्रैलोक्य=

तीनों लोक (द्विगु)। (११७) ऋणमुक्त=ऋण से मुक्त (तृ० तत्पुरुष) (११८) अनादि=न आदि (अव्ययी भाव आदि)। (११९) असी-वरना=असी और वरना (द्वन्द्व)। (१२०) पाप खसी=पाप रूपी खसी (रूपक कर्त्तव्य); (१२१) रतन नकासी=रत्नों की नकासी (ष० तत्पुरुष)। (१२२) गुनराशि=गुणों की राशि (ष० तत्पुरुष)। (१२३) देव पुरी=देवों की पुरी (षष्ठी तत्पुरुष)। (१२४) विश्वकीरिति-विलासी=विश्व की कीरति की विलासी (ष० तत्पुरुष)। (१२५) रमा=दासी रमा की दासी (ष०तत्पुरुष)। (१२६) अघनासी=अघ को नास करने वाली (द्वि० तत्पुरुष)। (१२७) जगत-हुलासी=ष० तत्पुरुष। (१२८) पुनवासी-चंद्रिका=ष० तत्पुरुष। (१२९) विनासकारी=विनास करने वाली (उपपद तत्पुरुष)। (१३०) दरसन-मज्जन-पान=दरसन और मजन और पान (द्वन्द्व)। (१३१) त्रिविध=तीन विद्याओं का समूह (द्विगु)। (१३२) जल-मात्र=अल्प मात्रा जल (अव्य यी भाव)। (१३३) अगनित=गिनती न हो जिसकी (बहुव्रीहि)। (१३४) सागर-संचारण=सागर में सञ्चरित होनेवाली (सप्तमी तत्पुरुष)। (१३५) ससिमुख=सांस सदृश मुख उपमा (कर्मधारय समास)। (१३६) नीरमध्य=नीर के मध्य में (ष० तत्पुरुष)। (१३७) प्रत्यक्ष=अक्ष के प्रति (अव्ययी भाव)। (१३८) हितकारो=हित करनेवाला (उपपद समास)। (१३९) महानुभावता=महती अनुभावता (कर्म०)। (१४०) मनुष्य-विक्रय=मनुष्यों का विक्रय (ष० त०)। (१४१) अनुचित=न उचित (नञ्०)। (१४२) चन्द्र-कुल-भूषण=चन्द्र के कुल का भूषण (ष० त०)। (१४३) धारा-प्रवाह=धारा का प्रवाह (स० त०)। (१४४) यथा सम्भव=सम्भव के अनुसार

(अ०यसी०)। (१४५) भाग्य-हीन = भाग्य से हीन (तृ० त०)। (१४६) जल-थल-नभ (द्वन्द)। (१४७) कृपा-निधान = कृपा के निधान (स० त०)।

चतुर्थ अंक

(१४८) अनाथ = नहीं है नाथ जिसका वह (बहु०)। (१४९) अशरण = नहीं है शरण जिसको वह (बहु०)। (१५०) क्रोध-भरी = करुणा-भरी (तृ० त०)। (१५१) कर्ण कटु = कर्णों के के लिये कटु (च० त०)। (१५२) महोच्छव = महा उच्छव (कर्म०)। (१५३) गले-सड़े (द्वन्द्व)। (१५४) पद्मिनी-बल्लभ = पद्मिनियों का बल्लभ (ष० त०)। (१५५) गगनाङ्गन = गगन रूपी अङ्गन (रूपक)। (१५६) श्मशानवासी = श्मशान में जो बसता है (उपपद)। (१५७) अयाचित = नयाचित (नञ् ०)। (१५८) दुःख परम्परा = दुःखों की परम्परा (ष० त०)। (१५९) योगी राज = योगियों का राजा (ष० त०)। (१६०) त्रिलोक विजयिनी = तीन लोकों के समाहार त्रिलोक (द्विगु) त्रिलोक की विजयिनी (स० त०)। (१६१) दैव-सर्प-दंशित = दैव रूपी सर्प से दंशित (रूपम कर्म, तृ० त०)। (१६२) मन्द भाग्य = मन्द है भाग्य जिसका वह (बहु०)। (१६३) सूर्य-कुल-आल वाल-प्रबाल = सूर्य कुल रूपी आल बाल का प्रबाल (रूपक और ष० त०)। (१६४) हरिश्चन्द्र हृदयानन्द = हरिश्चन्द्र के हृदयका आनन्द (स० त०)। (१६५) शैव्यावलम्ब = शैव्या का अवलम्ब (ष० त०)। (१६६) मातृ-पितृ-विपत्ति-सहचर = माता और पिता की विपत्ति के सहचर (द्वन्द्व और ष० त०)। (१६७) वज्र हृदय = वज्र के समान हृदय है जिसका वह (बहु०)। (१६८)

जगदीश्वर=जगत् के ईश्वर (ष० त०)। (१६९) महाभाग्य=महान् है भाग्य जिसका वह (बहु०)। १७०) मुखारविन्द=मुख रूपी अरविन्द (रूपक कर्म०)। (१७१) पुण्यात्मा=पुण्य है आत्मा जिसकी वह (बहु०)। (१७२) सज्जन=सत् जन (कर्म०)। (१७३) सच्चिदानन्द=सत्, चित्त और आनन्द (द्वन्द्व)। (१७४) राजर्षि=राजाओं में ऋषि (स० तत्पुरुष)। (१७५) परभाव=पर के समान भाव (मध्यपद लोपी)। (१७६) महाराज=महान् राजा (कर्मधारय)।

(ख) सन्धि-विच्छेद

प्रस्तावना और प्रथम अंक

सत्यासक्त=सत्य+आसक्त। अपेक्षा=अप+ईक्षा। सन्देह=सम्+देह। सज्जन=सत्+जन। परीक्षा=परि ईक्षा। परोपकारी=पर+उपकारी। सङ्गम=सम्+गम। दुर्लभ=दुः+लभ। शिष्टाचार=शिष्ट+आचार। निष्कपट=निः+कपट। सन्तुष्ट=सम्+तुष्+त। निस्सन्देह=निः+सम्+देह। पराधीन=पर+अधीन। हीनावस्था=हीन+अवस्था। पदाधिकारी=पद+अधिकारी। निश्चय=निः+चय। उदाहरण=उत्+आहरण। क्रियादिक=क्रिया+आदिक। महात्मा=महा+आत्मा। दुरात्मा=दुः+आत्मा। महाशय=महा+आशय। विद्यानुरागिता=विद्या+अनुरागिता। निश्चला=निः+चला। महारम्भ=महा+आरम्भ। व्याकुलता=वि+आकुलता। व्यर्थ=

वि+अर्थ। उपार्जन=उप+अर्जन। निर्मल=निः+मल। चरणारविन्द=चरण+अरविन्द। धर्म्माचरण=धर्म+आचरण। आशीर्वाद=आशीः+वाद। तथापि—तथा+अपि। रुष्ट—रुष्+त। तेजोभ्रष्ट=तेजः+भ्रष्ट। दीनावस्था=दीन+अवस्था। परस्पर=परः+पर।

द्वितीय अंक

अन्नक्षयादिषु=अन्नक्षय+आदिषु। कस्तेजसां=कः+तेजसां समाचार=सम्+आचार। सावधान=स+अवधान। शुभाशुभ=शुभ+अशुभ व्यवहार+वि+अवहार। प्रत्यक्ष=प्रति+अक्ष। ईश्वरेच्छा=ईश्वर+इच्छा। कार्याधीश=कार्य+अधीस। क्षत्रियाधम=क्षत्रिय+अधम। धर्म्माभिमान=धर्म+अभिमान। तपोवर्द्धित=तपः+वर्द्धित। सृष्टि=सृष्ट+ति। कुलांगार=कुल+अंगार। राजकुलांगार=राजकुल+अंगार। कार्याधीशों=कार्य+आधीशों। शुभाशुभ=शुभ+अशुभ। रोग मशुभ=रोगम्+अशुभ। प्रतिहतमस्तु=प्रतिहतम्+अस्तु। त्वय्यस्तु=त्वयि+अस्तु। देवास्त्वामभिषिञ्चन्तु=देवाः+त्वाम्+अभिषिञ्चन्तु। भद्रमस्तु=भद्रम्+अस्तु। शिवाञ्चास्तु=शिवम्+च+अस्तु। स्वस्त्यस्तु=स्वस्ति+अस्तु। चिरायुरस्तु=चिरायुः+अस्तु। समृद्धिरस्तु=समृद्धिः+अस्तु। सुखमस्तु=सुखम्+अस्तु। रिपुक्षयोस्तु=रिपुक्षयः+अस्तु। विद्यानुरागिता=विद्या+अनुरागिता।

तृतीय अंक

कश्चापि=कः+अपि। रतिर्नास्ति=रतिः+न+अस्ति।

अङ्कावतार = अङ्क + अवतार । वृत्तान्त = वृत्त + अन्त । विसेसरादि = विसेसर + आदि । मनिकर्निकादि = मानिकर्निका + आदि । सञ्चारण = सम् + चारण । महानुभावता = महा + अनुभावता । कृतार्थ = कृत + अर्थ । दुष्कर = दुः + कर । स्वाधीन = स्व + अधीन अर्द्धाङ्गिनी = अर्द्ध + अङ्गिनी । उच्छिष्ट = उत् + शिष्ट । दृष्टि = दृश् + ति । दुर्गति = दुः + गति । उपाध्याय = उप + अधि + आय । राजर्षि = राज + ऋषि । अस्ताचल = अस्त + अचल । व्यसन = वि + असन् । चैवावधानतः = च + एव + अवधानतः । वरञ्च = वरम् + च । व्रतमिदं = व्रतम् + ईदं । नीतवानसि = नितवान् + असि ।

चतुर्थ अंक

प्रायश्चित = प्रायः + चित्त । रोहिताश्व = रोहित + अश्व । वृष्टि = वृष् + ति । संस्कार = सम् + कार । निर्भय = निः + भय । भयङ्कर = भयम् + कर । महोच्छव = महा + उच्छव । दुर्गन्ध = दुः + गंध । निस्सार = निः + सार । अय । अभिषेक = अभि + सेक । प्रेतास्थि = प्रेत + अस्थि । उदय = उत् + गगनाङ्गन = गगन + अङ्गन । अत्यन्त = अति + अन्त । उल्लंघन = उत् + लंघन ; पुरश्चरण = पुरः + चरण । नमस्कार = नमः + कार । रसेन्द्र = रस + इन्द्र । निष्करुण = निः + करुण मनोरथ = मनः + रथ । हृदयानन्द = हृदय + आनन्दन । शैव्यावलम्ब = शैव्या + अवलम्ब । सर्वान्तर्यामी = सर्व + अन्तः + यामी । जगदीश्वर = जगत् + ईश्वर । पराधीन = पर + अधीन । दुर्दशा = दुः + दशा । साष्टाङ्ग + स + अष्ट + अङ्ग । सच्चिदानन्द = सत् +

चित्+आनन्द। दीर्घायु=दीर्घ+आयु। आज्ञानुसार=आज्ञा+अनुसार। पुण्यात्मा=पुण्य+आत्मा। धैर्यमहो=धैर्यम्+अहो। सत्यमहो=सत्यम्+अहो। दानमहो=दानम्+अहो।

(ग) विशेष्य-विशेषण और विशेषण विशेष्य

प्रस्तावना :—

सत्य—सत्यवादी। दयालु—दया। गुणज्ञ—गुण। रसिक—रस। प्रकाश—प्रकाशित। प्रवृत्त—प्रवृत्ति। अभिमानी—अभिमान। गुणी—गुण। झूठी—झूठ। बली—बल। कौतुक—कौतुकी। बुद्धि—बौद्धिक। खेल—खिलाड़ी। नाटक—नाटकीय। संसार=सांसारिक। सज्जन—सज्जनीय। मान—मानी। सुभाव—स्वाभाविक। भय—भयानक। शोक—शौच्य।

प्रथम अङ्क

यवन—यवनिका। अवसर—अवसरवादी। दण्ड—दण्डनीय। प्रबन्ध—प्रबन्धक। व्यापार—व्यापारी। गुण—गुणी। प्रमाण—प्रमाणिक। गृह—गृही। धर्म—धर्मात्मा। विद्या—विद्यानुरागी। पुत्र—पुत्रवती। परोपकारी—परोपकार। सत्संग—सत्संगी। बनावट—बनावटी। सन्ताप—संतप्त। निश्चय—निश्चित। दृढ़—दृढ़ता। विश्वास—विश्वासी। शरीर—शारीरिक। चरित्र-चारित्रिक। उदार—उदारता। स्थिर—स्थिरता। संतोष—संतुष्ट। शोभा—शोभनीय। धैर्य—धीर। कलंक—कलंकित। क्षय—क्षत। विपत्ति—विपन्न। उपार्जन—

उपार्जित। नाश—नष्ट। याचक—याच्य। दाता—दान। मूल—मौलिक। शंका—शंकनीय। निन्दा—निन्दनीय। संदेह—संदिग्ध। स्वर्ग—स्वर्गीय। हृदय—हार्दिक। लोक—लौकिक। परलोक—परलौकिक। व्यवहार—व्यवहारिक। लालच—लालची। आनन्द—आनन्दनीय। आशा—आशान्वित। अधिकार—अधिकारी। परस्पर—पारस्परिक। सहन—सह्य। प्रसंग—प्रासंगिक। रुष्टता—रुष्ट। परोपकार—परोपकारी।

द्वितीय अङ्क

शत्रु—शत्रुता। मंगल—मंगलमय। तम—तममय। कल्याण—कल्याणप्रद। साधन—साध्य। ग्रहण—ग्राह्य। पति—पतिव्रता। ईश्वर—ईश्वरीय।

तृतीय अङ्क

पुण्य—पुण्यात्मा। दान—दानी। उत्पात—उत्पाती। ताप—तप्त। हृदय—हार्दिक। शीतल—शीत। अलक्ष—अलक्षित। राज्य—राजकीय। कंचन—कंचनमय। विलास—विलासी। सेना—शैन्य। नक्शा—नक्काशी। चित्रकार—चित्रकारी। चंचलता—चंचल। समुद्र—सामुद्रिक। साक्षी—साक्ष्य। द्रव—द्रवित।

चतुर्थ अङ्क

गुण—गुणज्ञ। वीरत्व—वीर। वियोग—वियोगिनी। दुःख—दुःखी। सुख—सुखी। योग—योगी। साधु—साधुता। सरल—सरलता। सुन्दर—सुन्दरता। आखेट—आखेटापन।

मित्र—मैत्रीय। स्थिर—स्थिरता। स्वच्छ—स्वच्छता। प्रकाश—प्रकाशित।

[घ] लिंग निर्णय

स्त्रीलिंग—भाषा; चिड़ियां; देर। बनावट, डाह, वस्तु, हानि, भूमि, भृकुटि, इच्छा। हाय, मुद्रा, सांझ, भीड़।

पुलिंग—नाटक, गाल, आख्यान, खेल, जीवन, शोक, प्रकाश, चरित्र, दान, हृदय, व्यवहार। दण्ड; दैव, अंग, धीरज, टुकड़ा, कुल, मुकुट, दर्शन।

[ङ] वाक्यांशों के लिए एक शब्द

१. जो बड़े-बड़े लोग हैं=महान्।
२. जिनके लिए कुछ हो सकता है=समर्थ।
३. जिन्हें झूठी खैरखाही आती है=चापलूस।
४. जिसे छोटे बड़े सब मानें=सर्वप्रिय।
५. जिसकी बातों का विश्वास न हो=अविश्वसनीय।
६. जिसको सत्य पर स्नेह है=सत्यप्रिय।
७. परकीर्ति को सहन न करनेवाला=ईर्षालु।
८. जिन्होंने घर बार छोड़ दिया है=सन्यासी।
९. जिस वाक्य में रूखापन झलके=कटु वाक्य।
१०. जलकण से मिली वायु=शीतल वायु।

११. अश्रु से पूर्ण नेत्र = सजल नेत्र ।

१२. क्रोध से भरी हुई=सक्रोध ।

१३. करुणा से भरा हुआ = सकरुण ।

१४. बड़ाई के योग्य = प्रशंसनीय ।

१५. जिस पर मंत्र से अभिषेक हो = मन्त्राभिषिक्त ।

१६. जिसमें अभिमान हो = अभिमानी ।

१७. जो प्रणाम के योग्य हो=प्रणम्य ।

१८. जो देखने योग्य हो = दर्शनीय, द्रष्टव्य ।

१९. जिसके साथ सदा दुःख ही दुःख हो=अभागा ।

२०. जो दुःख को दुःख और सुख को सुख गिनते ही नहीं = उदात्त ।

२१. जो सब कुछ जानता है=सर्वज्ञ ।

२२. जिसकी उपमा न हो=अनुपम ।

२३. सिर से पैर तक = आपादमस्तक ।

२४. जिसमें रस नहीं हो=नीरस ।

२५. जो किए हुए उपकार को मानता है=कृतज्ञ ।

२६. जो युद्ध में स्थिर रहता है=युधिष्ठिर ।

२७. आगे की बात सोचने वाला = अग्रशोची ।

२८. जो कीचड़ में पैदा हुआ हो=पंकज ।

२९. पति-विहीना नारी=विधवा ।

३०. जो मोक्ष की इच्छा रखता हो=मुमुक्षु ।

३१. न्याय शास्त्र का पण्डित=नैयायिक ।

३२. जो इसलोक में नहीं है=अलौकिक ।

(च) मुहावरे

किस चिड़िया का नाम है = कौन-सी वस्तु है। लम्बा चौड़ा गाल बजाना = झूठी-सच्ची बातें करना। बुद्धि लड़ाना = समझाना बखेड़े में लगना = फसना। मंजरहा है = पूरा याद है। सिर ऊँचा होना = गर्व होना। कान खोल कर सुनना = ध्यान से सुनना। जली कटी बोलना = कठोर शब्द कहना। हँसी खेल नहीं है = आसान नहीं है। सोहाग अचल रहना = सौभाग्यवती रहना। जब तक गंगा-यमुना में पानी है = जब तक पृथ्वी वर्त्तमान है। आँचल पसारना = याचना करना। जड़ खोद डालना = नष्ट कर देना। हृदय शीतल होना = शान्ति मिलना। ठिकाना लग जाना = स्थिर जगह मिलना। अंगूठी के नगीने सा = अत्यन्त सुन्दर। संसार सूना जान पड़ना = कोई साथी न रहना। हाथ पसारना = भीख माँगना। हाय-हाय मचाना = व्याकुल होना। बुद्धि सोई थी = कुछ समझ में नहीं आता था। लाल लाल आँखे देखना = क्रोधित व्यक्ति का सामना करना। मुख मलिन होना = उदास होना। राज होना = अवाद होना। घर आयी लक्ष्मी को त्यागना = मिलता हुआ धन छोड़ना। नेत्र भरे खड़े रहना = आस लगाए रहना। सिर नीचा होना = लज्जित होना। बोलती चिड़िया = जीता-जागता बालक। मुँह देख कर जीना = किसी के भरोसे जीना। अंधे की लकड़ी = एक मात्र सहारा। आँखों का उजियाला = प्रसन्न करने वाला। बसा घर उजाड़ना = सुखी घर पर बिपत्ति डालना। कोख में आगलगना = पुत्र का नाश होना। कलेजा निकालना = प्रिय वस्तु को छीन लेना।

छाती ठंडी होना=संतुष्ट होना। कलेजा फटना=अत्यन्त दुःख होना। संसार उलटा जाता है=दुनियाँ नष्ट हुई जा रही है। वज्र टूटना=विपत्ति एकाएक पड़ना। चल बसना=मर जाना। कुल का दीपक=वंश का बढ़ाने वाला। सिर आंखों पर है=पूज्य है। प्राण मुँह को चला आना=करुणा से द्रवित हो जाना। विपत का समुद्र=बहुत बड़ी विपत्ति। बुद्धि ठिकाने न रहना=भले बुरे का विचार न करना। फूली-फूली फिरना=प्रसन्न होना। कलेजे पर सिल रख कर=कलेजा कड़ा कर।

शब्दों का शुद्धरूप—

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
दयाल	दयालु	व्यौवहार	व्यवहार
कारन	कारण	एक वेर	एक बार
नैन प्यारे	नयनप्रिय	राज	राज्य
इक	एक	जुग जुग	युग-युग
रैन	रजनी	हे भगवान्	हे भगवन्
नित	नित्य	मालती ?	मालति ?
जग	जगत	विनती	विनति
प्रतच्छ	प्रत्यक्ष	निसि	निशा
सुजान	सुज्ञान	गन	गण
दूजे	द्वितीय	रिपुगन	रिपुगण
ईर्षा	ईर्ष्या	उन्मूले	उन्मूलन

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
महातम	माहात्म्य	असन	अशन
मनि	मणि	मसान	श्मशान
सहस	सहस्त्र	दिवाली	दीपावली
परस	स्पर्श	रात	रात्रि
धुजा	ध्वजा	चोर	चौर
जोगी	योगी	तुव	तव
कर जुगल	कर युगल	जस	यश
जुग	युग	पौन	पवन
सुच्छ	स्वच्छ	आसीस	आशीस
ससिमुख	शशिमुख	धरम	धर्म
दीष्ठि	दृष्टि	थित	स्थित
कमण्डल	कमण्डलु	काज	कार्य
पुत्री !	पुत्रि !	जुवती	युवती
बिधाता !	विधातः !	अरघ	अर्घ्य
धीरज	धैर्य	परसिकर	स्पर्श कर
प्रतच्छ	प्रत्यक्ष	पोखौ	पोषण करो
थल	स्थल	तोखौ	तोष-करो
थिर	स्थिर	धीरज	धैर्य
मरदाज	मर्यादा	तैने	तूने
मीत	मित्र	काहे को	किस लिये
थित	स्थित	मन्त्री ?	मन्त्रिन्
परिच्छन	परीक्षण		



अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
पुन्य	पुण्य	गुनरासी	गुणराशि
त्रिसूल	त्रिशूल	कीरति	कीर्ति
धुनि	ध्वनि	परकासी	प्रकाशी
भेस	वेश,	पुनवासी	पूर्णिमासी
भभूत	विभूति	अविनासी	अविनाशी
बर्न	वर्ण	अघनासी	अघनाशी
अकास	अकाश	कासी	काशी
सोभा	शोभा	विनास	विनाश
प्रकासिका	प्रकाशिका	उचारन में	उच्चारण में
बिनासिका	विनाशिका	धारण में	धारण में
कासिका	काशिका	शिखामनि	शिखामणि
विसेससरादि	विश्वेश्वरादि	साँझ	सन्ध्या
मनिकर्निकादि	मणिकर्णिकादि	सूरज	सूर्य
दरसन	दर्शन	पच्छिन	पक्षी
जम	यम	जीअ	जीव
तीरथ	तीर्थ	उचारण	उच्चारण
पुन्यरूप	पुण्यरूप	कपालिक	कापालिक
धार	धारा	निसाकर	निशाकर
आसु	आशु	सेंदुर	सिन्दूर
ससी	शशी	अँधेरा	अन्धकार
जसी	यशस्वी	खटिया	खट्वा
असी	असि	बूँद	विन्दू

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
स्याम	श्याम	गांठ	ग्रन्थि
आभूसन	आभूषण	भीख	भिक्षा
सोग	शोक	किरिया	क्रिया
पच्छिम	पश्चिम	कौए	काक
जोगिनी	योगिनी	सियार	शृगाल
कल्यान	कल्याण	कुत्ता	कुक्कुर
जोग	योग	हा देवी !	हा देवि
सिधि	सिद्धि	पून्यात्मा	पुण्यात्मा
चकई	चक्रवाकी	महोच्छव	महोत्सव
जामिनी	यामिनी	माटी	मृत्तिका
जोति	ज्योति	काग	काक
सम्पति	सम्पत्ति	जीभ	जिह्वा
वियोगिन	वियोगिनी	स्यार	शृगाल
पिशाचिन	पिशाचिनी	माँस	मांस
सहसन	सहस्र	स्वान	श्वान
ईस	ईश	आंगुरिन	अंगुलि
मुंह	मुख	जिजमान	यजमान
जोतषी	ज्योतिषी	भोज	भोज्य
गुनी	गुणी	रकत	रक्त



अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
तुचा	त्वचा	असगुन	अपशकुन
मनुस	मनुष्य	स्वारथी	स्वार्थी
चन्द	चन्द्र	सपने	स्वप्न
हरिचन्द	हरिश्चन्द्र	महाभागे	महाभाग्ये
धरनि	धरणी	प्रायश्चित	प्रायश्चित्त
छिन	क्षण	अमृतवानी	अमृतवाणी

—* समाप्त *—



मुद्रकः—बाबू राजालाल राजा प्रिंटिंग प्रेस, गया। २४१–२५००


पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान
तिथी
पु०सं० 690
भारती पुस्तक